

दरमियानी उम्मत

मौलाना [illegible]ीर अहमद बरेलवी

नाशिरः

इस्लामी कुतुब खाना

क़स्बा धौंरा, ज़िला बरेली

بسم الله الرحمن الرحيم

وكذلك جعلناكم امة وسطا لتكونوا شهداء على الناس ويكون الرسول عليكم شهيدا

और ऐसे ही हमने बनाया तुमको
"दरमियानी उम्मत" ताकि तुम लोगों पर
गवाह हो और रसूल तुम पर गवाह हों। (क़ुआंन)

दरमियानी उम्मत

अलमुरत्तिब

मौलाना **तत्हीर अहमद** बरेलवी

नाशिर

इस्लामी कुतुबख़ाना

रज़ा मार्केट, क़स्बा धौंरा, ज़िला बरेली शरीफ़

पिन : 243204 (उ.प्र.)

फ़िहरस्ते मज़ामीन (विषय सूची)

بسم الله الرحمن الرحيم

यह किताब क्यूँ लिखी गई ?

सारी तारीफ़ें अल्लाह तआ़ला के लिए हैं जो सारे जहानों का परवरदिगार है सब को पैदा करने वाला भी सिर्फ़ वही है और ज़िन्दगी और मौत उसी के इख़्तियार में है जिसको जो चाहे अता फ़रमाये और जिससे जब चाहे छीन ले जिसको चाहे इज़्ज़त दे और जिसे चाहे ज़लील कर दे सारी भलाई उसी के दस्ते क़ुदरत में है वह जो चाहे करे उसका ज़िक्र दिलों का चैन और उसकी याद दिमाग़ों का सुकून है मख़लूक़ में किसी के बस की बात नहीं कि उसकी तारीफ़ व तौसीफ़ का हक़ अदा कर सके और उसकी शान पूरी तरह बयान कर सके।

बेशुमार, अनगिनत दुरूद व सलाम और अल्लाह तआ़ला की रह़मतें नाज़िल हों उस नूरानी पैकर पर कि ख़ुदाए तआ़ला ने काइनात में जिसको जो कुछ दिया सब उन्हीं के ज़रिए सदक़े और वसीले से दिया और मख़लूक़ पर अपनी हर नेमत व एहसान को उनकी निछावर बना दिया। उनका नामे नामी इस्मे गिरामी मुह़म्मद सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम है। करोड़ों, अरबों आशिक़ों के दिल में उस की तहरीर मौजूद है। यही वह नाम है जो ईमान वालों के कलेजों की ठन्डक और आँखों का नूर है। यह नाम ख़ुद अल्लाह तआ़ला को इतना पसन्द है कि जो इस नाम को जपता रहे वह भी उसका मह़बूब है और जो उन पर दुरूद भेजे उस से वह राज़ी है।

और उनके आल व असह़ाब पर जो डूबते हुए लोगों को पार लगाने वाले हैं और काली अँधेरी रातों में रोशनियों

के चिराग़ हैं उनसे महब्बत अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम से महब्बत है।

भाईयो! इन्सान के लिए सबसे ज़्यादा ज़रूरी यह है कि वह दुनिया में इस तरह ज़िन्दगी गुज़ारे कि जिससे उसका पैदा करने वाला परवरदिगार राज़ी हो और उस रास्ते पर चले जिस पर चलकर उसे जन्नत मिल सकती हो। क़ब्र का थोड़ी देर का अ़ज़ाब और जहन्नम की थोड़ी देर की तकलीफ़ दुनिया की बड़ी से बड़ी मुसीबतों, तकलीफ़ों और सज़ाओं से बढ़ कर है। इसीलिए अल्लाह तबारक व तआ़ला ने क़ुर्आन करीम की सबसे ज़्यादा मुअ़ज़्ज़म सूरत "अल्ह़म्दु शरीफ़" में यह दुआ करने की तालीम दी :

اِهْدِ نَاالصِّرَاطَ الْمُسْتَقِيْمَ O

तर्जमा : ऐ अल्लाह हमें सीधा रास्ता चला।

भाईयो! मोटी सी बात है जब मरना है तो मरने के बाद की भी सोचना है इसीलिए ख़ुदा रह़ीम व करीम ने रसूलों और नबियों को भेजा ताकि उनके ज़रिए से उन्हें वह रास्ता बताए जिस पर चल कर वह मरने के बाद नजात और छुटकारा हासिल कर सकें और मुस्लिम तो मुस्लिम सूझ बूझ रखने वाले ग़ैर मुस्लिम तक इस बात को जानते हैं कि दुनिया में ज़िन्दगी गुज़ारने और आख़िरत को सँवारने का सीधा, सच्चा और कामयाब रास्ता "इस्लाम" ही है। और यह ख़ुदाए तआ़ला के भेजे हुए आख़िरी नबी ख़त्मुर्रुसुल दानाए सुबुल सय्यिदुल कुल हज़रत मुह़म्मद मुस्तफ़ा स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की ग़ुलामी, आपकी इत्तिबा व पैरवी का नाम है। मगर अफ़सोस इस्लाम का नाम लेने वालों और ख़ुद को मुसलमान कहने वालों में काफ़ी लोग ऐसे हुए और हैं कि जिनके पास

इस्लाम का सिर्फ़ उनवान है उनके नज़रियात, ख़्यालात, अ़क़ाइद व मुसल्लिमात पैग़म्बरे आज़म स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के लाए हुए दीन से एक दम मुख़ालिफ़ व मुतज़ाद (विरोधी) हैं। इसकी निशानदिही उस ग़ैब की ख़बर रखने वाले रसूल ने ख़ुद फ़रमा दी थी और वाज़ेह (साफ़) इशारा फ़रमा दिया था। फ़रमाते हैं :

“अनक़रीब ऐसा ज़माना आएगा कि इस्लाम का सिर्फ़ नाम रह जाएगा और क़ुर्आन का ख़ूबसूरती और अच्छी आवाज़ से पढ़ना रह जाएगा उनकी मस्जिदें आबाद नज़र आयेंगी मगर हक़ीक़त में हिदायत व इबादत से ख़ाली होंगी। उनके मौलवी सबसे ज़्यादा ग़लत लोग होंगे।”

(मिश्कातुल मसाबीह़, किताबुल इल्म, सफ़ह़ा 30)

और फ़रमाते हैं :

“मेरी उम्मत तिहत्तर (73) फ़िरक़ों में बट जाएगी उनमें सिवाए एक के सब जहन्नम में जायेंगे।” पूछा गया जो जहन्नम में नहीं जायेंगे वह कौन सा गिरोह है, इरशाद फ़रमाया “यह वह लोग हैं जो मेरे और मेरे असह़ाब के रास्ते को अपनायेंगे।”

(मिश्कात, बाबुल एतिसाम बिलकिताब वलसुन्नह, सफ़ह़ा 38)

“क़रीबे क़ियामत ऐसे कम अक़्ल नौ उम्र लोग आयेंगे जो बातें तो सबसे ज़्यादा अच्छी करेंगे, नमाज़ रोज़े के इतने पाबन्द होंगे कि तुम ख़्याल करोगे कि हम उनके मुक़ाबले में कुछ नहीं हैं, ख़ूब रो-रो कर क़ुर्आन करीम की तिलावत करेंगे लेकिन यह ईमान व क़ुर्आन उनके गलों से नीचे नहीं उतरेगा, वह दीन से ऐसे निकले हुए होंगे जैसे तीर शिकार से साफ़ निकल जाता है, तुम उन्हें जहाँ पाओ क़त्ल कर देना, उन्हें क़त्ल करने वाले को क़ियामत के दिन सवाब मिलेगा।”

(बुख़ारी शरीफ़, जिल्द 2,बाब क़ितालुल ख़वारिज, सफ़हा 1024)

इस क़िस्म की सैकड़ों ह़दीसें और पेशिनगोईयां पैग़म्बरे इस्लाम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम से मरवी हैं (रिवायत की गई हैं)। उन सबको लिखने से मज़मून तवील होने का ख़तरा है। ख़ुद क़ुर्आन करीम में भी जगह-जगह इस बात की वज़ाह़त व सराह़त (व्याख्या) मौजूद है, कहीं फ़रमाया गया "इस किताब को पढ़ कर कुछ लोग गुमराह होते हैं और कुछ हिदायत पाते हैं।" कहीं फ़रमाया गया "कुछ लोग कहते हैं कि वह अल्लाह पर ईमान लाए मगर वह मुसलमान नहीं हैं।" कहीं फ़रमाया गया "बहाने मत बनाओ तुम इस्लाम लाकर भी काफ़िर हो।"

गोया कि यह बात यक़ीनी है कि हर इस्लाम का नाम लेने वाला और ख़ुद को मुसलमान कहने वाला मुसलमान नहीं है। अब ज़ाहिर है कि जिसे ख़ुदा व रसूल को राज़ी करना है, मरने के बाद की फ़िक्र है, जन्नत की आरज़ू है, दोज़ख़ का ख़ौफ़ है उसके लिए हर ज़रूरत से ज़्यादा ज़रूरी इस्लाम के सही रास्ते को तलाश करना है और उन फ़िरक़ों, गिरोहों और जमाअ़तों से बचना है जिनके पास इस्लाम का सिर्फ़ नाम है और उनके ख़्यालात व नज़रियात ग़ैर इस्लामी हैं। यह किताब उन्हीं लोगों के लिए लिखी जा रही है जो इस बात पर अक़ीदा रखते हैं कि मरने के बाद दोबारा ज़िन्दा होना है, हिसाब व किताब होना है, जन्नत या दोज़ख़ में जाना है।

आज इन्सान दुनिया की कोई चीज़ ख़रीदता है तो उस को ख़ूब देखता-भालता, जांचता-परखता है। अगर अपना दिमाग़ काम न करे तो दूसरों को दिखाता है, उन से मश्वरह करता है, कई-कई दिन सोचने, समझने में लगा

देता है, मगर अफ़सोस दुनिया की चीज़ों को ख़ूब जांच परख कर लेने वाले यही लोग मज़हब के मामले में इतने लापरवाह हो गए हैं कि उन्हें इस बात की कोई फ़िक्र नहीं कि हम किस के पीछे चल रहे हैं और कौन से अक़ाइद व ख़्यालात पर क़ाइम हैं? उन्हें मज़हबी मामलात में खरे खोटे की तमीज़ करने की फ़ुरसत नहीं किताबें पढ़ने का उनके पास वक़्त नहीं। ठन्डे दिल से सोचने और ज़हन पर ज़ोर देने का उन्हें होश ही नहीं। बहुत से वह हैं जो यह कह कर जान छुड़ा लेते हैं कि यह सब मौलवियों के झगड़े हैं। लेकिन भाईयो यहाँ तो यह कहने से जान छूट गई लेकिन क़ियामत के दिन यह कह कर जान नहीं छूटेगी वहाँ यह ज़रूर कहा जाएगा कि क्या तुम को हम ने जो ज़हन व फ़िक्र, सोचने समझने की सलाहियत, अक़्ल व दिमाग़ की नेमत दी थी वह सब दुनिया के धन्धों के लिए दी थी? दीन के लिए तुम्हारे पास न फ़ुरसत थी न दिमाग़? न अक़्ल थी न फ़राग़? (फ़ुरसत)

हक़ व बातिल को पहचानने और ग़लत व सही को जानने के लिए बुज़ुर्गों के फ़ैज़ान से अल्लाह तआ़ला ने कुछ बातें मेरे ज़हन में इल्क़ा फ़रमाई (डाली) जिन्हें अवाम भाईयों तक पहुँचाना मैंने ज़रूरी समझा। और मौत का कुछ पता नहीं कब वक़्त आ जाए लिहाज़ा जो कुछ ख़ुदाए तआ़ला ने अपने महबूब और महबूबों के ज़रिए हम तक पहुँचाया उसे दूसरों तक पहुँचाने के लिए यह किताब लिखने बैठ गया, पढ़िये, समझिये और अगर आप हक़ पर हैं तो अपने ईमान को ताज़ा कीजिए और अगर आप हक़ के तलाश करने वाले हैं तो उसे हासिल कर लीजिए और तौफ़ीक़ अल्लाह ही की तरफ़ से है।

"दरमियानी उम्मत" नाम रखने की वजह

इस किताब का नाम "दरमियानी उम्मत" क्यूँ रखा गया? बात दरअस्ल यह है कि इस उम्मत यानी उम्मते मुहम्मदी सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को अल्लाह तआला ने कुर्आन करीम में "उम्मते वस्त" यानी दरमियानी उम्मत से ताबीर फ़रमाया है। इरशाद फ़रमाता है :

وَكَذٰلِكَ جَعَلْنَاكُمْ اُمَّةً وَّسَطًا لِّتَكُوْنُوْ شُهَدَآءَ عَلَى النَّاسِ.

तर्जमा : और ऐसे ही हमने तुम को बनाया दरमियानी उम्मत (अफ़ज़ल उम्मत) ताकि तुम लोगों पर गवाह रहो। (पारा 2, रुकूअ 1)

"वस्त" के लुग़वी मअ़ना उस जगह के हैं जो दरमियान और बीच में हो दोनों किनारों से उसकी दूरी बिल्कुल बराबर हो और चूंकि आमतौर से गड़बड़ी, फ़साद व ख़राबी किनारों और अतराफ़ में आती है, दरमियान की चीज़ ग़ालिबन महफ़ूज़ सही व सालिम उम्दा व बेहतरीन होती है। इसलिए उलमाए मुफ़स्सिरीन ने इसके मअ़ना अफ़ज़ल और बेहतरीन उम्मत लिखे।

इन्सानों की आदतों और ख़सलतों में भी उमूमन दरमियानी और बीच की रविश अच्छी होती है, मसलन कंजूस होना भी एक बुरी आदत है और फ़ुज़ूलख़र्ची भी एक ख़राब रविश है और इन दोनों के बीच का रास्ता जो सख़ावत है वह उम्दा और अच्छी आदत है। जोशीला और जज़बाती होना भी मज़मूम है और बुज़दिल और

कमहिम्मत होना भी अच्छी नज़रों से नहीं देखा जाता लेकिन इन दोनों के दरमियान का तरीक़ा जो शुजाअत और बहादुरी है दुनिया उसकी तारीफ़ करती है। क़द व क़ामत में बहुत ज़्यादा लम्बा इन्सान भी अच्छा नहीं लगता और नाटा और बौना होना भी ऐब माना जाता है। बहुत ज़्यादा मोटे इन्सान को देख कर लोग हंसते हैं और ज़्यादा दुबले पतले सूखे हुए को भी गिरी नज़रों से देखते हैं। इन्सान की उम्र में जवानी जो बुढ़ापे और बचपने के दरमियान की उम्र है कौन नहीं जानता कि वही मक़सदे ज़िन्दगी और हासिले हयात है और खाने पीने सोने और ज़िन्दगी से लुत्फ़अन्दोज़ होने का वही ज़माना है। सूखे और क़हतसाली से भी बरबादी आती है और बारिश की बहुत ज़्यादती भी सैलाब की शक्ल में तबाही लाती है। बहुत ज़्यादा गर्मी से भी इन्सान की तबीअत घबराती है और नाक़ाबिले बरदाश्त सर्दी भी उसे बेचैन कर देती है। ग़रज़ यह कि आदतें हों या दूसरे समाजी काम उमूमन दरमियान में होना ही अफ़ज़ल व बेहतर व पसन्दीदा है।

"उम्मते वस्त" के मअ़ना में मुफ़स्सिरीन किराम ने यह भी फ़रमाया है कि पिछली उम्मतें ग़ुलू और तक़सीर में मुबतला हुईं। "ग़ुलू" के मअ़ना हैं तारीफ़ में हद से आगे बढ़ जाना और "तक़सीर" के मअ़ना हैं मरतबे को घटाना और तौहीन व तज़लील करना मसलन हज़रते ईसा अ़लैहिस्सलातु वस्सलाम के मामले में नसारा यानी ईसाई हद से आगे बढ़ गए और उन्हें ख़ुदाए तआ़ला का बेटा क़रार दिया और बाज़ ने उन्हें ख़ुदा ही मान लिया और यहूदियों ने ईसा अ़लैहिस्सलाम की माँ हज़रते मरयम को

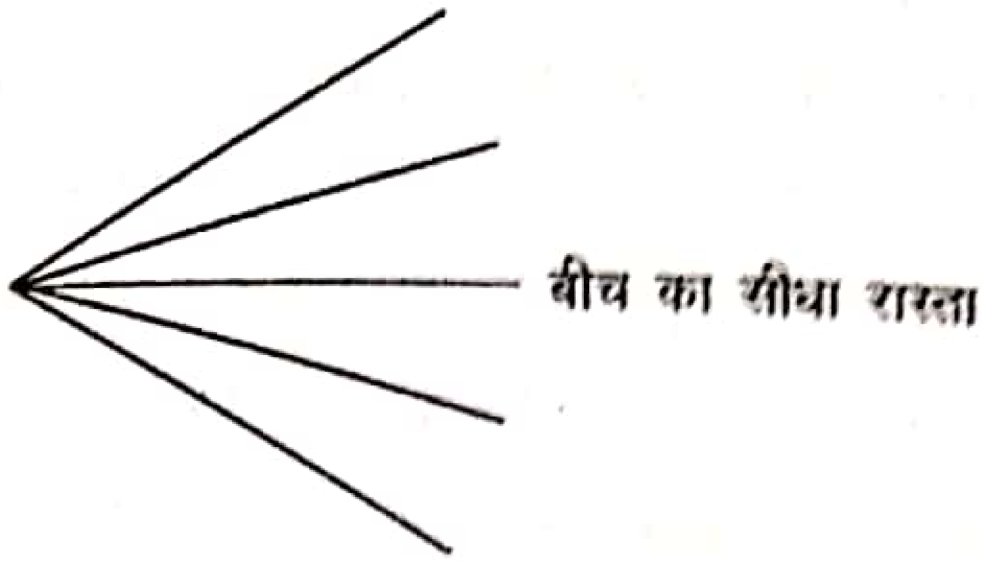
ज़ानिया और बदकार क़रार दे कर जनाब ईसा को वलदुज़्ज़िना (ज़िना से पैदा होने वाला) कह डाला। अल्लाह की पनाह! इस्लामी नुक़्तए नज़र से हज़रत सय्यिदना ईसा अ़ला नबिय्यिना व अ़लैहिस्सलाम न ख़ुदा हैं न ख़ुदा के बेटे न किसी ज़ानिया के बच्चे बल्कि ख़ुदाए तआ़ला के बरगुज़ीदा (प्यारे) बन्दे साहिबे अज़मत व जलाल पैग़म्बर, नबी और रसूल हैं।

अह्काम व मसाइल के मामले में भी शरीअ़ते इस्लामिया एक दरमियानी रास्ता है। जिसकी तफ़सील की मैं यहाँ ज़रूरत नहीं समझता।

एक हदीस में पैग़म्बरे इस्लाम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने साफ़ तौर पर फ़रमा दिया है कि बीच का और दरमियानी रास्ता ही सीधा और सच्चा रास्ता है और जो इधर-उधर हैं वह सब टेढ़े और गुमराही के रास्ते हैं।

हदीस : हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन मसऊद रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु से मरवी है कि रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने हमारे लिए एक ख़त (लाइन) खींचा फिर फ़रमाया यह अल्लाह का रास्ता है उसके बाद दायें और बायें ख़त खींचे और फ़रमाया कि यह वह रास्ते हैं जिन में से हर एक पर शैतान है जो अपनी तरफ़ बुलाता है।
(मिश्कात, बाबे एतिसाम बिलकिताब वलसुन्नह, सफ़हा 30)

और हक़ीक़त यही है कि एक नुकते से जब एक सीधा ख़त खींच दिया जाए फिर उसी नुकते से दाहिने और बायें जो ख़ुतूत यानी लाइने खींची जायेंगी वह सब टेढ़ी होंगी और दरमियान में न चल कर इधर-उधर को भागेंगी। नीचे के नक्शे से भी इस बात को समझा जा सकता है :



इस नक़्शे से ज़ाहिर है कि सीधा और दरमियान का रस्ता सिर्फ़ एक है और उसके दाहिने बायें जो रास्ते हैं वह सब टेढ़े हैं यानी इधर-उधर को भागने वाले हैं और यह सब गुमराही के रास्ते हैं। क़ुर्आन करीम में एक और जगह फ़रमाया गया :

وَ عَلَى اللّٰهِ قَصْدُ السَّبِيْلِ وَ مِنْهَا جَآئِرٌ ط

तर्जमा : "और बीच का रास्ता ठीक अल्लाह तक है और कुछ रास्ते टेढ़े हैं।" (पारा 14, रुकूअ़ 7, सूरए नह़ल)

और यह एक ईमानी लतीफ़ा है कि जिस तरह उम्मते मुस्लिमा को ख़ुदाए तआ़ला ने क़ुर्आने करीम में दरमियानी उम्मत फ़रमाया तो उम्मत में फ़िरक़े और गिरोह हो जाने के बाद भी अहले हक़ व सदाक़त को आज तक दरमियान ही में रखा यानी जिस तरह इस्लाम झूटे मज़हबों के दरमियान ग़ुलू व तक़सीर (कमी और ज़्यादती) से पाक बीच का सीधा रास्ता है ऐसे ही इस्लाम के नाम लेवा बातिल और झूटे फ़िरक़ों में अक़ाइद व नज़रियात के एतिबार से फ़िरक़ए नाजिया अहलेसुन्नत वलजमाअ़त हमेशा से दरमियान ही रहा है और आज भी है।

पेशे नज़र औराक़ जो एक किताबचे की शक्ल में

क़दरिया और जबरिया फ़िरक़ों के दरमियान

पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत सय्यिदना मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के दुनिया से तशरीफ़ ले जाने के बाद तारीख़े इस्लाम के इस इब्तिदाई दौर में जिन गुमराह फ़िरक़ो ने जन्म लिया उनमें "क़दरिया" और "जबरिया" दो मशहूर फ़िरक़े हैं। यह दोनों राहे हक़ सीधे और सच्चे रास्ते से हटे और इधर-उधर को बहके और मुसलमान कहला कर भी काफ़िरों के अक़ाइद इख़्तियार किये। इन दोनों के ख़्यालात एक दम एक दूसरे के बिल्कुल मुतज़ाद (विरोधी) हैं। नीचे हम इन दोनों के गुमराहकुन (गुमराह करने वाले) ख़्यालात का मुख़्तसर अन्दाज़ में जाइज़ा लेंगे और फिर फ़िरक़ए नाजिया अहलेसुन्नत वलजमाअ़त के अक़ाइद इस सिलसिले में बयान करेंगे जिन्हें पढ़ कर आप पर ख़ूब वाज़ेह हो जाएगा कि अहले हक़ दरमियान में हैं और सीधे सच्चे और बीच के रास्ते पर हैं

क़दरिया

यह फ़िरक़ा सहाबा-ए-किराम के ज़माने ही में वुजूद में आ चुका था यहाँ तक कि इनका ज़िक्र बड़े वाज़ेह और साफ़ अन्दाज़ में हदीस की मशहूर किताब सहीह मुस्लिम में एक हदीस के अन्दर है जिसको अभी हम चन्द सतर के बाद बयान करेंगे।

इस फ़िरक़े का अक़ीदा है कि इन्सान ख़ुद ही अपने अफ़आ़ल (कर्मों) का ख़ालिक़ (निर्माता) है जब वह कुछ

करता है तभी वह काम वुजूद में आता है तक़दीर कोई चीज़ नहीं है यानी पहले से कुछ लिखा हुआ नहीं है और अल्लाह तआ़ला को भी किसी काम का इल्म तभी होता है जब इन्सान उसे करता है, सुदूर व वुजूद (काम के होने) से पहले वह अल्लाह तआ़ला के भी इल्म में नहीं होता।

ख़ुलासा यह कि उनके नज़दीक इन्सान पूरी तरह मालिक व मुख़्तार और क़ादिर है। उसका इरादा ही सब कुछ है पहले से लिखा होना यानी तक़दीर कोई चीज़ नहीं है।

इस फ़िरक़े का बानी बसरे का रहने वाला एक शख़्स था जिसका नाम "मअ़बद जुहनी" था। सबसे पहले इसी शख़्स ने तक़दीर का इन्कार किया सह़ीह़ मुस्लिम में है :

हदीस : "हज़रते यह़या बिन मअ़मर से मरवी है कि सबसे पहले तक़दीर का जिसने इन्कार किया वह "मअ़बद जुहनी" है यह़या कहते हैं कि मैं और ह़ुमैद बिन अ़ब्दुर्रह़मान हज के लिए मक्कए मुअ़ज़्ज़मा गए तो हमने कहा कि अगर ह़ुज़ूर के सह़ाबा में से हमें कोई मिला तो हम उससे तक़दीर के बारे में मालूमात करेंगे। इत्तिफ़ाक़ से हमें हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन उमर मिल गए जो मस्जिद शरीफ़ में दाख़िल हो रहे थे तो हम दोनों उनके दाहिने और बायें हो लिए। यह़या कहते हैं कि मैं जानता था कि ह़ुमैद ख़ुद बात न करके मुझ से ही बात करायेंगे।

लिहाज़ा मैंने हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन उमर से अ़र्ज़ किया कि हमारे यहाँ कुछ लोग हैं जो क़ुर्आन पढ़ते हैं। इल्मे दीन हासिल करते हैं और भी कुछ उनकी तारीफ़ करके मैंने कहा कि वह लोग ख़्याल करते हैं उनका अ़क़ीदा है कि "तक़दीर कोई चीज़ नहीं है (यानी पहले

से लिखा हुआ कुछ नहीं है) इन्सान का करना ही सब कुछ है और वह अपने कामों का ख़ुद ही ख़ालिक़ है।"

यह सुन कर हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन उमर ने फ़रमाया कि जब तुम उन लोगों से मुलाक़ात करो तो मेरी तरफ़ से कह देना कि वह मेरे नहीं मैं उनका नहीं फिर हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन उमर ने क़सम खा कर यह बात कही कि अगर कोई शख़्स उहुद पहाड़ के बराबर सोना भी राहे ख़ुदा में ख़र्च करे तो अल्लाह तआ़ला उसकी यह ख़ैरात क़बूल नहीं फ़रमायेगा जब तक वह तक़दीर पर ईमान न लाए।

इसके बाद हज़रते अ़ब्दुल्लाह बिन उमर ने एक तवील हदीस रसूले पाक स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम का फ़रमाने गिरामी बयान फ़रमाया जिसमें अच्छी बुरी तक़दीर का अक़ीदा रखना ईमान के लिए ज़रूरी फ़रमाया गया है।

(स़ह़ीह़ मुस्लिम, जिल्द 1, किताबुल ईमान, सफ़ह़ा 27)

इस हदीस से जहाँ फ़िरक़ए क़दरिया की अस्ल और उनके बातिल अ़क़ाइद का पता चला वहीं यह भी मालूम हुआ जो लोग गुमराह व बद्दीन और बद्अ़क़ीदा हों उनसे दूरी और नफ़रत बेहद ज़रूरी है और उनका कोई अमल बारगाहे ख़ुदावन्दी में क़बूल नहीं जब तक उनका अ़क़ीदा व ख़्याल दुरुस्त न हो ख़्वाह वह कितना ही क़ुर्आन पढ़ें और दीनदार बन कर रहें। ऐसे बद्अ़क़ीदा नाम के मुसलमानों से नफ़रत करना रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के स़ह़ाबा का तरीक़ा है।

ख़ुलासा यह है कि "क़दरिया" एक बातिल फ़िरक़ा

है जो तक़दीर का इन्कार करता है और कहता है कि पहले से कुछ लिखा हुआ नहीं मुक़द्दर और तक़दीर कोई चीज़ नहीं। जो हुआ और जो होगा उन सब का इल्म रखने वाले पैग़म्बरे आज़म हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने उनके बारे में पहले ही से फ़रमा दिया था। हदीस शरीफ़ में है हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया :

क़दरिया इस उम्मत के मजूसी हैं अगर वह बीमार हों तो उनकी बीमारपुर्सी को न जाओ अगर वह मरें तो उनके जनाज़े में शरीक न हो।

(मिश्कात, बाबुलईमान बिलक़द्र, सफ़्हा 22)

तक़दीर पर ईमान लाना और ईमान रखना मुसलमान के लिए ज़रूरी है और तक़दीर का मुनकिर यक़ीनन इस्लाम से ख़ारिज है। इस पर ईमान रखने की अहमियत के पेशे नज़र हदीस व अ़क़ाइद की किताबों में उलमा ने किताबुल क़द्र और बाबुलईमान बिलक़द्र के नाम से मुस्तक़िल बाब ज़िक्र फ़रमाये हैं और सैकड़ों हदीसें इस पर ईमान से मुतअ़ल्लिक़ रिवायत की गई हैं यानी हर मुसलमान के लिए लाज़िम है कि वह यह अ़क़ीदा रखे कि काइनात में जो कुछ भी होता है या इन्सान जो कुछ करता है अच्छे काम हों या बुरे काम सब पहले से लिखा हुआ है और सब का पैदा करने वाला अल्लाह ही है और उसके इल्म में सब पहले से है लेकिन इन्सान जो कुछ करता है उसमें उसका अपना इरादा भी शामिल होता है और इसी इरादे की वजह से वह अच्छे काम पर सवाब और बुरे काम पर अज़ाब व सज़ा का मुस्तहिक़ है।

तक़दीर का मुतलक़न इन्कार इन्सान को ख़ालिक़ मानना है और क़ुर्आने करीम में है :

هَلْ مِنْ خَالِقٍ غَيْرُ اللّٰهِ

तर्जमा : "अल्लाह के अलावा कोई और ख़ालिक़ नहीं।"

इस सब की तफ़सील अभी आगे आती है।

जबरिया

यह एक दूसरा फ़िरक़ा है जो क़दरियों के बिल्कुल मुक़ाबिल वुजूद में आया और उन्होंने बीच का रास्ता इख़्तियार न करके तक़दीर के मामले में इन्सान को बिल्कुल मजबूर पेड़ों, पत्थरों की तरह क़रार दिया यानी इन्सान जो कुछ करता है उसमें उसका इरादा कोई चीज़ नहीं और उसकी नियत का कोई दख़ल नहीं और उसको किसी क़िस्म की कोई क़ुदरत व ताक़त हासिल नहीं, उसको बिल्कुल इख़्तियार नहीं वह तक़दीर यानी लिखे हुए के आगे मिट्टी के ढेलों, पेड़ों, पत्थरों की तरह मजबूर है यानी जिस तरह लकड़ी, पत्थर और ढेले वग़ैरह की हरकात हैं कि इधर से उधर जाने, नीचे उतरने और ऊपर चढ़ने में इन चीज़ों का न अपना इरादा है न इख़्तियार, न ताक़त व क़ुव्वत बल्कि जो इन्हें जब जहाँ चाहे ले जाए ऐसे ही इन्सान है। उनके नज़दीक किसी इन्सान का शराब पीना ऐसा ही है जैसे किसी लकड़ी या पत्थर में सुराख़ करके शराब उनके अन्दर पहुँचा दी गई जिस तरह लकड़ी या पत्थर के अपने इरादे, ख़्याल और नियत को दख़ल नहीं, इन्सान भी तक़दीर के आगे इसी तरह मजबूर है यानी उसका इरादा और नियत कोई चीज़ नहीं।

इस फ़िरक़े का यह अक़ीदा भी इस्लामी नुक़्तए

नज़र से बड़ी गुमराही व बद्दीनी है क्यूँकि यह अक़ीदा रखना अल्लाह तआ़ला को मआ़ज़ल्लाह ज़ालिम क़रार देना है क्यूँकि इन्सान जब अच्छे या बुरे काम करने में तक़दीर के आगे ऐसा मजबूर है कि उसमें उसका अपना इरादा और नियत भी शामिल नहीं तो उस पर अ़ज़ाब करना ज़ुल्म ही कहा जाएगा हालांकि क़ुर्आने करीम में फ़रमाने इलाही है :

وَمَا اَنَا بِظَلَّامٍ لِّلْعَبِيْد

तर्जमा : "मैं बन्दों पर ज़ुल्म नहीं फ़रमाता।"

और फ़रमाता है :

جَزَاءً بِمَا كَانُوْ يَعْلَمُوْن

तर्जमा : (यह अज़ाब) बदला है उनके करतूतों का।

और फ़रमाता है :

مَنْ شَاءَ فَلْيُؤْمِنْ وَ مَنْ شَاءَ فَلْيَكْفُرْ

तर्जमा : "जो चाहे ईमान लाए और जो चाहे कुफ़्र करे।"

यानी इन्सान जो कुछ करता है उसमें तक़दीर के साथ-साथ उसका अपना इरादा भी शामिल है और जो काम उसके इरादे के शामिल होने से वुजूद में आते हैं उन्हीं पर अ़ज़ाब दिया जाएगा, क़दरिया और जबरिया के ख़्यालात को जो तफ़सील से जानना चाहे वह इल्मे अ़क़ाइद व कलाम की किताबों का मुतालआ़ करे।

इस बारे में मज़हबे अहलेसुन्नत वलजमाअ़त

ऊपर के बयान से आप पर ज़ाहिर हो गया कि दोनों बातिल फ़िरक़े क़दरिया और जबरिया ने तक़दीर के मामले में सख़्त ग़लती की और एक ने तक़दीर का सिरे से इन्कार कर दिया और इन्सान ही को उसके अफ़आ़ल

(क्रिया-कर्मों) का ख़ालिक़ और मुकम्मल तौर पर क़ादिर मान लिया जब कि दूसरे ने इन्सान को लकड़ी पत्थर और मिट्टी के ढेलों की तरह बिल्कुल मजबूर क़रार दे दिया, लेकिन राहे हक़ जो अहलेसुन्नत वलजमाअ़त का अ़क़ीदा है और क़ुर्आन व हदीस के मुताबिक़ है वह दरमियानी रास्ता है। अहलेसुन्नत का अ़क़ीदा इस बारे में यह रहा है और आज भी है।

इन्सान कोई अच्छा काम करे या बुरा, वह उस काम को करने का इरादा करता है और अल्लाह तआ़ला उस फ़ेल (काम) को पैदा फ़रमा देता है तो ख़ालिक़ अल्लाह तआ़ला ही है और वह काम अगरचे अल्लाह तआ़ला के इल्म में पहले से है लेकिन इसकी तख़लीक़ और पैदाइश इन्सान के इरादा करने के बाद ही वुजूद में आती है। ख़ुलासा यह है कि इन्सान न ख़ुदाए तआ़ला की तरह क़ादिरे मुतलक़ और ख़ालिक़ व मूजिद है (जैसा कि क़दरिया का ख़्याल है) और न पेड़, पत्थर की तरह पूरी तरह मजबूर बे-इरादा और बे-नियत और बे-अ़क़्ल है (जैसा कि जबरिया का ख़्याल है)

सीधा रास्ता दरमियान में है यानी ख़ालिक़ व क़ादिरे मुतलक़ और मूजिद हर शय का (हर चीज़ का बनाने वाला) अल्लाह ही है लेकिन इन्सान की करनी में चूंकि उसका इरादा भी शामिल है लिहाज़ा वह जज़ा और सज़ा का मुस्तहिक़ है।

ज़ाहिर है कि इन्सान में अक़्ल अल्लाह तआ़ला ने पैदा फ़रमाई है और अच्छे बुरे को नफ़ा व नुक़सान को समझने की सलाहियत उसको अता फ़रमाई है और पैग़म्बरों

को भेज कर उसकी अक़्ल की रहनुमाई फ़रमाई है और पेड़, पौधों को लकड़ी और पत्थरों को यह नेमत नहीं दी गई है लिहाज़ा इस की और उनकी हरकात व सकनात और अफ़आल (एक्टिविटीज़) में फ़र्क़ करना होगा। अगर किसी इन्सान के सिर पर पहाड़ से पत्थर या पेड़ से टहना टूट कर गिर जाए और वह कुचल कर मर जाए तो उस पहाड़ या दरख़्त को कोई दुनिया का कोर्ट सज़ा नहीं देता और इसी पत्थर या टहने को कोई इन्सान किसी के सिर पर गिरा दे तो वह लाइक़े सज़ा क़रार दिया जाए, आख़िर क्यूँ?

बात यही है कि इन्सान के काम उसके इरादे, नियत, ख़्याल और चाहने के बाद ही अल्लाह तआला के इरादे से वुजूद में आते हैं और पेड़, पौधों, पत्थरों में इरादा करने और चाहने का कोई मतलब ही नहीं

बल्कि इन्सान से भी कभी-कभी बे-इरादा हरकात व अफ़आल का सुदूर होता है मसलन किसी इन्सान को राशा यानी हाथ या सिर में कपकपाने और हिलने की बीमारी हो और उसका हाथ या सिर ख़ुद-ब-ख़ुद हिलता रहता हो और एक शख़्स जानबूझ कर अपना हाथ या सिर हिलाए तो उस राशा के बीमार और उस तन्दरुस्त की हरकात में फ़र्क़ ज़रूरी है। यहाँ तक कि इन्सान से भी अगर कोई ग़लत काम उसके इरादे और चाहे बग़ैर वुजूद में आ जाए तो उस पर उसकी पकड़ नहीं मसलन एक वह औरत कि जिसको चन्द लोग ज़बरदस्ती पकड़ कर और उसको नन्गा करके उसके साथ ज़िना करें और एक वह औरत जो बराज़ी ख़ुशी बदकारी कराये। एक वह शख़्स जिसको चन्द लोग दबोच कर किसी तरह उसके पेट

में शराब पहुँचा दें और वह उसको नापसन्द करता है और एक वह जो शराब की दुकान पर ख़ुद जाए और ख़रीदे और पिये। तो जिस औरत के साथ ज़बरदस्ती मजबूर करके ज़िना किया गया और जिसके पेट में मजबूर करके शराब पहुँचा दी गई उन पर कोई गुनाह और पकड़ नहीं क्यूँकि उसमें उनके इरादे और चाहने को दख़ल नहीं तो गुनाह व अज़ाब तभी है जब कि इन्सान का इरादा इस फ़ेल में शामिल हो यहाँ तक कि इस क़िस्म के सैकड़ों मसाइल को तफ़सील से बयान करने के लिए इस्लामी हदीस व फ़िक़्ह की किताबों में "बाबुल इकराह" के नाम से मुस्तक़िल एक उनवान (शीर्षक) बाँधा गया है यानी "मजबूर करने का बयान"। सहीह़ बुख़ारी, जिल्द 2 में इसी उनवान के तह़त एक हदीस में है कि एक शख़्स ने एक लड़की के साथ जबरन ज़िना किया तो हज़रते उमर फ़ारूक़े आज़म रदि़यल्लाहु तआ़ला अ़न्हु ने उस मर्द को सज़ा दी लेकिन उस लड़की को सज़ा नहीं दी।

एक हदीस में है कि हुज़ूर नबीए करीम अ़लैहिस्सलातु वत्तसलीम ने फ़रमाया कि ऐ अली जब किसी (अजनबी औरत के चेहरे या बदन) पर तुम्हारी एक नज़र पड़ जाए तो दूसरी नज़र उस पर मत डालो, पहली नज़र में तुम्हारे लिए कोई गुनाह नहीं और दूसरी तुम्हारे लिए जाइज़ नहीं। (मिश्कात बाबुन्नज़र इलल मख़तूबह, सफ़ह़ा 269)

ज़ाहिर है कि पहली नज़र इसीलिए माफ़ है कि इसमें इन्सान के क़स्द व इरादे और नियत को दख़ल नहीं होता और यह वह नज़र है जो अचानक किसी औरत के चेहरे पर पड़ जाती है। तो यह बात वाज़ेह है कि इन्सान

ग़लत काम करने में तभी गुनाहगार और अज़ाब का सज़ावार है जब कि उसमें उसका इरादा शामिल हो और जब उसका अपना इरादा शामिल है तो उसको सज़ा मिलना और उस पर अज़ाब होना ही चाहिए और किसी भी ईमान व अक़्ल वाले को इसमें शक नहीं होना चाहिए। इसी मसअले को जो शख़्स और भी ज़्यादा तफ़सील तहक़ीक़ के साथ दलाइल की रौशनी में समझना चाहे वह आलाहज़रत मौलाना शाह अह़मद रज़ा ख़ाँ रह़मतुल्लाहि अ़लैह की लिखी हुई किताबों का मुतालआ़ करे, बड़े अनोखे, निराले, लाजवाब तरीक़े से मिसालों और दलीलों की रौशनी में उन्होंने इस मसअले को समझाया है और ख़ास इस बारे में दो किताबें तसनीफ़ फ़रमाई हैं :

1. अत्तहबीर बिबाबित्तदबीर 2. सलजुस्सद्र लिईमानबिलक़द्र

यहाँ यह बता देना भी ज़रूरी है कि तक़दीर का मसअला एक निहायत नाज़ुक मसअला है यहाँ तक कि इससे मुतअ़ल्लिक़ बहस व मुबाहिसा करने से हदीसे पाक में मना फ़रमाया गया है और पैग़म्बरे इस्लाम सय्यिदना मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने इस पर सख़्त नाराज़गी का इज़हार फ़रमाया और आमतौर से देखा गया है कि बिला ज़रूरत अवाम के सामने इस बहस को वही लोग छेड़ते हैं जो गुमराह होते हैं और शैतान के जाल में फँसे हुए हैं और उसके इशारे पर दूसरों को भी फाँसना चाहते हैं। इस मौक़े पर अपने भाईयों की रहनुमाई के लिए मैं एक ख़ास बात बता दूँ कि तक़दीर का मसअला हो या कोई और इस्लामी, क़ुर्आनी, ईमानी बात अगर आप का दिमाग़ उसको क़बूल न करे और

शैतान आपको शक व शुबह में डाले तो उसके शर से बचने और ईमान सलामत रखने की तरकीब यह है कि आप यह देखिए कि हमारा ईमान, हमारी अ़क्ल, समझ बूझ और दिमाग़ व फ़िक्र पर नहीं है, हमारा ईमान तो अल्लाह व रसूल पर है।

जो बात अल्लाह तबारक व तआ़ला और उसके रसूले मक़बूल स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाई और कुर्आन व हदीस में आई वह बिल्कुल हक़ है ख़्वाह हमारी अक़्ल में आए या न आए, हमारा दिमाग़ उसे क़बूल करे या न करे, हमारे ज़हन में समाए या न समाए। अक़्ल धोका खा सकती है, दिमाग़ ग़लत सोच सकता है, ज़हन व फ़िक्र में कुछ का कुछ आ सकता है लेकिन अल्लाह व रसूल का फ़रमान ग़लत नहीं हो सकता। और ऐसा अक्सर होता है कि इन्सानी अक़्ल धोका खाती है। एक ही मर्ज़ के बारे में एक डाक्टर कुछ कहता है तो दूसरा कुछ और, बसा औक़ात इन्सान अपने नफ़ा के लिए कोई काम करता है और उसमें उसे नुक़सान हो जाता है फ़ाएदे के लिए करता है और घाटा हो जाता है। क्या नहीं देखते कि कितने ही लोग पढ़े लिखे, होशियार, चालाक, सूझ बूझ रखने वाले हैं लेकिन निहायत तंगदस्त, रोटी रोज़ी को परेशान रहते हैं और कितने ही वह हैं कि बिल्कुल भोले भाले, सीधे-साधे हैं और बे पढ़े लिखे अक़्ल के कमज़ोर हैं लेकिन इ़ज़्ज़त व दौलत वाले हैं और पुरसुकून ज़िन्दगी गुज़ारते हैं।

ग़रज़ कि इन्सानी अक़्ल का कुछ भरोसा नहीं, कुछ का कुछ समझते उसे देर नहीं लगती उस पर एतिक़ाद रखना और हर मज़हबी बात को उसकी कसौटी पर कस

कर देखना बड़ी भूल है। भाईयो! ईमान का मरतबा अक़्ल व फ़िक्र से बहुत बुलन्द है और अल्लाह व रसूल का कलिमा हर कलिमे से ऊँचा है। उनकी बात हर बात से बाला है हमारी समझ में तो जब शरीअ़त की कोई बात नहीं आती और अक़्ल उसे क़बूल नहीं करती तो हम तो अक़्ल को एक तरफ़ रखते और उसको ग़लत समझते और फ़रमाने ख़ुदा व रसूल को सीने से लगाते और कहते हैं कि हम ईमान लाए अल्लाह पर और उसके रसूल पर न कि अपनी अक़्ल व दिमाग़ व फ़िक्र पर। وَالْحَمْدُ لِلّٰهِ عَلٰى ذٰلِكَ

जो लोग मुसलमान हो कर किसी भी बात को तभी मानने को तय्यार होते हैं जब वह उनकी अक़्ल में आ जाए वह या तो गुमराह हो चुके हैं या अनक़रीब होने वाले हैं ऐसों का ख़ात्मा ईमान पर होना बड़ा मुश्किल है। और वह ऐसे ही हैं कि गोया उन्होंने सरकारे दो आलम हज़रत मुहम्मद सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम को रसूल मानने के बजाए अपनी अक़्ल को रसूल मान लिया है और उसी का कलिमा पढ़ रखा है।

ولا حول ولا قوة الا باالله

और यह मर्ज़ यूनीवर्सिटियों, कालेजों के तालीमयाफ़्ता लोगों में आम होता जा रहा है। उनमें से बहुत से लोग वुह हैं कि न तो वह दीनी इस्लामी किताबों का मुतालआ करते हैं और न ही बा-सलाहियत उलमा से राब्ता करते हैं बस कोई बात उनकी समझ में नहीं आती तो मज़हबे इस्लाम पर एतराज़ करना शुरू कर देते हैं। बस अपनी खोटी समझ पर यकीन रखे हुए हैं और अंग्रेज़ी और साइंस पढ़ कर ख़ुद को आलिमे दीन ख़्याल किए हुए हैं।

क्या नहीं देखते कि गवर्नमेंट और हुकूमत की बहुत सी बातें फ़ैसले और क़ानून आम आदमी की समझ में नहीं आते और वह गवर्नमेंट को कोसता और बुरा भला कहता रहता है और उसकी हिकमत जब उसे समझाई जाए तो उसका दिमाग़ साफ़ हो जाता है लेकिन हर क़ानून, हर फ़ैसले की हिकमत हर शख़्स को न बताई जा सकती है न समझाई जा सकती है। ऐसे ही दीनी उमूर (काम) और मज़हबी मामलात और इस्लामी मसाइल की हर हिकमत और मसलेहत हम नहीं जान सकते जो हमारी समझ में आ गई या हमें बता दी गई हम वही जान सकते हैं और जो नहीं बताई गई तो उसके बारे में हमें यही कहना लाज़िम व ज़रूरी है कि वह हमारी समझ से वरा (ऊपर) और अक़्ल से बाला (ऊँची) है लेकिन बिल्कुल हक़, दुरुस्त व सही और सच है।

भाईयो! अक़्ल को भी अल्लाह तआ़ला ने ही पैदा किया है और उसको जितनी सलाहियत, ताक़त व क़ुव्वत दी है वह उससे आगे नहीं बढ़ सकती और जब वह उसकी मख़लूक़ है और वह उसका पैदा करने वाला ख़ालिक़, तो ख़ालिक़ अपनी ही मख़लूक़ में कैसे समा सकता है। क्या आप यह चाहते हैं कि अल्लाह तआ़ला उसकी ज़ात और सारी सिफ़ात और उसकी हर बात आपकी की अक़्ल में आ जाए? अगर आपका ऐसा ही ख़्याल है तो आप से बड़ा कोई नादान नहीं।

ख़ुलासा यह है कि तक़दीर के मसअले में जबरिया और क़दरिया दोनों फ़िरक़े इधर-उधर चले और हद से आगे बढ़े बीच का सीधा रास्ता छोड़ कर दाहिने बायें को भागे एक ने इन्सान ही को अपनी हरकात व अफ़आ़ल

(क्रिया-कलाप) का ख़ालिक़ मान लिया है और दूसरे ने उसे पत्थरों की तरह मजबूर मान लिया, दोनों गुमराह हुए और अहले सुन्नत वल जमाअत ने दोनों के दरमियान राहे हक़ को इख़्तियार किया कि इन्सान न तो मआज़ल्लाह ख़ुदाए तआला की तरह मुख़्तार, क़ादिर व ख़ालिक़ है और न ही पेड़, पत्थर, लकड़ी, ढेलों, घास, फूस और पत्तों की तरह मजबूर बल्कि हक़ दरमियान में है। और बेशक होता वही है जो तक़दीर में लिखा हुआ है लेकिन तदबीर को भी एक ख़ास क़िस्म का दख़ल है। और ऐसा नहीं है कि इन्सानी तदबीर बिल्कुल कोई चीज़ नहीं। और यूँ नहीं कहना चाहिए कि अल्लाह ने जैसा लिख दिया है इन्सान को वैसा ही करना है बल्कि यह कहना चाहिए कि जैसा वह करने वाला था अल्लाह तआला ने अपने इल्म से वह लिख दिया है।

ऊपर के बयान में क़दरिया और जबरिया दोनों फ़िरक़ों के अक़ाइद और अहलेसुन्नत वल जमाअत के नज़रियात पढ़ कर आप पर वाज़ेह हो गया होगा कि ख़ुदाए तआला ने जैसा कि "उम्मते वसत" यानी दरमियानी उम्मत फ़रमाया। फ़िरक़ाबन्दी के बाद भी अहले हक़ को अक़ाइद व नज़रियात के मामले में दरमियान ही में रखा।

अब अख़ीर में इन दोनों फ़िरक़ों की गुमराही के इज़हार के लिए एक हदीस लिख कर इस मौज़ूअ को समेट दिया जाए।

हदीस : फ़रमाया रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआला अ़लैहि वसल्लम ने मेरी उम्मत के दो गिरोहों को इस्लाम से कोई तअ़ल्लुक़ नहीं मरजिया (जबरिया) और क़दरिया।

(मिश्कात सफ़हा 23)

राफ़िज़ियों और ख़ारिजियों के दरमियान

इस्लाम के इब्तिदाई दौर में पैदा होने वाले बातिल फ़िरक़ों में यह राफ़िज़ी और ख़ारिजी दोनों फ़िरक़े बड़े मशहूर हैं। राफ़िज़ियों को "शीआ़" और ख़ारिजियों को "नासिबी" भी कहते हैं, उनका एक नाम "हरूरिया" भी है। तफ़सील से इन फ़िरक़ों की तारीख़ उनके मुख़तलिफ़ गिरोह उनके अ़क़ाइद व दलाइल और उनकी तरदीद जानने के लिए बड़ी-बड़ी किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए। यहाँ तो हम सिर्फ़ मुस्लिम भाईयों के लिए एक जाइज़ा पेश करेंगे कि यह दोनों बातिल व काज़िब फ़िरक़े यानी राफ़िज़ी व ख़ारिजी दरमियान का रास्ता जो हक़ व दुरुस्त है उसको छोड़ कर इधर-उधर को भागे और उन में से एक दूसरे के नज़रियात एक दम मुतज़ाद (ख़िलाफ़) हुए और अहलेसुन्नत को ख़ुदाए तआ़ला ने दरमियान में ही रखा और यह दोनों इस्लाम की हदों को पार कर गए और कुफ़्र की घाटियों मे जा गिरे। इन दोनों फ़िरक़ों की गुमराही के बारे में सरकारे दो आलम पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने ख़ुद ही फ़रमाया था और उनकी मुकम्मल निशानदिही यूँ फ़रमाई थी :

हदीस : हज़रत सय्यिदना अ़ली कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम इरशाद फ़रमाते हैं कि मुझ से रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया ऐ अली तुम में हज़रत ईसा की मिसाल है, यहूदियों ने उन से दुश्मनी की यहाँ तक कि उनकी माँ (हज़रत मरयम) पर

तोहमत लगाई और ईसाईयों ने महब्बत की तो उन्हें उनके मरतबे से आगे बढ़ा दिया (उन्हें ख़ुदा का बेटा या तीसरा ख़ुदा मान लिया) हज़रते अ़ली कहते हैं हुज़ूर ने फ़रमाया कि तुम्हारे बारे में भी दो क़िस्म के लोग गुमराह होंगे एक महब्बत में हद से आगे बढ़ने वाला जो तुम को तुम्हारे मरतबे से आगे बढ़ाएंगे और दूसरे वह जो तुम से दुश्मनी रखेंगे और इस दुश्मनी की वजह से वह तुम पर बोहतान लगाएंगे। (मिश्कात, बाबे मनाक़िबे अली इब्ने तालिब, फसले सालिस, सफ़हा 565)

राफ़िज़ियों, ख़ारिजियों के अक़ाइद की मालूमात रखने वाले अहले ईमान जब इस हदीसे रसूले मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम और फ़रमाने अली मुरतज़ा को पढ़ते हैं तो ख़ुशी से झूम उठते हैं कि वाक़िई क़ियामत तक जो कुछ होने वाला है वह सारी लकीरें पैग़म्बरे इस्लाम ने खींच दी हैं। अब हम अलग-अलग इन दोनों फ़िरक़ों की मुख़्तसर तारीख़ और हालात व अक़ाइद की क़दरे तफ़सील बयान करेंगे जिसे पढ़ कर ख़ूब वाज़ेह हो जाएगा कि वाक़िई हदीस के मफ़हूम के मुताबिक़ हुआ और यह दोनों नाम निहाद इस्लामी फ़िरक़े इस्लामी हदों को फलांग गए और एक को हज़रते अली की बे-जा महब्बत और दूसरे को उनकी अदावत जहन्नम ले जाएगी।

हसन सुन्नी है फिर इफ़रात-ओ-तफ़रीत उससे क्यूँकरहो
अदब के साथ रहती है रविश अरबाबे सुन्नत की
(उस्तादे ज़मन मौलाना हसन बरेलवी)

राफ़िज़ी

इनका पुराना नाम 'शीआ' है। शीआ का मअ़ना पैरोकार, तरफ़दार और हिमायती के हैं चूंकि यह लोग हज़रत सय्यिदना अली मुरतज़ा कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम के तरफ़दार, पैरोकार और हिमायती कहलाते थे इसलिए उन्हें शुरू में शीआ़ने अली और फिर शीआ के नाम से जाना गया। फिर हज़रते मौलाए काइनात अ़ली रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु की महब्बत में यह लोग हद से आगे बढ़े और दीगर सहाबए किराम ख़ासकर हज़राते ख़ुलफ़ाए सलासा यानी सय्यिदना अबूबक्र सिद्दीक़, हज़रत सय्यिदना उमर फ़ारूक़, हज़रत सय्यिदना उस्मान ग़नी रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम की शान में गुस्ताख़ियाँ करने लगे।

राफ़िज़ी के मअ़ना मैदाने जंग में अपने अमीर को छोड़ कर भागने वाले के हैं। हज़रत सय्यिदना इमाम हुसैन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु के पोते हज़रत ज़ैद बिन अली को उन लोगों ने अपना इमाम व पेशवा मान लिया था और उन्हें उमवी बादशाह हिशाम बिन अब्दुल मलिक के मुक़ाबले पर खड़ा कर दिया और फिर उन से कहने लगे कि अबूबक्र और उमर से बेज़ारी का एलान कीजिए (उन्हें बुरा कहिये) वरना हम आपको छोड़ देंगे लेकिन हज़रत ज़ैद रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु ने फ़रमाया कि मैंने अपने ख़ानदान में किसी को नहीं देखा कि वह हज़रते अबूबक्र और हज़रते उ़मर की शान में गुंस्ताख़ी करता हो और फिर एक हदीस बयान फ़रमाई।

हदीस : मुझ से मेरे वालिद ने रिवायत की है कि रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने हज़रते

अली से फ़रमाया कि एक क़ौम होगी जो हम तुम से महब्बत का दावा करेगी उनका एक बुरा लक़ब होगा जिस से वह जाने जाएंगे तो जब तुम उन्हें पाओ तो क़त्ल कर देना, वुह मुशरिक हैं।

यह हदीस बयान करने के बाद हज़रते ज़ैद ने फ़रमाया :

اذهبوا فانتم (الرّافضة)

"जाओ तुम राफ़िज़ी यानी साथ छोड़ने वाले हो।"

तभी से उनका लक़ब राफ़िज़ी हो गया और बजाए शीआ़ के उनको राफ़िज़ी ही कहना मुनासिब है। गुनयतुत्तालिबीन, सफ़हा 196 में भी उनको राफ़िज़ी कहने की वजह यही बताई गई है और उनकी इसी ग़द्दारी की वजह से हज़रते ज़ैद को उस उमवी ज़ालिम बादशाह के मुक़ाबिल शिकस्त हुई। यहाँ तक कि हिशाम ने आप को गिरफ़्तार करके सूली पर लटकाया।

(तारीख़ इब्ने जरीर तबरी मुतरजम, जिल्द 7, सफ़हा 233)

और इन्ही हज़रत इमामे हुसैन के पोते हज़रत इमाम ज़ैद इब्ने अली ने इन लोगों को मुख़ातब करके यह भी फ़रमाया था

खारजियों ने तो उन्ही को बुरा कहा जो अबूबकर व उमर से नीचे हैं यानि उस्मान और अली लेकिन उबूबकर और उमर की शान में कुछ कहने की हिम्मत वह भी न कर सके लेकिन ऐ राफ़ज़ियों तुम तो बहुत आगे बढ़ गये कि अबूबकर व उमर को भी बुरा भला कहने लगे क़सम अल्लाह की अब कौन रह गया जिसको तुम ने बुरा न कह दिया

(अस्सवाअिकुल मुहरिक़ा सफ़हा 53 मतबुआ़ मकतबा मजीदिया मुल्तान)

और हज़रत सय्यदना इमाम हुसैन के दूसरे पोते सय्यदना उमर बिन अली राफ़ज़ियों के बारे में कहा करते थे

यह लोग हमारे नाम का सहारा लेकर खाने कमाने वाले हैं

(अस्सवाअिकुल मुहरिक़ा सफ़हा 56)

और यही ग़द्दारी यह लोग इमाम हुसैन के साथ करबला में कर चुके थे। उन्हें बुला कर उनके दुश्मन के साथ हो गए और शहीद कर दिया और शहादत के बाद रोने-पीटने लगे, मातम और सीनाकूबी करके दुनिया को धोका देना चाहते हैं।

ख़ुज़ैमा असदी कहते हैं मैं कूफ़ा में उस वक़्त दाख़िल हुआ जब हज़रत इमाम अली बिन हुसैन ज़ैनुल आबिदीन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु अपने वालिदे गिरामी वक़ार सय्यिदना इमाम हुसैन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु की शहादत के बाद अपने घर वालों के साथ करबला से गिरफ़्तार होकर ज़ालिम इब्ने ज़ियाद के पास कूफ़ा ले जाए जा रहे थे तो मैंने देखा कि कूफ़े की औरतें गिरेबान फ़ाड़-फाड़ कर रो रही थीं और हज़रत इमाम ज़ैनुलआबिदीन फ़रमा रहे थे :

"ऐ कूफ़े वालो! तुम हम पर रो रहे हो बताओ हमें तुम्हारे अलावा और किस ने क़त्ल किया है?"

(मुक़दमा तोहफ़ए इसना अशरिया)

राफ़िज़ियों के बारे में एक और हदीस इमाम बयहक़ी ने हज़रते अली की रिवायत से नक़ल की है हज़रते अली फ़रमाते हैं कि मुझसे रसूलअल्लाह सल्लल्लाहो तआ़ला अलैह वसल्लम ने फ़रमाया

يكون فى امتى قوم يسمون الرافضة يرفضون الاسلام

मेरी उम्मत में राफ़िज़ी नाम की एक कौम होगी जो इस्लाम से भागे हुए होंगे (मवाहिबलदुनिया जिल्द 3 सफ़्हा 572)

ख़ुलासा यह कि राफ़िज़ी यानी शीआ वह फ़िरक़ा है जो हज़रते मौला अली कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम और अहलेबैत की महब्बत का दावा करके निकला और फिर इस महब्बत में ग़ुलू कर गया यानी हद से आगे बढ़ गया और इस्लामी दायरे से बाहर क़दम रख दिया जैसे कि हज़रते ईसा अ़लैहिस्सलाम की महब्बत में ईसाई। यहाँ तक कि राफ़िज़ियों के मुख़्तलिफ़ गिरोहों में से एक गिरोह जिसको "ग़ालिया" कहते हैं उन्होंने जनाब अली मुरतज़ा को ख़ुदा मान लिया, उनके बाज़ ने नबी और रसूल कहा। उनमें ख़ुद इतने गिरोह हैं जिनका शुमार व इनहिसार इस मुख़्तसर किताब में बड़ा मुश्किल है और उनकी किताबों में बड़ी अजीब बातें और हिकायतें और वाक़िआ़त लिखे हुए हैं। उनके मज़हब की बुनियाद तारीख़ी वाक़िआ़त गढ़ने और झूटी हिकायतें बनाने और उनको बयान कर करके रोने, चीख़ने, चिल्लाने, सीने पीटने, मातम करने और गिरेबान फाड़ने पर है।

उनमें ख़ुद पचास से ज़्यादा गिरोह हैं उन सबके नाम और अक़ाइद व नज़रियात जानने के लिए शाह अ़ब्दुल अ़ज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी की तसनीफ़ "तोहफ़ए इसना अशरिया", इमाम अबुलफ़तेह मुहम्मद बिन अ़ब्दुल करीम शहरिस्तानी की "अलमिलल वन्नहल", हुज़ूर सय्यिदना ग़ौसे पाक शैख़ अ़ब्दुल क़ादिर जीलानी की "ग़ुनयतुत्तालिबीन" और शेख़ अहमद सरहिन्दी मुजद्दिद अल्फ़सानी की किताब (रद्दे रवाफ़िज़)और मौलाना मुहम्मद अहमद

मिस्बाही मुबारकपुरी की "हुदूसुलफ़ितन व जिहादे एअ़्यानुस्सनन" वग़ैरहा किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए।

ताहम आजकल मुसलमानों में राफ़िज़ी और शीआ़ नाम से जो फ़िरक़ा पाया जाता है। उनमें से सभी गिरोह इस बात पर मुत्तफ़िक़ हैं और सबका अक़ीदा यह है कि हज़रते मौला अ़ली बिला फ़स्ल ख़लीफ़ा हैं यानी हुज़ूर नबीए करीम अ़लैहिस्सलातु वत्तसलीम के बाद पहला जानशीन व ख़लीफ़ा हज़रत अली को ही होना चाहिए था उनसे पहले हज़रते अबूबक्र, हज़रते उमर फ़ारूक़ और हज़रते उस्मान ग़नी जो ख़लीफ़ा हुए उनकी ख़िलाफ़त ज़ालिमाना, ग़ासिबाना और हज़रत अली की हक़ तलफ़ी (हक़ मारना) थी। हजरते सलमान फ़ारसी और हज़रते अबूज़र और हज़रते मिक़दाद और हज़रते अ़म्मार बिन यासर वग़ैरहुम चन्द हज़रात के अलावा बाक़ी सारे असहाबे रसूल ख़ास कर ख़ुलफ़ाए सलासा हज़रते अबूबक्र और उमर और उस्मान रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन की शान में गुस्ताख़ी तबर्रा करना और उन्हें बुरा भला कहना उनके मज़हब में दाख़िल और उनके यहाँ बड़े सवाब का काम है और यह लोग इसको हज़रते अली की महब्बत समझते हैं। जब कि रसूले पाक स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम का इरशाद है :

हदीस : मेरे सहाबा को बुरा भला मत कहो अगर तुम में कोई उहद पहाड़ के बराबर सोना ख़र्च करे तो मेरे सहाबी के एक सेर या आधा सेर गेहूँ और जौ के बराबर भी उसको सवाब नहीं मिलेगा। यह हदीस बुख़ारी और मुस्लिम दोनों में है।

(मिश्कात, सफ़हा 553, मनाक़िबे सहाबा, फ़स्ले अव्वल)

और फ़रमाते हैं कि जब तुम ऐसे लोगों को देखो जो मेरे साथियों की शान में गुस्ताख़ी करते हैं तो कहो अल्लाह की लानत हो तुम्हारे शर पर।

(मिश्कात सफ़हा 554)

ख़ुद मौलाए काइनात हज़रते अ़ली कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम से मरवी क़सीर (बहुत) हदीसों और आपके इरशादात से ज़ाहिर है कि हज़राते अम्बिया किराम अ़लैहिमुस्सलातु वस्सलाम के बाद सब से अफ़ज़ल अबूबक्र हैं और फिर उमर रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुमा।

सहीह़ बुख़ारी में है :

हज़रत मुह़म्मद इब्ने हनफ़िया कहते हैं कि मैंने अपने बाप हज़रत अली से पूछा कि हुज़ूर के बाद उम्मत में सबसे अफ़ज़ल कौन हैं उन्होंने फ़रमाया, "अबूबक्र", मैंने कहा फिर कौन हैं फ़रमाया, "उमर", फिर मैं डरा कि अब कहीं "उस्मान" को न कह दें लिहाज़ा मैंने पूछा कि फिर आप हैं? फ़रमाया कि मैं मुसलमानों में से एक हूँ।

(बुख़ारी जिल्द 1, किताबुल मनाक़िब, सफ़हा 518)

और हज़रते अ़ब्दुल्लाह इब्ने उमर से मरवी है कि हम लोग रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के ज़माने में उम्मत में सबसे अफ़ज़ल जनाब अबूबक्र को समझते थे उनके बाद जनाब उमर बिन ख़त्ताब को और उनके बाद जनाब उस्मान इब्ने अफ़्फ़ान को।

(बुख़ारी जिल्द 1, किताबुल मनाक़िब, पेज 516)

इसी क़िस्म की सैकड़ों हदीसें हदीसों की किताबों में देखी जा सकती हैं उन सब को यहाँ लिखने की मैं

ज़रूरत नहीं समझता। और हज़रते अबूबक्र सिद्दीक़ की ख़िलाफ़त व जानशीनी के लिए तो ख़ुद हुज़ूर सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने इशारा फ़रमा दिया था। हदीस में है कि अपने मर्ज़ में विसाल से चन्द रोज़ क़ब्ल जब मर्ज़ शिद्दत पकड़ गया और लोग मस्जिद में इशा की नमाज़ के लिए आप का इन्तज़ार कर रहे थे आप के सामने इसका ज़िक्र किया गया तो फ़रमाया कि अबूबक्र से कहो कि लोगों को नमाज़ पढ़ायें। हज़रते आइशा सिद्दीक़ा रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हा ने कहा कि मेरे बाप दिल के नर्म हैं क़ुर्आन पढ़ते हैं तो रोने लगते हैं किसी और के लिए फ़रमा दीजिए फ़रमाया नहीं अबूबक्र से कहो वह लोगों को नमाज़ पढ़ायें। हज़रते आइशा ने तीसरी मरतबा अपनी बात दोहराई फिर आपने यही फ़रमाया और हज़रते अबूबक्र ने हुज़ूर के विसाल से पहले आपकी हयाते ज़ाहिरी में कई दिन आपके हुक्म से आपके मुसल्ले पर नमाज़ पढ़ाई।

मज़ीद तफ़सील और हवाले के लिए देखिए : बुख़ारी जिल्द 1, अबवाबुल इमामत, सफ़हा 94, 95

ख़ुलासा यह कि राफ़िज़ी जो ख़ुद को शीआ़ कहते हैं उन्होंने हज़रते मौला अली और दीगर हज़राते अहलेबैत-ए-किराम की महब्बत हज़रते अबूबक्र व उमर व उस्मान और दूसरे सहाबए किराम रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन की दुश्मनी और उनकी बुराई करने में समझी। उनके नज़दीक हुज़ूर के इन जानिसारों को गालियाँ देना उनको ज़ालिम व ग़ासिब कहना तबर्रा बकना ही अहलेबैत और अलीए मुरतज़ा रिद़्वानुल्लाहि तआ़ला अ़लैहिम अजमईन की महब्बत है। यह उनका बड़ा धोका है

और वह ऐसी ग़लती पर हैं जिसकी सज़ा जहन्नम है।

हज़रते मौला अली कर्रमल्लाहु तआला वजहहुल करीम से ख़ुद मरवी है उन्होंने फ़रमाया जो मुझ को अबूबक्र व उमर से बरतर (बड़ा) बताएगा मैं उसे अस्सी (80) कोड़े की सज़ा दूँगा।

(किताबुस्सुन्नह बहवाला ग़ायतुत्तहक़ीक़, सफ़हा 12)

मैं पूछता हूँ क्या अहलेबैत से महब्बत करने के लिए सहाबए किराम को बुरा भला कहना ज़रूरी है? आख़िर ऐसा क्यूँ? और यह कैसा इस्लाम है कि जिस नबी का कलिमा पढ़ा जाए ज़िन्दगी भर उसके साथ रहने वालों, उस पर जान व माल निसार करने वालों को बुराई से याद किया जाए, उन्हें गालियाँ देना मज़हब बना लिया जाए और उनकी शान घटाने, उन पर लानत करने, तबर्रा पढ़ने को दीन समझ लिया जाए। वह भी ऐसे साथी और सहाबी कि दुनियवी ज़िन्दगी में उम्र भर साथ रहे और यहाँ से जाने के बाद भी आज तक मज़ारे पुर अनवार में रहमते आलम के जवार (पड़ोस) में आपके गुम्बद के नीचे आराम फ़रमा रहे हैं। कौन नहीं जानता कि वह गुम्बदे ख़ज़रा जिस पर एक नज़र अहले ईमान व अक़ीदत के लिए काइनात की हर दौलत व नेमत से बढ़ कर है उस में पैग़म्बरे इस्लाम के साथ आराम फ़रमाने का शरफ़ इन्हीं दोनों यानी अबूबक्र सिद्दीक़ और उमर फ़ारूक़े आज़म को हासिल है। यह अल्लाह का फ़ज़्ल है वह जिस पर चाहे फ़रमाता है *"और अल्लाह बड़े फ़ज़्ल वाला है।"* (क़ुर्आने करीम) और इन दोनों हज़रात का यह शरफ़, इज़्ज़त व अज़मत, मक़ाम व मरतबा, इस हदीसे पाक का

नज़ारा, इस फ़रमाने रसूल का जलवा, मअ़ना व मतलब व मफ़हूम है जिस में है हुज़ूर सय्यिदे आलम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम इरशाद फ़रमाते हैं :

"हर नबी के दो वज़ीर आसमानों में होते हैं और दो ज़मीन में तो आसमानों में मेरे दो वज़ीर जिबरईल और मीकाईल हैं और ज़मीन में मेरे दो वज़ीर अबूबक्र व उमर हैं।" (तिर्मिज़ी जिल्द 2, अबवाबे मनाक़िब, सफ़हा 208, और मिश्कात सफ़हा 560)

और हक़ यह है कि रसूलुल्लाह के साथियों, आपके सहाबियों को बुरा भला कहना उनको ना-अहल, हक़ पोश, ज़ालिम, जाबिर व ग़ासिब बताना ख़ुद रसूले पाक की शान और आपके कमाल पर धब्बा लगाना है और आपकी ज़ाते बा-बरकत बे मिस्ल व मिसाल को ऐबदार बताना है। क्यूँकि जिसके साथ रहने वाले यार, दोस्त, अहबाब, साथी ऐबदार, नाक़िस और ग़लत रविश पर चलने वाले हों तो वह ख़ुद भी कोई अच्छा इन्सान नहीं होगा। हज़रत मौलाए काइनात सय्यिदना अली ही से मनक़ूल है फ़रमाते हैं "आदमी को उसके हमनशीनों से पहचानो।" यानी यह देखो कि उसके पास बैटने-उठने वाले और उसके क़रीब रहने वाले कैसे हैं अगर वह अच्छे हैं तो यह अच्छा होगा और वह ग़लत हैं तो सही यह भी नहीं होगा। क़ुर्बान जाऊँ क्या उम्दा बात है? कैसा अच्छा फ़रमान है? और कितनी हिकमतों भरा इरशाद है इस मौलाए काइनात का जिसको रसूले पाक स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने इल्म का दरवाज़ा फ़रमाया है। अब अगर कोई ग़ैर मुस्लिम, कोई मुशरिक, आर्य, हिन्दू,

ईसाई या यहूदी यह सवाल कर दे कि मुसलमानों का पैग़म्बर ऐसा नाक़िस व ना–अहल था मआज़ल्लाह कि उसके साथ मुद्दतों तक रहने वाले रात–दिन उसकी सोहबत में बैठने वाले हर वक़्त उसका क़ुर्ब व नज़दीकी जिन्हें हासिल थी वह तक नहीं सुधर सके यहाँ तक अबूबक्र व उमर और उस्मान जैसे लोग कि जिनकी उम्रों का ज़्यादातर हिस्सा पैग़म्बरे इस्लाम की सोहबत व नज़दीकी में गुज़रा वह भी निहायत ग़लत, ज़ालिम व जाबिर, ख़ाइन व बेईमान लोग थे तो राफ़िज़ियों के पास उसका क्या जवाब होगा? और राफ़िज़ी तो तीन या चार को छोड़ कर बाक़ी हुज़ूर के सहाबा जिनकी तादाद एक लाख से भी ज़्यादा है सभी को बुरा कहते हैं तो यह हुज़ूर ही को बुरा कहना है और उन्हीं की ज़ाते पाक पर उंगलियाँ उठाने, नुकता चीनी करने का मौक़ा काफ़िरों, ग़ैर मुस्लिमों को देना है इसलिए रसूले पाक सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने इरशाद फ़रमाया :

हदीस : "अल्लाह से डरते रहना! अल्लाह से डरते रहना! मेरे सहाबा के मामले में कहीं ऐसा न हो कि मेरे बाद तुम उनको अपनी बदकलामी का निशाना बनाओ याद रखो जिसने उनसे महब्बत की तो मेरी महब्बत के सबब उसने महब्बत की जिसने उनको दुश्मन जाना तो उसने मेरी दुश्मनी की वजह से उन्हें दुश्मन जाना और जिसने मेरे सहाबा को तकलीफ़ पहुँचाई तो उसने मुझको तकलीफ़ पहुँचाई और जिसने मुझको तकलीफ़ पहुँचाई तो उसने अल्लाह को नाराज़ किया तो अनक़रीब अल्लाह तआ़ला उसकी पकड़ फ़रमाएगा।"

(तिर्मिज़ी, जिल्द 2, अबवाबे मनाक़िब, सफ़हा 226, मिश्कात बाबे मनाक़िबे सहाबा, सफ़हा 554)

राफ़िज़ियों के अक़ाइद में यह भी है कि यह लोग मौजूदा क़ुर्आन को मुकम्मल नहीं मानते बल्कि कहते हैं तीनों ख़लीफ़ा (हज़रते अबूबक्र, उमर व उस्मान) ने फ़ज़ाइल अहलेबैत की आयतों और सूरतों को इस क़ुर्आन में शामिल नहीं होने दिया। उनको यह भी पता नहीं कि इसी क़ुर्आन में है ख़ुदाए तआ़ला फ़रमाता है इस क़ुर्आन को हम ने नाज़िल किया हम ही उसकी हिफ़ाज़त फ़रमायेंगे। उनकी इसी क़िस्म की बातों को पेशे नज़र रखते हुए उलमाए अहलेसुन्नत ने इस ज़माने के राफ़िज़ियों को इस्लाम से ख़ारिज क़रार दिया है और फ़तवा यही है कि हज़रत सय्यिदना अबूबक्र सिद्दीक़ और सय्यिदना उमर फ़ारूक़ और सय्यिदना उस्माने ग़नी की शान में तबर्रा करने वाले, उनकी ख़िलाफ़त को ज़ालिमाना और ग़ासिबाना कहने वाले, उन्हें गालियाँ देने वाले, मौजूदा क़ुर्आन को ना-मुकम्मल बताने वाले, हज़रत अली को अम्बियाए किराम से अफ़ज़ल बताने वाले राफ़िज़ी यक़ीनन काफ़िर व मुरतद हैं उनका इस्लाम से कोई वास्ता नहीं उनसे मेल-जोल, ब्याह-शादी, दुआ-सलाम, मुसाफ़हा-मुआ़नक़ा सब हराम है और यक़ीनन यह लोग मुशरिकों, यहूदियों और ईसाईयों और मजूसियों से भी बदतर हैं। उनके हाथ का ज़ुबह किया हुआ जानवर भी मुरदार है।

तफ़सील व तहक़ीक़ के लिए देखिए आलाहज़रत मौलाना अह़मद रज़ा ख़ाँ रह़मतुल्लाहि अ़लैह का रिसालए मुबारका "रद्दिर्रिफ़ज़ह" जिसमें उन्होनं सैकड़ों किताबों में

सैकड़ों उलमाए मुतक़द्दिमीन और मुताअख़्ख़िरीन के अक़्वाल व फ़तावा से उन्हें काफ़िर साबित किया है।

और अब से लगभग साढ़े तीन सौ साल पहले बादशाह औरंगज़ेब ने अपने दौरे हुकुमत में उस वक़्त के बड़े बड़े उलमाये इस्लाम को जमा करके इस्लामी मसाईल की एक किताब लिखवाई थी जिसका नाम फ़तावा आलमगीरी है जब तक हिन्दुस्तान में इस्लामी हुकुमत रही कचहरियों में इसी किताब से फ़ैसले होते थे छः मोटी मोटी जिल्दो में यह एक बहुत बड़ा इस्लामी इनसाइकिलोपिडिया है इसमें इन राफ़ज़ियो के बारे में लिखा है

ويجب اكفار الروافض وهؤلا القوم خارج عن
ملة الاسلام و احكامهم احكام المرتدين

राफ़ज़ियों को काफ़िर कहना ज़रूरी है यह फ़िरक़ा इस्लाम से ख़ारिज है यह मुर्तदीन के हुक्म मे है (फ़तावा आलमगीरी जिल्द 3 बाब 9 सफ़्हा 264)

और अहले सुन्नत वलजमाअ़त का अक़ीदा यही है कि हुज़ूर के बाद ख़िलाफ़त जिस तरतीब से हुई वह बिल्कुल हक़ व दुरुस्त है और मरतबे भी इसी तरतीब से हैं। यानी हुज़ूर के बाद अव्वल ख़लीफ़ा हज़रते अबूबक्र सिद्दीक़ हुए वह यक़ीनन हक़ हुआ और वह हक़ परथे और दूसरे ख़लीफ़ा हज़रते उमर फ़ारूक़े आज़म हुए यह भी दुरुस्त हुआ, तीसरे ख़लीफ़ा हज़रते उस्माने ग़नी और चौथे हज़रत मौलाए काइनात अलीए मुरतज़ा रद्वियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन; और यह सब अल्लाह व रसूल और उस ज़माने के मुसलमानों की मर्ज़ी के मुताबिक

हुआ। और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के इन चारों यारों से महब्बत व अक़ीदत मुसलमान के लिए ज़रूरी है। जो इन चारों में से किसी की भी शान में गुस्ताख़ी करे वह यक़ीनन गुमराह है, राहे हक़ यानी सीधे और सच्चे रास्ते से हटा हुआ है।

ख़िलाफ़त की इस तरतीब में बड़ी हिकमत यह भी है कि यह हज़रात जिस तरतीब से यके बाद दीगरे ख़लीफ़ा हुए इसी तरतीब से दुनिया से रुख़सत भी हुए यानी अगर पहले ख़लीफ़ा हज़रते मौला अली हो जाते तो वह तीनों हज़रात खिलाफ़त से महरूम रह जाते। अल्लाह व रसूल की मर्ज़ी अपनी हिकमतों को वही जानें। तरतीबे ख़िलाफ़त के मुताबिक़ पहले हज़रते अबूबक्र, फिर हज़रते उमर, फिर हज़रते उस्मान, फिर हज़रते अली ने विसाल फ़रमाया और इसी तरतीब से दुनिया से तशरीफ़ ले जाना हुआ। इन चारों को नबीए आख़िरुज़्ज़मा की जानशीनी का मौक़ा मिलना था और इन्हें "चार यारे मुस्तफ़ा" के नाम से दुनिया व आख़िरत में मशहूर होना था।

आलाहज़रत फ़रमाते हैं :

सिद्क़ व अद्ल व करम व हिम्मत में
चार सू शोहरे हैं इन चारों के
कैसे आक़ाओं का बन्दा हूँ रज़ा
बोल बाले मेरी सरकारों के

ख़िलाफ़ते सिद्दीक़े अकबर और इस सिलसिले में मज़हबे अहलेसुन्नत के मुताबिक़ दीगर उमूर तहक़ीक़ व तफ़सील से जानने के लिए आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अलैहिर्रहमह वर्रिद़्वान

की तसनीफ़ "ग़ायतुत्तहक़ीक़ फ़ी इमामते लि अ़लीए वस्सिद्दीक़" और "ज़िलालुल अनक़ा मिन बहरे सबक़तल अतक़ा" का मुतालआ़ करना चाहिए। दलाइल की कसरत (ज़्यादती) के साथ हक़ को वाज़ेह और बातिल को मिटाने में आलाहज़रत की किताबों का जवाब नहीं।

राफ़िज़ियत कैसे फैली और फैलती है?

इस्लाम के इब्तिदाई दौर में ईसाईयों और यहूदियों ने मुसलमानों के मुक़ाबले पर पैहम शिकस्तें खाईं और हर मुहाज़ पर हार का मुँह देखा और उनके बहुत सारे इलाक़े और मुल्क मुसलमानों के क़ब्ज़े और तसल्लुत में आ गए। इस सब का इन्तिक़ाम लेने के लिए उन्होंने मुसलमानों में फूट डालने, उन्हें गिरोहों और फ़िरक़ों में बांटने का काम शुरू किया जो किसी न किसी शक्ल में आज तक जारी है। शीआ़ फ़िरक़े का बानी भी एक यहूदी नस्ल का शख़्स था जिस का नाम अ़ब्दुल्लाह इब्ने सबा था। यह धोका देने के लिए मुसलमान हो गया था। उसने सबसे पहले हज़रत अली को इलाह व मअ़बूद और ख़ुदा कहना शुरू किया। हज़रते अली ने उसको बुलाया और पूछा कि क्या तू ऐसे ऐसे कहता है? उसने कहा हाँ आप ख़ुदा हैं और मैं आपका रसूल व पैग़म्बर। हज़रत अली ने फ़रमाया तौबा कर उसने इन्कार किया तो आप ने उसे क़ैदख़ाने से निकलवा कर फिर पूछा तो वह अपनी बकवास पर क़ाइम था फिर हज़रते अली ने उसे आग में जलवा दिया। मरने के बाद वह अपने असरात क़ौम में छोड़ गया और उसके मानने वाले जो सबाई कहलाते थे,

उन्होंने मुसलमानों में तख़रीबकारी का काम जारी रखा। हज़रते अली से हज़रते अमीर मुआविया और हज़रते सय्यिदना आइशा सिद्दीक़ा की जंग कराने में भी इसी अब्दुल्लाह इब्ने सबा और उसके गिरोह की कारगुज़ारियाँ थीं, तारीख़े इस्लाम पर नज़र रखने वालों से यह सब बातें छुपी हुई नहीं हैं।

अवाम की ख़ानदान परस्त ज़हनियत

शीअ़त और राफ़िज़ियत फैलाने के लिए तख़रीब कारों का सबसे बड़ा हथियार अवाम की ख़ानदान परस्त ज़हनियत रही है। इस्लाम के आने से पहले तक़रीबन सारी दुनिया में ख़ास कर ईरान जो आलमे राफ़िज़ियत का मरकज़ रहा है और है उसमें ये दस्तूर चला आ रहा था कि जब कोई बादशाह या अमीर मरता तो तो उसकी जगह उसका बेटा, भाई या दामाद जानशीन होता था। उन्हें यह बात अजीब लगती थी कि पैग़म्बरे इस्लाम के बाद उनका जानशीन एक ऐसा शख़्स कैसे हो गया जो न उनका बेटा था न दामाद और ख़ानदानी एतबार से भी वह उनको कोई क़रीबी अज़ीज़दार नहीं था।

यह अवाम की बहुत बड़ी कमज़ोरी रही है और आज भी है कि वह अमूमन ख़ानदानपरस्ती में हद से आगे बढ़े हुए होते हैं लेकिन इस्लाम चूंकि एक सच्चा आसमानी मज़हब और ख़ुदाई रास्ता है जिसमें हक़ ही हक़ है उसे दुनिया से जहाँ दूसरे ग़लत रस्म व रिवाज, बातिल दस्तूर और क़वानीन मिटाए वहीं इस ज़हनियत का भी सफ़ाया किया। और क़ौल व फ़ेल (कथनी-करनी) से यह बताया कि इस्लाम में ख़ानदान परस्ती को बिल्कुल

नज़रअन्दाज़ तो नहीं किया गया है लेकिन मज़हब का मक़ाम उससे बहुत बुलन्द है, मज़हब नस्लपरस्ती और ख़ानदानियत का नाम नहीं है। क़ुर्आन का एलान है :

اِنَّ اَکْرَمَکُمْ عِنْدَ اللّٰہِ اَتْقٰکُمْ

तर्जमा : बेशक अल्लाह के नज़दीक तुम में ज़्यादा इज़्ज़त व शराफ़त वाले वह हैं जो ज़्यादा ख़ुदा से डरने वाले मुत्तक़ी व परहेज़गार हैं।

रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के बाद हज़रत अबूबक्र का ख़लीफ़ा होना दुनिया भर के ईसाईयों, यहूदियों, मजूसियों और मुशरिकों के अलावा उन नौमुस्लिमों के लिए भी एक हैरतनाक बात थी जिनके दिलों में अभी इस्लाम पूरी तरह रचा बसा न था और वह इस्लाम की लज़्ज़त से अभी कामिल तौर पर आशना (पूरी तरह वाक़िफ़) नहीं थे। वह तो आज तक हुकूमत व इमारत, सल्तनत व बादशाहत, ख़िलाफ़त व नयाबत को ख़ानदानी इजारेदारी (ठेका, क़ब्ज़ा) समझते थे और यही सुनते, देखते और पढ़ते चले आये थे। राफ़िज़ियत फैलाने वालों ने इस अवामी ज़हनियत का पूरा-पूरा फ़ायदा उठाया और आज भी उठाते हैं और अवाम को यह समझाते हैं कि हुज़ूर के बाद पहला ख़लीफ़ा हज़रते अ़ली को होना चाहिए था क्यूँकि वह आपके दामाद और चचेरे भाई भी थे और जो लोग कुन्बा परस्त होते हैं उनके दिमाग़ में यह बात आ भी जाती है।

राफ़ज़ी और शिया यह तो कहते फ़िरते हैं कि हुज़ूर के बाद जब उनके दामाद हज़रत अली मौजूद थे तो किसी और को हुज़ूर का ख़लीफ़ा और जानशीन बनने का कोई

हक़ नही पहुंचता लेंकिन यह नी देखते कि हज़रत अबूबकर, हज़रत उमर और हज़रते उस्मान ग़नी रज़िअल्लाहो अन्हुम मे भी अपनी ख़िलाफ़त व हुकूमत का ज़माना ख़त्म होने पर अपनी औलाद या दामादों मे से किसी को ख़लीफ़ा नही बनाया। हिम्मत चाहिये कई कई मुल्को की हुकूमत व बादशाहत और रसूले खुदा की ख़िलाफ़त का मंसब लेकिन दुनिया से जाने के वक़्त अपनी औलाद और घर वालों को इससे महरूम कर देना और दूसरे ख़ानदान के लोगो को अपनी जगह बैठा कर जाना असली फ़क़ीरी और सच्ची दुर्वेशी है तारीख़े आलम में ऐसी मिसालें कहां मिलेंगी यह तो पैगम्बरे इस्लाम और उनके सच्चे जानशीनों की ही शान है और यह हक़ीक़ी खुदा परस्तों का मक़ाम है

यह बात भी ग़ौर तलब है कि हज़रते अबूबक्र सिद्दीक़ का जब विसाल हुआ तो आपके कई बेटे ऐसे थे जो सहाबीए रसूल होने के साथ-साथ इल्म व अमल, तक़वा व तहारत, बहादुरी और शुजाअत, ज़हानत व फ़ितानत के ज़ेवर से आरास्ता थे लेकिन इसके बावजूद हज़रते अबूबक्र सिद्दीक़ ने जिसको अपनी ख़िलाफ़त व नयाबत और इस्लामी हुक्मरानी के लिए मुन्तख़ब फ़रमाया वह ख़त्ताब के बेटे उमर फ़ारूक़ हैं जिनका हज़रते अबूबक्र से ख़ानदानी एतबार से कोई क़रीबी राब्ता न था।

और हज़रते उमर फ़ारूक़े आज़म जब इस दुनिया से तशरीफ़ ले जा रहे थे तो उनके साहबज़ादे मशहूर व मारूफ़ मुहद्दिस व फ़क़ीह सहाबी और जानिसारे रसूल हज़रते अब्दुल्लाह इब्ने उमर को कौन नहीं जानता। उनमें

वह सारी ख़ूबियाँ और सलाहियतें मौजूद थीं जो रसूलुल्लाह के जानशीन और इस्लामी हुक्मराँ में होनी चाहिए लेकिन हज़रते उमर ने विसाल के क़ब्ल (पहले) मदीने के जिन 6 असहाब की कमेटी ख़लीफ़ा मुनतख़ब करने (चुनने) के लिए बनाई थी कि यह लोग मश्वरह करके अपने में से किसी एक को ख़लीफ़ा बना लें, उस कमेटी में उन्होंने अपने लाइक़ बेटे अब्दुल्लाह इब्ने उमर का नाम नहीं रखा था और फ़रमाया था कि मेरा यह बेटा मशवरे में शामिल तो रहेगा लेकिन ख़लीफ़ा और अमीर नहीं बनेगा।

(तारीख़ुल ख़ुलफ़ा, तसनीफ़ इमाम सुयूती, सफ़हा 107)

और वह 6 लोग यह थे :

(1) हज़रते उस्मान इब्ने अ़फ़्फ़ान (2) हज़रते अली इब्ने अबी तालिब (3) हज़रते अ़ब्दुर्रहमान इब्ने अ़ौफ़ (4) हज़रते सअ़द इब्ने वक़्क़ास (5) हज़रते ज़ुबैर इब्ने अ़व्वाम (6) हज़रते तलहा बिन उ़बैदुल्लाह रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन।

इन लोगों ने बग़ैर किसी इख़्तिलाफ़ व झगड़े के हज़रते उस्माने ग़नी रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु को ख़लीफ़ा मुन्तख़ब फ़रमा लिया। और फिर हज़रते उस्मान को जब बलवाईयों ने शहीद किया तो अहले मदीना ने हज़रते अ़ली के हाथ पर बैअ़त कर ली और वह ख़लीफ़तुल मुस्लिमीन मान लिए गए जबकि हज़रते उस्मान ग़नी भी ख़ानदान और औलाद वाले थे।

हुज़ूर के बाद के तीनों खलीफ़ा हुज़ूर से क़बीले और ख़ानदान के एतबार से कोई ख़ास क़राबत न रखते थे और ख़ुद भी एक दूसरे से उनमें ऐसा कोई राब्ता नहीं

था। गोया कि यह वाज़ेह कर दिया गया कि मज़हबे इस्लाम ख़ानदान परस्ती का नाम नहीं और इस्लाम में ख़िलाफ़त व हुकूमत ख़ानदानी इजारेदारी नहीं। और इन तीनों के बाद हज़रते अली के ख़लीफ़ा होने से यह भी ज़ाहिर हो गया कि इस्लाम में क़राबत व रिश्तेदारी, कुनबा व बिरादरी को एक दम नज़रअन्दाज़ भी नहीं किया गया है बल्कि मज़हब इसका रवादार है मगर एक हद तक।

इस्लाम में हसब व नसब, नस्ल व अस्ल को कितना दख़ल है और इस्लामी नुक़तए नज़र से इसकी क्या हैसियत है इसकी पूरी मालूमात हासिल करने के लिए और इस बारे में इस्लामी हदों को जानने के लिए आलाहज़रत मौलाना शाह अह़मद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अ़लैहिर्रह़मह की लिखी हुई लाजवाब किताब "फ़ज़ीलते नसब" का मुतालआ़ करना चाहिए।

गोया कि हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के बाद पहले ख़लीफ़ा व जानशीन हज़रते अ़ली के न होने में यह बड़ी हिकमते इलाहियह कारफ़रमा रही अगर हज़रते अ़ली पहले ख़लीफ़ा हो जाते तो इस्लाम के दुश्मनों को यह कहने का मौक़ा मिल सकता था कि पैग़म्बरे इस्लाम ने भी दूसरे दुनियादार बादशाहों, अमीरों, दौलतमन्दों की तरह जो मेहनत की थी यानी मशक़्क़त उठाई थी, जंगें लड़ी थीं और उसके नतीजे में जो हुकूमत क़ाइम कर ली थी यह सब अपनी औलाद और घर वालों के लिए किया था। बहुत से मुसलमानों को भी यह शुबहा गुज़र सकता था मगर क़ुर्बान जाऊँ इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम की हर अदा जुदागाना है वाक़िई रूए ज़मीन पर कोई मज़हब है

तो वह इस्लाम है और मख़लूक़ में बिल्कुल बे ऐब कामिल व मुकम्मल इन्सान है वह "मुहम्मदे अरबी" की ज़ात है। सल्लल्लाहु तआला अलैहि व ला आलिही व असहाबिही वबारिक वसल्लम दाइमन अबदन

हदीस : क़बीलए बनी मख़ज़ूम के एक मालदार घराने की औरत ने चोरी की हुज़ूर ने उसके हाथ काटने की सज़ा बोल दी उसका लोगों में काफ़ी चर्चा हुआ और हुज़ूर से बात करने और सिफ़ारिश करने के लिए हज़रते उसामा बिन ज़ैद को मुन्तख़ब किया गया क्यूँकि हुज़ूर उनसे बहुत महब्बत फ़रमाते थे। हज़रते उसामा ने सिफ़ारिश की तो हुज़ूर को जलाल आ गया और फ़रमाया :

"क्या तुम अल्लाह की मुक़र्रर की हुई सज़ाओं के मामले में सिफ़ारिश करते हो।" फिर आपने मिम्बर पर खड़े होकर ख़िताब फ़रमाया कि "ऐ लोगो! तुम से पहले वाले इसीलिए गुमराह होते थे कि जब उनमें का कोई बड़े मरतबे वाला चोरी करता तो उसको छोड़ देते और कोई ग़रीब व कमज़ोर करता तो उसको सज़ा देते और अल्लाह की क़सम अगर मुहम्मद की बेटी फ़ातिमा ने चोरी की होती तो मुहम्मद उसका भी हाथ काट देता।" सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम

(बुख़ारी, जिल्द 2, किताबुल हुदूद, सफ़हा 1003)

भाईयो! देखा आपने यह है मज़हबे इस्लाम और उसके क़ानून जिनकी इक़ामत और इशाअत के लिए अल्लाह तआला ने सरकारे दो आलम अहमदे मुजतबा सय्यिदना मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को मबऊस फ़रमाया था यानी दुनिया में भेजा

था, जो अमीर व ग़रीब, क़वी (ताक़तवर) व ज़ईफ़ (कमज़ोर), अपने और पराए सब के लिए यकसाँ नाफ़िज़ (लागू) होते थे, जिनमें ख़ानदान, बिरादरी, कुनबा और क़बीला, नस्ल और अस्ल को नहीं देखा जाता था।

अवाम बेचारे जैसे ख़ुद औलाद के लिए करते और उसी के लिए मरते हैं और देखते हैं कि बाप का सब कुछ औलाद ही को मिलता है क्या नहीं देखा कि बाज़ दुनियादार अगर बुढ़ापे में मरने के क़रीब हों और औलाद के अलावा कोई और उनके मकान की कोई ईंट भी उठा कर ले जाने लगे तो लड़ने और मरने को तय्यार हो जाते हैं, खेत की मेंढ से कोई घास भी काट ले तो लाठी लेकर लड़ने को आमादा हो जाता है। वह हज़राते अम्बिया व औलिया और उनके मज़हबी मामलात को भी अपने ऊपर क़यास करते और उसी तरह समझते हैं। कहावत मशहूर है "हर शख़्स दूसरों को अपने ऊपर क़यास करता है", नहीं जानते कि दुनियवी विरासत और चीज़ है और मज़हबी ख़िलाफ़त व नयाबत और चीज़। ख़ुलासा यह कि मज़हब के मामले में ज़रूरी नहीं है कि बाप के बाद बेटा, दामाद या भाई ही ख़लीफ़ा हो। हाँ अगर उसमें सलाहियत व अहलियत (योग्यता) हो तो बाप के क़ाइम मक़ाम (उत्तराधिकारी) होना उसके लिए शरअ़न मना भी, नहीं बल्कि बेहतर और अच्छा है। और जब कोई दूसरा अहल व सालिह (योग्य व नेक) न हो तो औलाद का ही होना लाज़िम व ज़रूरी है जबकि वह अहल हो।

हासिल यह है कि अवाम की इस नस्लपरस्ती में

हद से आगे बढ़ी हुई ज़हनियत और ख़ानदानियत की बेजा महब्बत से राफ़िज़ियत की बुनियाद रखने वालों ने ख़ूब फ़ाइदा उठाया और उन्हें यह समझाया जाने लगा कि हुज़ूर के बाद हज़रते अ़ली को ही ख़लीफ़ा होना चाहिए था। उनसे पहले जो तीनों ख़लीफ़ा हुए यह ग़लत हुआ। यह बात आसानी से उनके ज़हनों में आने लगी क्यूँकि उन्होंने हमेशा से दुनिया में बादशाहों की जगह उनकी औलाद को बादशाह बनते हुए देखा और सुना था और फिर धीरे-धीरे उन्हें और कड़वे घूंट पिलाए गए। ख़ुलफ़ाए सलासा हज़रते अबूबक्र व उमर व उस्मान रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन को ज़ालिम व ग़ासिब, हक़ तलफ़ी करने वाला कहा गया और बहुत सों से कहलवाया गया, उन्हें गालियाँ दी गईं और दिलवाई गईं और नस्लपरस्ती में हद से आगे बढ़ी हुई ज़हनियतें इस सबको क़बूल करती चली गईं और फिर उन सारे सहाबा को भी बुरा भला कहा गया कि जिनके सामने हक़तलफ़ी हुई और उन्होंने कोई क़दम इस मामले में न उठाया। धीरे-धीरे अहलेबैत की महब्बत का नाम सहाबा की अदावत बन गया और अहलेबैत की अक़ीदत के शहद में तीनों ख़ुलफ़ा और दूसरे सहाबा की दुश्मनी का ज़हर घोल कर पिला दिया गया और एक क़ौम बनाम राफ़िज़ी व शीआ़ वुजूद में आ गई जिनका मज़हब रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के जांनिसारों, सहाबियों को गालियाँ देने के अलावा और कुछ नहीं है। हज़रते अ़ली और अहलेबैत की महब्बत का सिर्फ़ नाम है मक़सद और काम कुछ और ही है।

आज भी जो क़ौम में पीर के बाद पीर, मुतवल्ली

के बाद मुतवल्ली, मुहतमिम के बाद मुहतमिम, सज्जादानशीन के बाद सज्जादानशीन होने और बनने का हक़ हर हाल में सिर्फ़ औलाद के लिए ख़्याल किया जाता है। यह बात इस्लामी मिज़ाज के ख़िलाफ़ है और इस ज़हनियत से इस्लाम और मुसलमानों को सख़्त नुक़सान पहुँच रहा है।

मुतआ़ हलाल करना

इसका मतलब यह है कि किसी औरत को कोई शख़्स किसी मुक़र्ररा मुद्दत के लिए कुछ रक़म देना तय करके अपने लिए हलाल कर ले चाहे सिर्फ़ थोड़ी देर के लिए। मुतआ़ में यह भी कोई क़ैद नहीं कि कितनी औरतों से किया जा सकता है जैसे कि निकाह में सिर्फ़ चार तक एक मर्द के लिए बीवियाँ रखना जाइज़ है लेकिन मुतआ़ कितनी भी औरतों से किया जाए वह सब जाइज़ है यह इस्लाम में हराम है क्यूँकि यह ज़िनाकारी की ही दूसरी शक्ल है लेकिन राफ़िज़ियों ने अपने मज़हब को फैलाने के लिए इसको हलाल कर दिया। इस तरह अय्याश क़िस्म के नवाब ज़मींदार और मनचले लोग उनके मज़हब में कसरत से दाख़िल हो गए। और मुतआ़ हलाल करके राफ़िज़ियों ने ख़ूब फ़ायदा उठाया और अपना मज़हब फैलाया।

एक ज़रूरी नोट

दीनी इस्लामी किताबों का अदब कीजिये। किताब के ऊपर कभी कोई घरेलू सामान मत रखिये। यह भी न हो कि आप ऊपर हों और क़रीब में किताब आपके नीचे। जिसके पास अदब है वह बे-पढ़ा होकर भी अच्छा है पढ़े लिखे बे-अदब से।

राफ़ज़ी होते ही सय्यद या मीर साहब

राफ़ज़ी और शिया फ़िरक़े में एक ख़ास बात यह है कि जो शख़्स इनके मज़हब में दाख़िल हो जाये वह किसी क़ौम या बिरादरी का हो खुद को मीर या सय्यद कहलाने लगता है लिहाज़ा बहुत से नीची या छोटी क़ौमो के लोग सय्यद कहलाने के चक्कर में शिया हो गये हालाकि इस्लामी एतबार से कोई क़ौम नीची ह़क़ीर व ज़लील नही जो लोग क़ौमियत की वजह से किसी मुसलमान को गिरी नज़रों से देखते हैं वह ग़लत रास्ते पर हैं राफ़ज़ियो ने समाज की इस कमज़ोरी से खूब फ़ायदा उठाया क्योंकि उनके मज़हब में दाखिल होते ही जैसे मज़हब बदलता है बाप दादा भी बदल जाते हैं वह किसी भी कौम का हो ज़रा सी देर में सय्यद बन जाता है

राफ़िज़यत को रोकने की तरकीबें

राफ़िज़ियत बनाम शीअ़त को रोकने और इस फ़ितने से क़ौम को बचाने के लिए नीचे लिखे मशवरों पर अमल किया जाए।

(1) हज़राते अहलेबैते किराम अ़लैहिर्रह़मह वर्रिद़वान के ज़िक्र के साथ हज़रात ख़ुलफ़ाए सलासा यानी हज़रते अबूबक्र सिद्दीक़, हज़रते उमर फ़ारूक़, हज़रते उस्माने ग़नी रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम का ज़िक्र ज़रूर किया जाए। हमारे कुछ मुक़र्रिर और शाइर लोग आजकल जलसों और तक़रीरों में अवाम की नस्लपरस्ती में ग़ुलू रखने वाली ज़हनियत से फ़ाइदा उठाते हुए उन्हें ख़ुश करके लम्बे लम्बे नज़राने और इनामात हासिल करने के लिए हज़राते अहलेबैत किराम अ़ला जद्दिहिम व अ़लैहिमुस्सलातु वस्सलाम और सादाते किराम के फ़ज़ाइल व मनाक़िब तो ख़ूब

बयान करते हैं लेकिन रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के साथियों सहाबियों को बिल्कुल भूल जाते हैं, उनके इस तरीक़े से राफ़िज़ियत को शह मिलती है और ऐसा यह मौलवी लोग इसलिए करते हैं कि क़ौम के अवाम सहाबा किराम और उनके मक़ाम व मरतबे से ज़्यादा वाक़िफ़ियत नहीं रखते। लेकिन भाईयो! जिनसे आप वाक़िफ़ कराओगे वह उन्हीं से तो वाक़िफ़ होंगे, क़ौम का क़ुसूर कम और आपका ज़्यादा है। और अल्लाह तौफ़ीक़ देने वाला है।

(2) चारों ख़ुलफ़ा के विसाल की तारीख़ें मालूम करके उन तारीख़ों पर नियाज़ व फ़ातिहा, मजलिसों और महफ़िलों का इनइक़ाद किया जाए और उनके फ़ज़ाइल बयान किए जायें। प्रोग्राम चाहे मुख़्तसर हों बाक़ाइदा तौर पर जलसे और चन्दे करना ही ज़रूरी नहीं, नमाज़ के बाद मस्जिद में ही नमाज़ियों की शिरकत व तआ़वुन (मदद) से यह नियाज़ व फ़ातिहा और महफ़िल हो सकती है। और इन महफ़िलों और प्रोग्रामों को ख़ुलफ़ाए किराम, हुज़ूर के यारों के नाम से नामज़द करके अख़बारों और रेडियो स्टेशन के ज़रिए नश्र कराया जाए। हज़रते अबूबक्र की तारीख़े विसाल 22 जमादिस्सानी और हज़रते उमर की 27 ज़िलहिज्जा और हज़रते उस्मान की 18 ज़िलहिज्जा और हज़रते अ़ली की 17 रमज़ान है।

(तारीख़ इब्ने जरीर तबरी)

हज़रते उमर की तारीख़े विसाल बाज़ रिवायतों में यकुम (1) मुहर्रम भी है और हज़रते अ़ली के बारे में 21 रमज़ान और दूसरी तारीख़ों की भी रिवायतें आई हैं। हमने तबरी के हवाले से अवाम की आसानी के लिए जिन तारीख़ों को ज़्यादा मोतबर समझा उन्हें लिख दिया है वैसे नियाज़ और फ़ातिहा जिस तारीख़ और जिस दिन भी अच्छी नियत से दिलाई जाए उस से सवाब में कोई कमी नहीं होती, इस बारे में तारीख़ों के इख़्तिलाफ़ात में

ज़्यादा उलझना नहीं चाहिए।

(3) किताबों, कलेन्डरों वग़ैरा में अल्लाह व रसूल के नाम के साथ सिर्फ़ अहलेबैत का नाम न लिखा जाए बल्कि ख़ुलफ़ाए सलासा का नाम भी लिखा जाए यानी यूँ लिखा जाए :

अल्लाह (जल–ल शानुहू), मुहम्मद (सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम), अबूबक्र, उमर, उस्मान, अली, फ़ातिमा, हसन, हुसैन रदियल्लाहु तआला अन्हुम अजमईन

(4) जो शख़्स राफ़िज़ियों की बातें करने लगे उसको शुरू में नरमी से समझाया जाए और जब तक सहाबा की शान में तबर्रा न करे और कोई कुफ़्री कलिमा न बके उस से नरमी ही का बरताव रखें और तबर्राई हो जाए तो तौबा की दावत दें अगर न मानें तो उससे दुआ–सलाम, उसके पास बैठना–उठना, मेलजोल सब बन्द कर दें। और सभी तबर्राई राफ़िज़ियों के साथ इसी क़िस्म का बरताव करें।

मुसलमानों तुम्हारी ग़ैरत यह कैसे गवारा करती है कि जो लोग तुम्हारे नबी के जानिसारों को बुरा भला कहें और तुम उनसे दोस्ती व तअल्लुक़ात करते हो? हैरत है तुम्हारे दिल उन लोगों से कैसे मिल जाते हैं जिनका मज़हब तुम्हारे नबी के यारों को गालियाँ देना है?

तफ़ज़ीलियत

राफ़िज़ियत के असरात के नतीजे में मुसलमानों में एक फ़िरक़ा वुजूद में आया जिस को तफ़ज़ीली कहते हैं। यह लोग हज़राते ख़ुलफ़ाए सलासा पर तबर्रा और उनकी शान में गुस्ताख़ियाँ तो नहीं करते लेकिन हज़रते मौलाए काइनात अलीए मुरतज़ा कर्रमल्लाहु तआला वजहहुल करीम को उन पर फ़ज़ीलत देते हैं। यह लोग अगरचे मुसलमान ही हैं, उन्हें काफ़िर या इस्लाम से ख़ारिज नहीं कहा जा सकता, लेकिन बिदअती और गुमराह हैं। इन्हें हुज़ूर सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की हदीसों का

मुतालआ करना चाहिए और उनमें ग़ौर करके सही रास्ते पर आना चाहिए उनमें कुछ हदीसें हम पहले बयान कर चुके हैं, ख़ासकर हज़रते मौला अ़ली ही के इस फ़रमान से इबरत हासिल करें जिसका एलान उन्होंने हयाते मुबारका (मुबारक ज़िन्दगी) में बार-बार मिम्बर शरीफ़ से फ़रमाया था। वह फ़रमाते थे :

"मैंने जिसके बारे में सुना कि वह मुझको हज़रते अबूबक्र व उमर पर फ़ज़ीलत देता है उसको तोहमत बाँधने की हद यानी 80 कोड़े की सज़ा दूँगा।"

(दारकुतनी, बहवाला ग़ायतुत्तहक़ीक़, सफ़हा 13)

तफ़ज़ीलियों में से कुछ हज़रते अमीर मुआ़विया रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु की शान में बदकलामी करते हैं और उन पर लअ़न तअ़न की ज़बान खोले रहते हैं। यह लोग भी गुमराह हैं। हज़रते अमीर मुआ़विया बड़े मरतबे वाले सहाबी हैं, कातिबे वह़ी (वह़ी को लिखने वाले) रहे हैं, हुज़ूर के साले भी हैं, आप की बहन हज़रते उम्मे ह़बीबा काशानए नुबुव्वत में रहने वाली अज़वाजे मुतह्हरात में से हैं जिनका ज़िक्र व मदह़ (तारीफ़) कु़र्आन में भी है। रहा हज़रते अ़ली से उनकी जंग का मामला तो भाईयो दो बड़ों की लड़ाई में छोटों को ज़बान बन्द रखने ही में नफ़ा है। ज़ाहिर है किसी शागिर्द के दो उस्ताद आपस में लड़ते हों या औलाद के सामने माँ-बाप झगड़ते हों तो औलाद अगर माँ को बुरा भला कहेगी तब भी बे-अदब कहलाएगी और बाप के लिए ज़बान को खोलेगी तब भी। और शागिर्द उस्तादों में से किसी के साथ बे-अदबी करे हर हाल में बदनसीब ही ठहरेगा। इस मामले में बड़ी सूझ बूझ और दानिशमन्दी की ज़रूरत है, ज़रा सी बे-अदबी ज़िन्दगी भर के अअ़्माल पर पानी फेर देती है और सहाबए किराम में से किसी की शान में गुस्ताख़ी करने वाले का ईमान पर ख़ात्मा होना बड़ा मुश्किल है।

क्या नहीं देखा? आपसी झगड़ों मसलन दो भाई

आपस में लड़ते हों या बाप और बेटे में इख़्तिलाफ़ हो या मियाँ-बीवी की लड़ाई हो या एक ही बिरादरी और क़ौम के लोग आपस में लड़ते हों तो दूसरे उसमें जल्दी मुदाख़िलत नहीं करते और ख़ुद को दूर रखते हैं और कहते हैं उनका आपस का मामला है। वह फिर एक हो जाएंगे हम फिर दूर के हैं हम किसी के बुरे क्यूँ बनें? तो सहाबए किराम हों या हज़राते औलियाए इज़ाम उनके बाहमी इख़्तिलाफ़ में हमारे लिए एहतियात इसी में है और हमारी भलाई और ख़ैरियत इसी में है किसी की बारगाह में बे-अदबी न करें वह सब आपस में भाई-भाई हैं हम बहरहाल उनके मुक़ाबले में बहुत दूर के हैं और उनसे बहुत ज़्यादा छोटे हैं।

क्या नहीं सुना कि जिस वक़्त हज़रते अ़ली की हुकूमत में शामिल ईरान के शिमाली सूबों पर ईसाईयों की एक ज़बरदस्त फ़ौज ने हमला करना चाहा और यह ख़बर जब हज़रते अमीर मुआ़विया को पहुँची तो उन्होंने क़ैसर (ईरान के बादशाह का लक़ब) को एक ख़त लिखा जिस में फ़रमाया कि हमारी आपस की लड़ाई तुम्हें धोके में न डाल दे अगर तुम ने अ़ली की तरफ़ रुख़ किया तो अ़ली के झन्डे के नीचे सबसे पहला सरदार जो तुम्हारी गोशमाली (सज़ा देने) के लिए आगे बढ़ेगा वह मुआ़विया होगा और यह उस ज़माने की बात है जब हज़रते अ़ली और हज़रते मुआ़विया के दरमियान जंगी मामलात ज़ोर पर थे और हज़रते अमीर मुआ़विया के ख़त का असर यह हुआ कि मौक़ापरस्त ईसाईयों की हिम्मत न पड़ सकी और उन्होंने अपना इरादा बदल दिया। (तारीख़े इस्लाम, अकबर शाह नजीबाबादी, हिस्सा 2, सफ़हा 46)

और हज़रते अमीर मुआ़विया तो ऐसे सहाबी हैं कि ज़बाने पाके मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम से मरवी हदीसों में उनके लिए यह दुआ वारिद है :

"ऐ अल्लाह! मुआ़विया को हिदायत देने वाला और

हिदायत याफ़्ता (हिदायत पाया हुआ) बना और उनके ज़रिए लोगों को हिदायत अता फ़रमा।"

(मिश्कात, बहवाला तिर्मिज़ी, सफ़हा 579)

हज़रते अमीर मुआ़विया पर एतराज़ात और उनके जवाबात को मुफ़स्सल तौर पर जानने के लिए उलमाए अहलेसुन्नत की किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए जैसे अ़ल्लामा अ़ब्दुल अ़ज़ीज़ फ़रहारी की किताब "अन्नाहिया अ़न तअ़ने मुआ़विया" और मुफ़्ती अहमद यार ख़ाँ नईमी की "अमीरे मुआ़विया"।

यहाँ मैं बात को फैलाए बग़ैर अपने मुसलमान भाईयों को मुख़लिसाना मश्वरह देते हुए इस बयान को ख़त्म कर दूँ कि भाईयो ईमान की सलामती और ख़ैरियत इसी में हैं कि हज़रते अमीर मुआ़विया हों या कोई और रसूलुल्लाह के सहाबी हो उनके बारे में ज़बान को सँभाल लेना और उनकी शान में बदगोई (बुरा कहने) से बचना बहुत ज़रूरी है और हर शख़्स को चाहिए कि अपनी औक़ात को समझे और अपनी हैसियत को जान कर कलाम करे और बड़ों के झगड़े में किसी एक को बुरा कह कर अपनी आक़िबत की ख़राबी से बचे।

एक ज़रूरी नोट

क़ुर्आने करीम अल्लाह का कलाम है। वह अरबी ज़बान में नाज़िल हुआ उसको अरबी के अलावा किसी ज़बान में नहीं पढ़ना चाहिए। उसका तर्जमा (अनुवाद) किसी भी ज़बान में पढ़ सकते हैं लेकिन ख़ास क़ुर्आन को अरबी के अलावा किसी भी ज़बान में पढ़ना या लिखना या छापना बहुत बुरी बात है।

राफ़िज़ियों की कुछ बातें जो सुन्नियों ने अपनाई हैं

ताज़ियेदारी, अ़लम उठाना, नौहा करना, मातम करना, मुहर्रम के महीने में ग़म मनाना, ब्याह शादी न करना, बच्चों को फ़कीर बना कर घर-घर से भीक मंगवाना, रोने और रुलाने के लिए वाकिआ़ते करबला बयान करना और सुनना और सुन कर चीख़ना चिल्लाना, मसनूई (नक़ली) करबलायें बनाना, वहाँ दस मुहर्रम को मेले लगाना, हज़रते क़ासिम की मेहदी निकालना, उसके नाम पर मेले लगाना, मुहर्रम में हरे रंग के कपड़े या टोपी पहनाना - यह सब वह बातें हैं जो राफ़िज़ियों से अहलेसुन्नत के अ़वाम में आई हैं और रिवाज पा गई हैं और यह सब काम नाजाइज़ हैं। इन सब बातों के राइज होने और फैलने की वजह यह है कि अ़वाम आ़मतौर से तफ़रीह व दिल्लगी और तमाशपसन्द होते हैं उन्हें कूदने-फाँदने और तमाशे करने में मज़ा आता है और इस क़िस्म की बातों को बहुत जल्दी क़बूल कर लेते हैं। और कुछ मौलवी जिन का मज़हब ही यह है कि पब्लिक ख़ुश रहे चाहे ख़ुदा और रसूल नाराज़ हो जायें वह इन बातों को जाइज़ व सवाब का काम बता देते हैं। फिर तो लोगों को मज़ा आ जाता है कि यह ख़ूब रही तफ़रीह व दिल्लगी तमाशे और मेले भी देखने को मिले, कूदने-फाँदने को भी मिला, मेले में बेपर्दा बेग़ैरत लड़कियों, औरतों के के सिंगार भी देखे, उनके जिस्म से जिस्म भी भीड़ में लगाने को मिला और सवाब भी मिला,

ऐसे मौलवी साहब सलामत रहें कि उन्होंने सवाबे आख़िरत भी दिलवा दिया और अरमान भी दुनिया के सभी पूरे हो गये, कोई दिल की हसरत बाक़ी नहीं रह गई, दुनिया की हर जाइज़ नाजाइज़ ख़ुशी भी पूरी हो गई और मौलवी साहब के फ़तवे की रू से चूंकि यह सब इमाम हुसैन की महब्बत में है लिहाज़ा जन्नत भी मिल गई।

अगर यह लोग इन तमाशों, मेलों और ताज़ियेदारियों के नाम पर होने वाली हरामकारियों को वैसे ही करते तो अगरचे यह लोग गुनाहगार तो होते लेकिन इस्लाम और इस्लाम वाले बुज़ुर्ग तो बदनाम न होते। मगर हक़ बात यह है कि इन सब पर दो क़िस्म का वबाल व अज़ाब है एक हराम काम करने का और दूसरे हज़रत सय्यिदना इमाम हुसैन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु के नाम को बदनाम करने का, और जितना अ़ज़ाब इस सब लाखों, करोड़ों ताज़ियेदारों पर होगा उस सब के बराबर अकेले उन मौलवी साहब पर होगा जिन्होंने इस मुरव्विजा (आजकल होने वाली) ताज़ियादारी को जाइज़ कर दिया है और सवाब का काम बता दिया है।

भाईयो! अल्लाह के मुक़द्दस बन्दों की यादगारों को मेले और तमाशे, ग़ुन्डागर्दी के अड्डे मत बनाओ, अल्लाह से डरो और अल्लाह के नेक बन्दों से शर्म करो। इस्लाम को बदनाम मत करो, अल्लाह वालों से महब्बत करना ज़रूरी है लेकिन यह महब्बत शरीअ़ते इस्लामिया के दाइरे में रह कर होना चाहिए। इस मुरव्विजा ताज़ियादारी को दुनिया का कोई भी दीनदार बासलाहियत ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ रखने वाला आ़लिम जाइज़ नहीं कहता सिवाए

उन एक आध इब्नुलवक़्त मौलवियों के कि जो हर वक़्त पब्लिक को ख़ुश करने के चक्कर में लगे रहते हैं।

1388 हिजरी में यानी अब से तक़रीबन 46 साल पहले बरेली शरीफ़ मरकज़े अहलेसुन्नत से एक फ़तवा सादिर हुआ था जिसमें मुरव्विजा ताज़ियेदारी को नाजाइज़ व हराम फ़रमाया गया था और उस ज़माने में पूरे हिन्दुस्तान के 75 बड़े-बड़े उलमाए किराम के दस्तख़त के साथ इस फ़तवे को पोस्टर की शक्ल में शाए किया गया था। इसी की तफ़सील हज़रत फ़क़ीहे मिल्लत मौलाना जलालुद्दीन अहमद अमजदी की तसनीफ़ "ख़ुतबाते मुहर्रम" के सफ़हा 470 पर मुलाहिज़ा फ़रमायें। गोया कि इस ताज़ियेदारी के हराम होने पर उम्मत का इजमाअ़ है लिहाज़ा मुरव्विजा ताज़ियेदारी को जाइज़ कहने वाले यक़ीनन गुमराह व बिदअ़ती हैं।

ख़ारिजी फ़िरक़े का तआ़रुफ़ और उनकी मुख़्तसर तारीख़

हदीस की रौशनी में आप मुलाहिज़ा फ़रमा चुके हैं कि रसूले पाक स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने हज़रते मौलाए काइनात अ़लीए मुरतज़ा कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम से फ़रमाया कि ऐ अ़ली एक गिरोह तुम्हारी महब्बत में गुमराह व जहन्नमी होगा और दूसरा तुम्हारी दुश्मनी में। हज़रते अ़ली की महब्बत का दावा करके गुमराह होने वाले राफ़िज़ी और शीआ़ फ़िरक़े का बयान आप समाअ़त फ़रमा चुके। और वह फ़िरक़ा जो

हज़रते अ़ली की अ़दावत व दुश्मनी में गुमराह हुआ उन्हें ख़ारिजी कहा जाता है।

ख़ारिजी फ़िरक़े की बुनियाद उस वक़्त पड़ी जब अमीरुल मुमिनीन ख़लीफ़तुल मुस्लिमीन हज़रत सय्यिदना अ़ली मुरतज़ा कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम और हज़रत अमीर मुआ़विया के दरमियान "सिफ्फ़ीन" के मैदान में जंग हो रही थी। फ़ातेहे ख़ैबर शिकन हज़रत अ़ली और उनके जानिसारों के हमलों की ताब न लाकर शामी फ़ौज शिकस्त खा कर भागने लगी थी कि हज़रते अमीर मुआ़विया के कुछ होशियार मुशीरों (सलाहकारों) ने एक चाल चली कि क़ुर्आने करीम के नुस्ख़ों को नेज़ों पर बुलन्द करके दिखाओ और एलान कर दो कि हमारा तुम्हारा फ़ैसल (फ़ैसला करने वाला) यह है। हज़रते अ़ली और आपके कुछ मुख़लिस जानिसार इस होशियारी को ख़ूब समझ रहे थे लेकिन कुछ फ़ितना उठाने वाले लोग जो तख़रीब कारी (मामला ख़राब करने) के लिए आपके साथ लश्कर में शामिल थे उन्होंने कहा कि जब वह लोग क़ुर्आन को फ़ैसल मानने के लिए तय्यार हैं तो आप उन की बात क्यू नहीं मानते और एक जमीअ़त के साथ हज़रते अ़ली पर दबाव बनाना शुरू कर दिया और आपका साथ छोड़ने बल्कि उल्टा आप पर हमला करने की धमकी देने लगे मजबूरन हज़रते मौला अ़ली को उनकी बात मानना पड़ी और जंग बन्द कर दी गई। और दोनों तरफ़ से बातचीत का सिलसिला शुरू हुआ। गुफ़्तगू के लिए फ़रीक़ैन (दोनों लोगों) की जानिब से नुमाइन्दे आने जाने लगे। बिलआख़िर यह तय पाया गया कि हज़रते अ़ली की

तरफ़ से अबू मूसा अशअ़री और जनाब अमीर मुआ़विया की तरफ़ से हज़रते अ़म्र इब्ने आ़स वकील व ह़कम (फ़ैसला करने वाले) रहें और यह दोनों हज़रात आपस में गुफ़्तगू करके जो फ़ैसला फ़रमायेंगे वह फ़रीक़ैन के लिए क़ाबिले क़बूल होगा, मगर अफ़सोस सद अफ़सोस कि हज़रते अमीरुल मुमिनीन अ़ली मुरतज़ा कर्रमल्लाहु तआ़ला वजहहुल करीम ने जब इस क़रारदाद पर दस्तख़त फ़रमाए तो वही लोग जिन्होंने आपको जंग बन्दी के लिए मजबूर किया था यह कहने लगे कि क़ुर्आने करीम में है :

اِنِ الْحُكْمُ اِلَّا لِلّٰهِ

तर्जमा : अल्लाह के अलावा कोई ह़कम नहीं।

लिहाज़ा मआ़ज़ल्लाह अ़ली ने क़ुर्आन की ख़िलाफ़वर्ज़ी की बन्दों को "ह़कम" मान कर वह मआ़ज़ल्लाह काफ़िर व मुशरिक हो गए।

हज़रते अ़ली और आपके मुख़लिसीन ने उन्हें समझाने की बहुत कोशिश की और उन्हें क़ुर्आने करीम की वह आयतें पढ़ कर सुनाईं जिनमें ग़ैर ख़ुदा को "ह़कम" बनाने और "फ़ैसल" मानने की इजाज़त दी गई है बल्कि हुक्म फ़रमाया गया है :

فَابْعَثُوْا حَكَماً مِنْ اَهْلِهٖ وَ حَكَماً مِنْ اَهْلِهَا

तर्जमा : जब मियाँ बीवी में इख़्तिलाफ़ ज़ोर पकड़ जाए तो शौहर और बीवी दोनों की तरफ़ से एक एक ह़कम भेजो।

उन्हें बताया गया कि क़ुर्आन शरीफ़ में है :

فَلَا وَ رَبِّكَ لَا يُؤْمِنُوْنَ حَتّٰى يُحَكِّمُوْكَ فِيْمَا شَجَرَ بَيْنَهُمْ

तर्जमा : तो आपके रब की क़सम यह लोग उस वक़्त तक मोमिन नहीं हो सकते जब तक आपको आपसी तमाम इख़्तिलाफ़ में हकम (फ़ैसला करने वाला) न मान लें।

हज़रते मौलाए काइनात अ़ली रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु ने उन से यह भी फ़रमाया था कि हमारा फ़ैसल सिर्फ़ किताबुल्लाह यानी क़ुर्आन ही है, यह लोग तो सिर्फ़ उसका फ़ैसला सुनाने वाले हैं लेकिन फ़ितनापरवरों ने आपकी एक न सुनी और 12 हज़ार की तादाद में एक जमीअ़त को लेकर आपके ऊपर शिर्क का फ़तवा लगा कर साथ छोड़ कर लश्कर से बाहर निकल आए। इस निकलने की वजह से यह लोग ख़ारिजी कहालए और "हरूरा" नाम के एक मक़ाम पर जमा हुए। "ख़ारिजी" के मअ़ना हैं "साथ छोड़ कर निकलने वाला"। तफ़सील से उनके हालात को जानने के लिए तारीख़े इस्लाम की किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए मसलन तारीख़ इब्ने असीर कामिल और तारीख़ इब्ने जरीर तबरी और तारीख़ इब्ने ख़ुलदून। इनके अलावा उर्दू में भी तारीख़े इस्लाम पर जितनी किताबें लिखी गई हैं उनमें भी तक़रीबन सभी में यह वाक़िआ़त ज़िक्र किए गए हैं। ख़ुलासा यह है कि ख़ारिजी एक निहायत बद बातिन और गुमराह फ़िरक़ा है जिन्होंने मसअलए तहकीम अबू मूसा अशअ़री और अ़म्र इब्ने आ़स में हर उस शख़्स को काफ़िर व मुशरिक कहा जो उस तहकीम में शामिल था या उस से राज़ी था। उन्होंने क़ुर्आन की एक आयत के ग़लत मअ़ना समझ कर उसी की रट लगाई और दूसरी आयतों को नज़रअन्दाज़ कर दिया। हक़ीक़ी और मजाज़ी के फ़र्क़ को

भुला कर एक बात पर अड़ गए कि अल्लाह के अलावा कोई हुकम व फ़ैसल नहीं और यह नहीं जाना कि बेशक हक़ीक़ी हुकम अल्लाह ही है लेकिन मख़लूक़ में से किसी को यह मनसब अता फ़रमाए तो उसकी ज़ात पर उसका कोई असर नहीं है शैख़ इब्ने अ़ब्दुलवहाब नजदी और मौलवी इस्माईल देहलवी के पैरोकार भी इसी क़िस्म की बातें करते हैं यहाँ तक कि उनके नज़दीक अल्लाह तआ़ला के मुक़द्दस बन्दों से मदद मांगना शिर्क है और नहीं जानते कि बेशक अल्लाह ही मदद फ़रमाता है और मदद करने की ताक़त भी अपने कुछ बन्दों को अता फ़रमा देता है तो बेशक हक़ीक़त में सब कुछ उसी का है लेकिन अपनी अता और देन, फ़ज़्ल व करम से बन्दों को भी बड़ी-बड़ी सलाहियतें देता है तो अल्लाह पर ईमान का मतलब यह है कि अल्लाह की देन व अता और बख़्शिश पर भी ईमान लाया जाए।

फ़िरक़ए ख़ारिजी और उसकी अलामात (निशानियों) व गुमराहियों का ज़िक्र हदीसों में इस कसरत से है कि इमाम बुख़ारी ने मुस्तक़िल एक उनवान ही अपनी सहीह में उनके नाम से क़ाइम किया है यानी "बाबे क़ितालिल ख़वारिज" ख़ारिजियों से जंग करने का बयान। इस बाब के तहत उन्होंने उनके फ़ितने से मुतअ़ल्लिक़ कई फ़रामीने मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम यानी हदीसों को रिवायत किया है। और उन्हीं से हज़रते अ़ब्दुल्लाह इब्ने उमर का वह असर भी है कि वह उन ख़ारिजियों को मख़लूक़ में सब से बुरा जानते थे कि उन लोगों ने कुफ़्फ़ार के हक़ में नाज़िल होने वाली आयतों

का मिस्दाक़ मुसलमानों को क़रार दे दिया।

(बुख़ारी, जिल्द 2, सफ़्हा 1024)

तारीख़ की किताबों मे लिखा है कि ख़ारिजी इब्तिदा में हरूरा और फिर नहरवान नाम के एक मक़ाम में इकट्ठे होकर हज़रते अ़ली से जंग करने की तय्यारी करने लगे। अ़ब्दुल्लाह इब्ने वहब राहिबी को उन्होंने अपना अमीर बना लिया था और उसके हाथ पर बैअ़त कर ली थी।

हज़रते अ़ली ने शुरू में उनके साथ नरमी का बरताव किया समझाने बुझाने का सिलसिला चलता रहा। हज़रते अ़ली के इरशाद पर हज़रते अ़ब्दुल्लाह इब्ने अ़ब्बास उन्हें समझाने के लिए तशरीफ़ ले गए। ख़ुद हज़रते अ़ली ने भी कई मरतबा उनमें जाकर उनके ख़िताब फ़रमाया लेकिन यह लोग अपने ख़्यालाते फ़ासिदा से बाज़ न आए। आख़िर हुज्जत (दलील) पूरी फ़रमाने के बाद उन पर लश्कर कशी की गई। अ़लवी फ़ौज के मुक़ाबिल जंग में यह लोग टिक न सके शेरे ख़ुदा के शेर दिल मुजाहिदों ने उनका मक़ामे नहरवान पर ऐसा सफ़ाया फ़रमाया कि आठ हज़ार की जमीअ़त में से शायद दस लोग ही बच कर जान बचाने में कामयाब हुए।

(तारीख़ इब्ने असीर, जिल्द 3, सफ़्हा 136)

ख़ारिजियों से हज़रते अ़ली की इस जंग को "जंगे नहरवान" के नाम से तारीख़ में ज़िक्र किया जाता है। उस जंग में हुज़ूर पुरनूर दानाए ग़ुयूब अह़मद मुजतबा मुह़म्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम का एक मोजिज़ा भी ज़ाहिर हुआ।

हदीस में है हुज़ूर ने ख़ारिजियों की अ़लामात व

निशानियाँ बताते हुए एक मरतबा यह भी फ़रमाया था कि उनमें एक शख़्स ऐसा होगा कि जिसका एक हाथ या पिस्तान औरतों के हाथ या पिस्तान की तरह होगा। इस हदीस के रावी मशहूर सहाबी हज़रते अबू सईद ख़ुदरी रद़ियल्ल्लाहु तआ़ाला अ़न्हु फ़रमाते हैं :

"मैं गवाही देता हूँ कि मैंने ख़ुद हुज़ूर से यह सुना और हज़रते अ़ली ने जब उन्हें क़त्ल फ़रमाया तब भी मैं मौक़े पर मौजूद था मैंने देखा कि उनमें का एक शख़्स लाया गया तो उसमें वही बात पाई जाती थी जो हुज़ूर ने पहले बता दी थी।" (बुख़ारी, जिल्द 2, बाबे मन तरक क़ितालुल ख़वारिज, सफ़हा 1024)

ख़ारिजी मज़हब की इब्तिदा हज़रत मौलाए काइनात अ़ली मुरतज़ा की अ़दावत और दुश्मनी से हुई थी और यह अ़दावत उनके बचे कुछे लोगों में बाक़ी रही यहाँ तक कि एक बदनसीब ख़ारिजी इब्ने मुलजिम ने धोके से हज़रत अ़ली को शहीद कर दिया।

ख़ारिजियों के मज़हब का बुनियादी अ़क़ीदा हज़रत अ़ली और दीगर अहलेबैते किराम की अ़दावत दुश्मनी ही रहा है। कुछ और अ़क़ाइद में भी उन्होंने अहलेसुन्नत से इख़्तिलाफ़ किया है जिनकी तफ़सील इस मुख़्तसर में गुन्जाइश नहीं और ख़ास ज़रूरत भी नहीं।

ख़ारिजियत के फ़ितने को हज़रते मौला अ़ली ने ही जड़ से उखाड़ दिया था और उनके लगभग सब लोग मारे जा चुके थे लेकिन फिर भी यह फ़ितना व फ़िरक़ा किसी न किसी शक्ल में हर दौर में रहा और कुछ न कुछ लोग इससे वाबस्ता रहे। छटी और सातवीं हिजरी में इब्ने ज़ुर्म

ज़ाहिरी और इब्ने तैमिया ने भी इसको हवा दी और उनके बातिल अक़ीदे की काफ़ी हद तक ताईद की। बर्रे सग़ीर यानी हिन्द व पाक में ख़ारिजियों की लिखी हुई तीन किताबें मेरी नज़र में बहुत मशहूर हैं :

1. "ख़िलाफ़ते मुआविया व यज़ीद" इस किताब का मुसन्निफ़ ख़ारिजी महमूद अब्बासी है।

2. "सादाते बनू उमय्या" यह किताब भी एक ख़ारिजी मुहम्मद सुलैमान की तसनीफ़ है।

3. "रशीद इब्ने रशीद" यह अबू यज़ीद नाम के एक ख़ारिजी की लिखी हुई है।

यह तीनों किताबें उर्दू ज़बान ही में हैं इनके मुसन्निफ़ बदतरीन क़िस्म के ख़ारिजी अहलेबैते रसूलुल्लाह के दुश्मन और यज़ीद पलीद के आशिक़ हैं। इन किताबों के इक़तिसाबात, इबारतें और हवाले लिखने की कोई ज़रूरत नहीं क्यूँकि पूरी-पूरी किताबें उनका हर सफ़्हा अहलेबैते मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम ख़ास कर सय्यिदुश्शोहदा सय्यिदना इमाम हुसैन को बाग़ी, लुटेरा, ज़िद्दी, हटधरम, वादा ख़िलाफ़, लालची, नासमझ, सहाबए किराम की मुख़ालिफ़त करने वाला, तिफ़रक़ेबाज़, उम्मते मुस्लिमा के टुकड़े करने वाला, मुनाफ़िक़, बेदीन, दुनियादार, सख़्त मिज़ाज, तख़्त का भूका, नाआक़िबत अन्देश वग़ैरहा जैसे बेहूदा औसाफ़ (विशेषणों) से याद किया गया है और इस सब को मक्कारी के साथ झूटी शैतानी दलीलों से साबित करने की नापाक कोशिश की गई है। और यज़ीद पलीद को अमीरुल मुमिनीन, ख़लीफ़ए बरहक़, अमन पसन्द, सय्यिदना और रदियल्लाहु तआला

अ़न्हु बल्कि स़ल्ललल्लाहु अ़ला अमीरुल मुमिनीन यज़ीद लिखा गया है, नस्र के अलावा नज़्म में भी उसकी मनक़बतें लिख कर अपने शैतानी कलेजे को ठन्डक पहुँचाई है। हज़रते मौलाए काइनात अ़लीए मुरतज़ा रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु को भी नहीं बख़्शा गया है। उनकी शान में भी खुल कर बे–अदबियाँ और गुस्ताख़ियाँ की गई हैं। ख़ुदा ग़ारत करे इन किताबों के मुसन्निफ़ीन (लेखकों) को जिन्होंने यूँ समझिए कि अपने जहन्नमी होने का इक़रार व एलान दुनिया में ख़ुद ही अपने क़लम व ज़बान से कर दिया है। इन किताबों के मुसन्निफ़ीन सब पाकिस्तानी हैं और यह किताबें वहीं छप कर शाए हुई हैं। उनके इक़तिसाबात मैं इसलिए भी नहीं नक़ल कर रहा हूँ कि इबारतें इस क़दर दिलआज़ार और दुख पहुँचाने वाली हैं उन्हें नक़ल करते हुए भी क़लम काँप रहा है। उनके बातिल ख़्यालात और झूटे मज़ऊमात की तरदीद के लिए मैं दलाइल देने की भी ज़रूरत नहीं समझता क्यूँकि यज़ीद को ख़लीफ़ए बरहक़, इमामुल मुस्लिमीन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु कहने वालों और उस पर दुरूद भेजने वालों और हज़रत सय्यिदना इमाम हुसैन रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु को बाग़ी और फ़ितनापरवर, नाहक़ कोशिश बकने वालों का जवाब बजाए क़लम के तलवार से होना चाहिए था। ख़ुदाए तआ़ला ऐसे मुजाहिदीन पैदा फ़रमाए जो उन सरकशों को दुनिया में दुश्मनी अहलेबैत का मज़ा चखा दें।

और इससे ज़्यादा हैरतनाक और क़ाबिले अफ़सोस बात यह है कि शैख़ मुहम्मद इब्ने अ़ब्दुलवहाब नज्दी और मौलवी इस्माईल देहलवी के मुक़ल्लिदों यानी वहाबी और देवबन्दी बिरादरी

ने भी अभी जल्दी ही में अपने ख़ारिजी और दुश्मने अहलेबैत होने का एलान कर दिया। यज़ीद की तारीफ़ के पुलिन्दे बाँधना उन्होंने भी शुरू कर दिया है और हज़रते इमाम आ़ली मक़ाम को फ़ितनापरवर साबित करने की कोशिश में यह भी लग गए हैं। पता नहीं इसमें इन लोगों ने अपने लिए कौन सी भलाई और बेहतरी समझी और उन्हें अब थोड़े दिनों से यज़ीद की तारीफ़ व तौसीफ़ और इमाम आ़ली मक़ाम की बुराई व मज़म्मत में जन्नत नज़र आने लगी जबकि यज़ीद का किरदार उम्मते मुस्लिमा में हमेशा इस क़दर बदनाम और दाग़दार रहा है कि ख़ुद वहाबियत के बानियों और मुक़तदाओं को भी उसकी बुराई, नालाइक़ी और नाअहली का एलान करना पड़ा था। और वह ऐसा न करते तो वहाबियत की दाग़ बेल डालना नामुमकिन हो जाता क्यूँकि दुनिया का कोई भी मुसलमान यज़ीद की तारीफ़ सुनना गवारा न करता और वहाबियत को दाख़िल होने के लिए अहले इस्लाम की बस्तियों में कोई तंग से तंग भी गली और कूचा हाथ न आता, मगर अफ़सोस कि उन्होंने अपनी इस यज़ीद दोस्ती और हुसैन दुश्मनी को छुपाए रक्खा और जब देखा कि करोड़ों अहले इस्लाम हमारे जाल में फँस चुके हैं, तबलीग़ के नाम पर एक बड़ी तादाद को अपना मुक़ल्लिद (पैरोकार) बना लिया है तब अपने यज़ीदी होने का एलान खुलेआम करना शुरू कर दिया, मगर अब कौन वापस आता है, अब तो जो जिसका हो गया वह हो गया, जहन्नम से कूदना आसान काम नहीं है?

यज़ीद के बारे में वहाबियों के दो चेहरे

यह देखिये हिन्दुस्तान में वहाबियत के बानी शाह इस्माईल साहब देहलवी की "तक़वीयतुल ईमान" मतबूआ़ मकतबा थानवी, देवबन्द तबाअ़त 1984 ई. --- इसका

सफ़्हा 77 खोलिये और पढ़िये लिखते हैं :

"ग़ौर करो यज़ीद और शिमर ने पैग़म्बर को नहीं मारा बल्कि पैग़म्बर के नवासे को मारा जो इमामे वक़्त थे और आपके ख़लीफ़ा थे तो जो गुनाह शिमर और यज़ीद को होगा उससे बढ़ कर गुनाह तस्वीर बनाने वाले को होगा क्यूँकि उनको क़ातिले पैग़म्बर का सा गुनाह है।"

ज़ाहिर है इस इबारत के ज़रिए शाह इस्माईल साहब ने हज़रते इमाम आ़ली मक़ाम सय्यिदना हुसैन रदि़यल्लाहु तआ़ला अ़न्हु को इमामे वक़्त और ख़लीफ़ए रसूल तसलीम करके यज़ीद और शिमर को उनका क़ातिल मान कर उन दोनों के बारे में यह भी इक़रार कर लिया कि उन पर बरोज़े क़ियामत इस गुनाह का अज़ाब होगा।

अब इसी तक़्वीयतुल ईमान का सफ़्हा 198 खोलिये और देखिये शाह इस्माईल का फ़तवा। कहते हैं :

"और याद रखना चाहिए इब्ने ज़्याद, इब्ने सअ़द और शिमर वग़ैरह ने यज़ीद की इजाज़त से इमाम हुसैन रदि़यल्लाहु तआ़ला अ़न्हु को दुख पहुँचाये और क़ाबिले मज़म्मत हरकत की। मुसलमानों को चाहिए कि वह कोई ऐसी हरकत न करें जिससे रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम और आपके अहलेबैत को दुनिया या आख़िरत में रंज पहुँचे।"

शाह इस्माईल साहब की यह इबारत उन वहाबियों के लिए भी दर्दे सर है जिन्होंने अब यज़ीद की तरफ़ से सफ़ाई पेश करते हुए यह कहना शुरू कर दिया है कि क़त्ले हुसैन मे यज़ीद का कोई हाथ न था जंग करबला में हो रही थी और वह मुल्के शाम में सैकड़ों मील के

फ़ासिले पर था। यह सब फ़ासिले शाह साहब ने मिटा दिए और बात भी सही है बादशाह और सुल्तान जंग के मैदानों में अगरचे न हों मगर सिपाहियों सिपहसालारों के काम के वह ज़िम्मेदार होते हैं और इजाज़त दूर से भी मिल सकती है। शाह इस्माईल साहब ने साफ़ कर दिया कि सब कुछ यज़ीद की इजाज़त से हो रहा था।

और देखिए यह दूसरे वहाबी देवबन्दी गिरोह के बहुत बड़े मौलाना रशीद अहमद साहब गंगोही की फ़तावा रशीदिया मतबूआ दरसी कुतुबख़ाना, देहली, सने तबाअत 1987 ई. के सफ़हा 50 पर फ़रमाते हैं :

"यज़ीद मोमिन था ब-सबबे क़त्ल के फ़ासिक़ हुआ।"

गोया गंगोही साहब के ख़्याल में भी यज़ीद कोई नेक अच्छा आदमी न था बल्कि एक फ़ासिक़ व बदकार शख़्स था।

यह तो यज़ीद के बारे में पुराने वहाबियों की बोलियाँ थीं अब नई नस्ल की तरक़्क़ी भी मुलाहिज़ा फ़रमाइये बात दरअस्ल यह है इश्क़ व महब्बत और प्यार करने का दौर आ गया है और जब प्यार ही करना था तो फिर यज़ीद जैसा महबूब व माशूक़ कहाँ मिलता लिहाज़ा भाई लोग उसी को दिल दे बैठे।

यह देखिये नाम निहाद जमाअ़ते अहले हदीस (ग़ैर मुक़ल्लिद वहाबियों) का देहली से मौलाना अ़ब्दुस्सलाम बस्तवी की इदारत में शाए होने वाला माहनामा "अलइस्लाम" बाबत माह मार्च 1961 ई. इस वक़्त मेरे सामने रखा है इसके सफ़हा 6 पर हज़रते अमीर मुआ़विया की सख़ावत की तारीफ़ करते हुए फ़रमाते हैं।

"इसी तरह आपके साहबज़ादे यज़ीद रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु भी इनफ़ाक़ व सख़ावत (राहे ख़ुदा में ख़र्च करने) के ख़ूगर (आ़दी) थे।"

भला बताइये भरी हुई हैं मुतक़द्दिमीन और और मुतअख़्ख़िरीन की किताबें यज़ीद की बदकारियों, बे हयाइयों, ग़ुन्डागर्दियों, शराबख़ोरी और नमाज़ों में लापरवाही वग़ैरह ख़राब आदतों के ज़िक्र से मगर आशिक़ों को इससे क्या मतलब? उन्हें कुछ नज़र न आया, नज़र आया तो बस सख़ी होना नज़र आया और उस नाअहल नालाइक़ को रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु भी लिख मारा। कैसा अदब है कितनी ताज़ीम और एहतराम से नाम लिया मौलाना ने अपने हज़रत का।

और यह उन्हें सलफ़ी ग़ैर मुक़ल्लिदों का एक दूसरा माहनामा "नवाए इस्लाम" जो बहुत सारे ग़ैर मुक़ल्लिद मौलवियों को शामिल करके तशकील दी गई "मजलिसे अद्दअ़वते इस्लामी" के ज़ेरे एहतमाम शाए होता है। इसकी मुहर्रम 1407 हिजरी वाली कापी मेरे सामने है। 80 सफ़हात पर मुशतमिल इस पूरे माहनामें में यज़ीद पलीद की तारीफ़ व तौसीफ़ का हक़ उसके दीवानों ने अदा कर दिया है।

इस माहनामे की चन्द दिलआज़ार इबारतें मुलाहिज़ा फ़रमाइये :

सफ़हा 20 पर लिखा है :

"शहादते हुसैन को अपनी ज़बान व क़लम का मौज़ू बनाना किसी तरह दुरुस्त नहीं।"

इसी सफ़हे पर थोड़ा नीचे लिखा है :

"सय्यिदना हुसैन के साथ 'इमाम' का लफ़्ज़ (यानी इमाम हुसैन कहना) शीअ़त (शियों का तरीक़ा) है।"

सफ़्हा 27 पर है :

"जिन मुहक़्क़िक़ीन उलमाए उम्मत ने हक़ाइक़ की रौशनी में जज़्बात से अलग होकर ग़ौर किया वह यज़ीद की हुकूमत को दुरुस्त तसलीम करते रहे।"

सफ़्हा 51 पर है :

"जहाँ तक यज़ीद को 'रह़मतुल्लाहिं अ़लैह' कहने का तअ़ल्लुक़ है तो यह न सिर्फ़ जाइज़ बल्कि मुस्तह़ब है, अच्छा फ़ेल है।"

देवबन्दी बिरादरी भी अपने हज़रत गंगोही के फ़तवे जिसमें उन्होंने यज़ीद को फ़ासिक़ कहा है उसको भुला बैठी। और हिन्दुस्तान में यू.पी. के मशहूर शहर मुरादाबाद की सरज़मीन पर क़ाइम देवबन्दियों के मरकज़ी इदारे के एक मुफ़्ती साहब जिनका नाम हबीबुर्रह़मान है उसने एक किताब लिखी जिसका नाम "मुह़र्रम" रखा नाम तो बहुत अच्छा रखा लेकिन काम बहुत ख़राब किया यज़ीद की तरफ़दारी और वकालत का हक़ अदा कर दिया, ख़ारिजियत के नक़्शे क़दम पर चलते हुए हज़रत इमामे आ़ली मक़ाम को शरअंगेज़, फ़ितना परवर, ख़िलाफ़ते इलाहियह का बाग़ी और मुफ़सिद क़रार देकर यज़ीद को अमीरुल मुमिनीन और ख़लीफ़ए बरहक़ साबित करने में सारी क़ाबिलियत ख़र्च कर डाली।

और जिस वक़्त यह किताब बर सरे आम आई तो क़ौम में खलबली मच गई उलमाए अहलेसुन्नत में से एक निहायत दरजा फ़क़ीह व मुहद्दिस आलिम व फ़ाज़िल बल्कि

कामिल व वासिल शख़्सियत हज़रत अल्लामा मुफ़्ती मुबीनुद्दीन साहब अमरोहवी रहमतुल्लाहि तआ़ला अ़लैह ने उसका निहायत मुफ़स्सल, मुदल्लल, मुकम्मल जवाब लिखा और उसका नाम "शहीदे मुअ़ज़्ज़म बजवाबे मुहर्रम" रखा जवाब ऐसा लाजवाब था कि तब से अब तक देवबन्दी बिरादरी ख़ामोश है। सन्नाटे के अलावा कुछ नज़र नहीं आता यज़ीदियत दम तोड़ गई और ख़ारिजियत के उल्लू सिसक-सिसक कर मर गए। हज़रत की यह किताब छप चुकी है और सुन्नी कुतुबख़ानों पर दस्तयाब है।

इसके अलावा एक और देवबन्दी फ़ाज़िल लिखते हैं :

"यज़ीद के तअ़ल्लुक़ से लोगों में तरह-तरह के ख़्यालात पाए जाते हैं करबला के मैदान में अहलेबैत के साथ उनकी फ़ौज ने ज़ुल्म व ज़्यादती की है इसका सबको इक़रार है। लेकिन इस ज़ुल्मे अ़ज़ीम को यज़ीद के सर डाला नहीं जा सकता जो लोग ऐसा करते हैं ग़लत करते हैं हमारे उलमाए देवबन्द ने हमेशा यज़ीद की हिमायत की है। हज़रत क़ारी तय्यब साहब ने उन्हें मुत्तक़ी (परहेज़गार) और अमीरुलमुमिनीन (मुमिनों के सरदार) के लक़ब से याद किया है।" (इज़्हारे हक़ मुसन्निफ़ा मौलवी नज़र मुहम्मद क़ासिमी मतबूआ़ मकतबा तय्यबा देवबन्द)

पेशे नज़र किताब इस्लमी नाम निहाद फ़िरक़ों का एक जाइज़ा है जिसके ज़रिए मैं सिर्फ़ यह दिखाना चाहता हूँ कि ख़ुदाए तआ़ला ने अपने फ़रमान के मुताबिक़ अहले हक़ को हमेशा दरमियान में रखा लिहाज़ा मैं तफ़सील में नहीं जाना चाहता और यज़ीद के हामियों के दलाइल और अहलेसुन्नत की तरफ़ से उनके जवाबात का ज़िक्र न करके बात को

आगे बढ़ाना चाहता हूँ वैसे मेरी राय में जिस का ज़िक्र मैं पहले भी कर चुका हूँ यज़ीद का ना–अहल, नालाइक़, फ़ासिक़ व फ़ाजिर, ज़ालिम व बदकार होना तारीख़ से वाक़िफ़ अहले इल्म बल्कि अ़वाम पर भी इतना ज़ाहिर है कि इसके लिए हमें दलील देने की ज़रूरत ही नहीं और जिन्हें यज़ीदियत का नशा सवार हो और यज़ीद के साथ मैदाने महशर में ख़ुदाए ज़ुलजलाल के सामने आने का शौक़ हो उन्हें दलीलों से समझाया भी नहीं जा सकता। यह भी वक़्त का अलमिया (अफ़सोसनाक) है कि आज उलमाए अहलेसुन्नत को यज़ीद जैसे ज़ालिम व जफ़ाकार की नाअहली साबित करने के लिए मुक़ाबला व मुनाज़रा की ज़रूरत पेश आए। हाँ यज़ीद के हामियों वकीलों के लिए सब से उम्दा जवाब यह है कि दुआ की जाए कि ख़ुदाए तआ़ला जब हम अहले सुन्नत को हजरते इमाम हुसैन अ़ला जद्दिही व अ़लैहिस्सलातु वस्सलाम के दामने करम में बरोज़े क़ियामत जगह अता फ़रमाए तो यज़ीद के हामियों को यज़ीदी झन्डे के नीचे उसी के गिरोह में उठाए। फिर भी जिसे दोनों तरफ़ की दलीलें व सुबूत, सवालात व जवाबात देखना हों वह और इस सिलसिले में अहलेसुन्नत के मोक़िफ़ (पक्ष) को मुदल्लल तौर पर (दलीलों के साथ) समझने का शौक़ हो किताबे मज़कूर (ज़िक्र की गई) "शहीदे मुअ़ज़्ज़म" और अ़ल्लामा पीर करम शाह अज़हरी की तसनीफ़ "सय्यिदना इमाम हुसैन और यज़ीद" का मुतालआ़ करे दोनों बुज़ुर्गों ने निहायत उम्दा अन्दाज़ में मज़बूत दलीलों से यज़ीद का फ़िस्क़ व फ़िजूर ज़ाहिर फ़रमा दिया है और जानिब मुख़ालिफ़ की मक्कारियों, अय्यारियों, धोकेबाज़ियों के जाल काट दिए हैं।

ऊपर ज़िक्र किए गए बयान में आप हर दो बातिल फ़िरक़ों राफ़िज़ियों और ख़ारिजियों का ज़िक्र मुलाहिज़ा फ़रमा चुके हैं और आप पर ख़ूब वाज़ेह हो गया होगा, ख़ारिजियों पर अहलेबैत किराम की अदावत का नशा सवार है और वह हज़राते अहलेबैत किराम की अदावत और दुश्मनी को मज़हब बनाए हुए हैं जब कि राफ़िज़ी उनकी महब्बत में हद से आगे बढ़ कर सहाबए किराम की दुश्मनी को धरम समझे हुए हैं और ख़ुदाए तआ़ला ने अहलेसुन्नत को उनके दरमियान में रक्खा जो सहाबा और अहलेबैत दोनों से सच्ची महब्बत रखते हैं ख़ुलासा यह कि सुन्नी वह है कि उसके दिल को चीर कर देखा जाए तो एक हिस्से पर अबूबक्र व उमर व उस्मान लिखा हो और दूसरे पर अ़ली, फ़ातिमा, हसन और हुसैन लिखा हो रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम अजमईन, वल्ह़म्दुलिल्लाहि रब्बिलआ़लमीन।

एक ज़रूरी नोट

★ मग़रिब की नमाज़ के बाद आधे घन्टे के लिए अपनी मस्जिद के इमाम के पास बैठ कर आप उर्दू, अरबी पढ़ना शुरू कर दें, दो चार महीने में ही आप अपने मक़सद में कामयाब हो सकते हैं आपके मरने के बाद आपके तीजे, दसवें और चालीसवें में लोग कितना ही क़ुर्आन आपके लिए पढ़ दें उसका वह सवाब नहीं है जो ज़िन्दगी में अपने मुँह से आपने तिलावत कर ली। मरने से पहले क़ुर्आन ज़रूर पढ़ लीजिये।

वहाबियों और शरीअत की मुख़ालिफ़त करने वाले पीरों के दरमियान

अल्लाह तआला हर बात पर क़ादिर[1] है, वह जो चाहे करे, वह चाहता तो दीन व मजहब अपने बन्दों के दिल में यूँही बराहे रास्त (डाइरेक्ट, बिना किसी वसीले के) डाल देता और जो भी पैदा होता वह कलमा पढ़ता हुआ, नमाज़, रोज़ा और अहकामे शरअ़ सीखे हुए माँ के पेट से आता लेकिन उसकी मर्ज़ी यह है कि मेरा रास्ता जिसको भी मिले वह किसी के ज़रिए वसीले और वास्ते से मिले हालांकि इसमें कोई शक नहीं कि वह जैसे जिसको जो चाहे जब चाहे अता फ़रमा दे। अपने दीन व मज़हब की अमानत उसने बराहे रास्त न देकर कुछ मख़सूस बन्दों के ज़रिए मख़लूक़ तक पहुँचाई उन्हें अम्बिया और रसूल कहते हैं और उनकी नयाबत में जिन लोगों ने यह फ़राइज़ अन्जाम दिए, उन्हें औलिया, अइम्मा और उलमा कहते हैं यह लोग ख़ुदाए तआ़ला और उसके आ़म बन्दों के दरमियान पैग़ाम्बरी का फ़रीज़ा अन्जाम देते हैं। क़ासिद व पैग़ाम्बर भी सब को नहीं बनाया जाता बल्कि जो क़ाबिले एतबार, लाइक़े एतिमाद और अमानतदार हों गोया कि हज़राते अम्बिया, औलिया, अल्लाह तआ़ला की नेमत के क़ासिम (बाँटने वाले), उसके इनाम तक़सीम फ़रमाने वाले, उसके करम की बारिश उसकी रौशनी के चाँद व सूरज और सितारे हैं। यह कोई मामूली मन्सब

नहीं है कि एक बन्दा ख़ुदाए तआ़ला की अमानतों का अमीन बन कर मख़लूक़ में तशरीफ़ लाए। लिहाज़ा इस्लाम यही है कि ख़ुदाए तआ़ला ने जिनके ज़रिए अपने दीन की अमानत हम तक पहुँचाई तो ख़ुदाए तआ़ला की तौहीद का इक़रार और उसकी 'लाशरीक लह' किबरियाई और शान का ज़िक्र करने के साथ-साथ उसकी अमानतों के अमीन उन मख़सूस बन्दों की भी अ़ज़मत व महब्बत दिल में बिठाई जाए कि जब ख़ुदाए तआ़ला के यहाँ उसकी वहदानियत के दरबार में वह इज़्ज़त व अज़मत वाले हैं तो मख़लूक़ में फिर उन्हें यह मक़ाम क्यूँकर हासिल न होगा? और जिन्हें ख़ुदाए तआ़ला क़ुर्आन में अपना महबूब फ़रमाए तो उसके बन्दे उनसे महब्बत क्यूँ न करेंगे? मगर इस सिलसिले में भी लोग हदों को फलांग गए और दरमियान के सीधे सच्चे रास्ते को छोड़ कर इधर-उधर भाग निकले और दो ग़लत क़िस्म के गिरोह हमारे सामने आ गए एक वह लोग जो अल्लाह का नाम लेकर अल्लाह वालों को अम्बिया, औलिया को भुलाने में लग गए और दूसरे वह जो नाम निहाद पीरों, फ़क़ीरों के चक्कर में पड़ गए और अल्लाह तआ़ला और उसके भेजे हुए दीन को भुला बैठे। पहले गिरोह को वहाबी और दूसरे को जाहिल पीरों और मक्कार सूफ़ियों के नाम से ताबीर किया जा सकता है। यह दोनों ग़लती पर हैं और मज़हबे अहलेसुन्नत हक़ है जो उन दोनों के दरमियान का रास्ता है यानी अल्लाह तआ़ला की तौहीद का इक़रार उसकी इबादत उसके अहकाम की बजाआवरी के साथ उसके मख़सूस बन्दों हज़राते अम्बियाए किराम, रसूलाने

इज़ाम और औलियाए ज़विल एहतिराम सल्लल्लाहु तआ़ला अ़ला सय्यिदहिम व अ़लैहिम अजमईन से महब्बत व अ़क़ीदत सिखाता है। अल्लाह के ज़िक्र के साथ-साथ उनकी याद के चिराग़ भी सीने में रौशन रखने की तलक़ीन फ़रमाता है। अल्लाह की इबादत का मज़ा हासिल करने के लिए उसके मख़सूस और महबूब बन्दों के ज़िक्र को जिस्म व जान व रूह की ग़िज़ा ख़्याल करता है हम थोड़ी तफ़सील के साथ दोनों का ज़िक्र करेंगे।

वहाबी कौन है ?

हमारे ऊपर के बयान से ज़ाहिर हो गया कि वहाबी वही लोग हैं कि जिन्होंने हज़राते अम्बिया व औलिया को भुला करके सिर्फ़ अल्लाह के नाम लेने को ही इस्लाम ख़्याल कर रखा है। यह ज़ाहिर में अल्लाह की इबादत तो करते हुए नज़र आते हैं लेकिन उसके मख़सूस बन्दों से महब्बत करने के बजाए उनकी शान में गुस्ताख़ियाँ करते, बे अदबी बकते दिखाई देते हैं। उनमें बहुत से वह हैं जो अभी बे अदब और गुस्ताख़ तो नहीं हैं लेकिन उनकी जमाअ़त, गिरोह और फ़िरक़े में शामिल हैं। लिहाज़ा उनकी भी ख़ैरियत नहीं है, आज नहीं तो कल सोहबत रंग लाएगी और इबलीसी जाल, शैतानी चाल से बचना बड़ा मुश्किल क़रीबे नामुमकिन हो जाएगा। फ़रमाने इलाही है :

يَوْمَ نَدْعُوا كُلَّ اُنَاسٍ بِاِمَامِهِمْ

तर्जमा : क़ियामत के दिन हर जमाअ़त को हम उसके

इमाम के साथ बुलायेंगे। (पारा 15, रुकूअ 7)

तो क्या ज़रूरी है कि आप किसी ऐसे गिरोह और फ़िरक़े में शामिल रहें कि जिसके बानी और पेशवा यक़ीनन गुमराह बददीन हैं? अगर अ़वामे अहलेसुन्नत में आपको कुछ ख़ामियाँ और कोताहियाँ उनकी बेअ़मली की वजह से नज़र आती हैं तो कौन रोकता है आपको तनक़ीद करने से? किस ने मना किया है उनकी इस्लाह करने से? और सबसे पहले आप अपनी इस्लाह कीजिये।

एक बार सफ़र में फ़क़ीर को एक सुन्नी जैन्टलमैन मिले कहने लगे मौलवी साहब यह बताइये कि क्या वजह है कि सुन्नी नमाज़ कम पढ़ते हैं और वहाबी और देवबन्दी ज़्यादा नमाज़ी होते हैं। तो मैंने उनसे मालूम किया कि साहब आप भी नमाज़ पढ़ते हैं? बोले पढ़ता तो मैं भी नहीं हूँ। मैंने क़हा कि यह आप फिर किस से कह रहे हैं? यह सवाल आप ख़ुद अपने से पूछिये मैं तो अल्हम्दुलिल्लाह नमाज़ पढ़ता हूँ। मैंने कहा आपसे से यह तो नहीं हो सका कि अपनी इस्लाह कर लेते और नमाज़ी बन जाते और जो बुरी ख़िलाफ़े शरअ़ आदतें हैं उनको छोड़ देते और दीनदार और परहेज़गार सुन्नी मुसलमान बन जाते बजाए इसके आप वहाबियों की तारीफ़ करने लगे कि वह नमाज़ी होते हैं।

मैं पूछता हूँ क्या नमाज़ी और दीनदार बनने के लिए वहाबियतज़दा गिरोहों और फ़िरक़ों में शामिल होना ज़रूरी है? क्या उनकी पार्टी का मिम्बर बने बग़ैर आपको नमाज़, रोज़े और अह्कामे शरअ़ से कोई रोकता है? क्या नियाज़ व फ़ातिहा, मीलाद व क़ियाम वग़ैरह नमाज़, रोज़े और

ज़कात से मना करते हैं? क्या ज़रूरी है जब तक बुज़ुर्गों की नियाज़ व फ़ातिहा, उर्स व मीलाद को हराम व बिदअ़त न कहा जाए नमाज़ नहीं पढ़ी जा सकती? क्या यह नहीं हो सकता कि अल्लाह की इबादत भी होती रहे और शरीअ़त के दाइरे में रह कर अल्लाह के महबूब बन्दों से महब्बत भी होती रहे और नमाज़, रोज़े, ज़कात को फ़र्ज़ व लाज़िम समझ कर और नियाज़ व फ़ातिहा को एक अच्छा और मुस्तहब काम समझ कर करते रहें। बुरा मत मानियेगा सही बात यह है कि जिस क़ौम के दिन पूरे हो जाते हैं उसको कोई समझा नहीं सकता।

ख़ुलासा यह कि वहाबियत एक बातिल गिरोह है जिसका बानी मुहम्मद बिन अ़ब्दुलवहाब है जो अरब में सूबए नज्द की एक बस्ती ऐनियह में 1115 हिजरी मुताबिक़ 1703 ई. में पैदा हुआ। यह वही नज्द है कि जिसके बारे में पैग़म्बरे इस्लाम ने फ़रमाया था :

"नज्द में ज़लज़ले और फ़ितने होंगे और वहाँ से शैतान का सींग निकलेगा।"

(बुख़ारी, जिल्द 2, किताबुल फ़ितन, पेज 1051)

हिन्दुस्तान में इस फ़िरक़े की बुनियाद शैख़ मुहम्मद बिन अ़ब्दुल वहाब नज्दी के ख़्यालात से मुतास्सिर होकर ख़ानदाने वली उल्लाही के एक फ़र्द मौलवी मुहम्मद इस्माईल देहलवी ने डाली जो 1193 हिजरी मुताबिक़ 1779 ई में देहली में पैदा हुए। आजकल मौलाना इस्माईल देहलवी के पैरोकार हिन्दुस्तान और पाकिस्तान में 3 गिरोहों में बट गए।

(1) नाम निहाद जमाअ़ते (अहले हदीस) यानी ग़ैर मुक़ल्लिदीन

जो ख़ुद को अब सलफ़ी भी कहने लगे हैं।

(2) देवबन्दी

(3) नाम निहाद इस्लामी जमाअ़त यानी मौदूदी

अगरचे यह लोग कुछ बातों में एक दूसरे से इख़्तिलाफ़ भी रखते हैं लेकिन शैख़ मुह़म्मद बिन अ़ब्दुलवहाब नज्दी और शाह इस्माईल देहलवी को हर गिरोह अपना पेशवा और मुक़तदा और इमाम तस्लीम करता है।

मौलवी अबुल उ़ला मौदूदी ने अपनी तसनीफ़ "तजदीद व इह़याए दीन" में मौलवी इस्माईल साहब देहलवी को मुजद्दिदीन की फ़ेहरिस्त में शुमार किया है। जब कि देवबन्दियों के ह़ज़रत गंगोही साहब ने अपने फ़तावा में इस्माईल देहलवी की किताब "तक़वियतुल ईमान" को पढ़ना और घर में रखना ऐने ईमान क़रार दिया है। नाम निहाद जमाअ़ते अहले हदीस की इस्माईल नवाज़ी तो इस क़दर मशहूर व मारूफ़ है कि कोई किताब शायद ही उनके ज़िक्र व मदह़ (तारीफ़) से ख़ाली होगी। और मौलाना इस्माईल की शान में अगर कोई कुछ कह दे तो हर वक़्त लड़ने और मरने, उनकी ख़ातिर जान देने को तय्यार रहते हैं।

वहाबियों के अ़क़ाइद की तफ़सील और उनकी तरदीद में कई हज़ार किताबें अब तक सिर्फ़ उर्दू ज़बान में लिखी जा चुकी हैं और जब से यह फ़िरक़ा वुजूद में आया उस वक़्त से हर दौर में सारे उलमाए अहले हक़ बड़ी कोशिश व लगन से तक़रीर व तहरीर के ज़रिए उनका मुक़ाबला करते रहे हैं। उनके रद में लिखी हुई किताबें आज बाज़ार में बड़ी आसानी से दस्तयाब हैं।

लोगों को चाहिए कि उन्हें हासिल करें और पढ़ें वक़्त निकालें और मरते दम तक ईमान की सलामती के लिए कोशाँ रहें, कहीं ऐसा न हो कि आप किसी के जाल में फँस जायें और क़ियामत के दिन जब जहन्नम का हुक्म सुनाया जाए तो आप कहें हमें पता नहीं था कि कौन ग़लत था और कौन सही तो फ़रिश्ते कहें तुम्हारे पास किताबें ख़रीदने के लिए सौ पचास रुपये भी न थे और उनका मुतालआ़ करने के लिए रात दिन में एक घन्टा भी नहीं मिल सकता था?

ख़ुद मैं भी इस सिलसिले में अब तक 3 अदद किताबें लिख चुका हूँ :

(1) तक़लीदे शख़्सी ज़रूरी है : यह मसलए तक़लीद पर जमाअ़ते अहले हदीस की तरफ़ से किताबचे की शक्ल में शाए होने वाले पचास सवालों का जवाब है पढ़ते वक़्त आपको लगेगा जैसे आप कोई मुनाज़रा देख रहे या सुन रहे हैं। यह किताब उर्दू ज़बान में छप चुकी है।

(2) ह़दीसों की रौशनी : बड़े साफ़ और सुलझे हुए अन्दाज़ में तक़रीबन 200 हदीसें अपने अ़क़ाइद की ताईद में तर्जमे और हवाले के साथ लिख दी गई हैं। यह किताब उर्दू और हिन्दी दोनों ज़बानों में छप चुकी है।

(3) तसव्वुफ़ क़ुर्आन व हदीस की रौशनी में : इस किताब में अल्लाह वालों की शान और अ़ज़मत बयान की गई है और तसव्वुफ़ की मुख़ालिफ़त करने वाले फ़िरक़ए अहले हदीस और मौदूदियत को क़ुर्आन और हदीस की रौशनी में समझाया गया है। यह किताब सिर्फ़ उर्दू में है

तो वहाबियों के अक़ाइद व ख़्यालात व नज़रियात

और उनका रद मुफ़स्सल तौर पर जानने के लिए आप उलमाए अहले हक़ की किताबों का मुतालआ कीजिये लेकिन यहाँ पर मैं कुछ इबारतें उनके पेशवाओं की किताबों से लिख रहा हूँ ताकि ज़ाहिर हो जाए कि वाक़िई वहाबियत अल्लाह के महबूब व मुक़द्दस बन्दों की तौहीन व तज़लील (ज़लील करना), उनकी बारगाहों में गुस्ताख़ी और बेअदबी का नाम है।

वहाबियत के बानी मौलवी इस्माईल देहलवी लिखते हैं :

"उसका कोई शरीक नहीं ख़्वाह वह छोटा हो या बड़ा सब उसके बेबस बन्दे हैं और बेबसी में बराबर हैं।"

(तक़वियतुल ईमान, सफ़हा 16)

मैं कहता हूँ इसमें कोई शक नहीं और वाक़िई अल्लाह का कोई शरीक नहीं छोटे हों या बड़े सब उसके बन्दे और उसकी मख़लूक़ हैं और इसमें भी कोई शक नहीं कि अल्लाह के सामने सब बेबस हैं लेकिन बे बसी में सब बराबर हैं यह कहाँ से कह दिया? यही वहाबियत है। बड़े छोटे का फ़र्क़ मिटाना अम्बिया, औलिया को आ़म लोगों की सफ़ में खड़ा कर देना गुमराही नहीं तो और क्या है यह देखिये हदीसे पाक में है :

हज़रते अनस से मरवी है कि रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया कि "अल्लाह तआ़ला के कुछ बन्दे ऐसे हैं कि अगर वह अल्लाह तआ़ला पर क़सम खा जायें तो अल्लाह तआ़ला उनकी बात को पूरा कर देता है।" (बुख़ारी, जिल्द 1, सफ़हा 394; सहीह मुस्लिम, जिल्द 2, सफ़हा 329; तिर्मिज़ी, सफ़हा 226; मिश्कात सफ़हा 579)

बोलो वहाबी साहिबो यह कौन हैं कि अज़ रूए हदीस ख़ुदाए तआ़ला उनके मुँह की निकली पूरी फ़रमाता है और आपके बड़े मौलाना लिख रहे हैं कि बे बसी में सब बराबर हैं। इस क़िस्म की सैकड़ों हदीसें मअ़ अरबी इबारत और तर्जमा व हवाला मुतालआ़ करने के लिए हमारी किताब "ह़दीसों की रौशनी" का मुतालआ़ करना चाहिए।

और सुनिये मौलवी इस्माईल देहलवी का ख़्याल :

"यक़ीन मानो कि हर शख़्स ख़्वाह वह बड़े से बड़ा इन्सान हो या मुक़र्रबतरीन फ़रिश्ता शाने उलूहियत (अल्लाह की शान) के मुक़ाबले पर एक चमार से भी ज़्यादा ज़लील है।"

(तक़वियतुल ईमान, सफ़हा 23)

मैं कहता हूँ यह अल्लाह के सामने हर छोटे और बड़े को चमार से ज़्यादा ज़लील बता कर आप अल्लाह की शान बयान नहीं कर रहे हैं बल्कि उसके मुक़द्दस और महबूब बन्दों की शान घटा रहे हैं और उनकी तौहीन कर रहे हैं।

जबकि कुरआ़ने अज़ीम मे हज़रते सय्यिदना ईसा अलैहसलाम के लियें पारा 3 रुकुअ़ 4 आइयत 39 मे सय्यिदन का लफ़्ज़ बोला गया है जिसके माअ़ना हैं सरदार, आक़ा, मालिक और उसी के आगे आइयत 45 में उनको

कहा गया है जिसका तर्जुमा है दुनिया व आखिरत मे शान व इज़्ज़त वाला और अल्लाह का क़रीबी।

कुरआन करीम में हज़रत सय्यदना आदम अलैहिस्सलाम और हज़रत दाऊद अलैहिस्सलाम को अल्लाह तआ़ला ने अपना ख़लीफ़ा (नाईब) फ़रमाया है देखिये पारा 1 रुकूअ़

4 सूरते बक़र आयत 30 और पारा 23 रुकूअ़ 11 सूरत सुआद आयत 26 इसके अलावा और अंम्बिया के लिये अल्लाह ताआ़ला ने कुराने करीम में बड़े बड़े अलक़ाब दिये हैं और अपने महबूब हज़रत मोहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहो तआ़ला अलैहिवसल्लम को कही रहमतुललिल आलामीन यानि सारे जहांनो के लियें रहमत कहीं सिराजे मुनीर यानि रौशन चिरांग कहीं शाहिद कही मुंबशशिर कही रंऊफ़ कहीं रहीम जैसे अलक़ाब अता फ़रमाये हैं। पता नही यह ज़लील वह भी चमार से ज़्यादा का लफ़्ज़ आपको कहा से मिला यह किसी आसमानी नही बल्कि शैतानी किताब की बोली है।

इसी सफ़हे पर आगे लिखते हैं :

"सिर्फ़ अल्लाह ही को माना जाए और उसके सिवा किसी को न माना जाए।"

जब कि अहलेसुन्नत का अ़क़ीदा यह है कि अल्लाह को अल्लाह माना जाए और उसने जिसको जो मानने का हुक्म दिया हो उस को भी माना जाए।

एक मक़ाम पर हज़राते अम्बिया, औलिया से मदद मांगने और उन्हें पुकारने वालों का रद करते हुए लिखते हैं :

"यानी इज़्ज़त व जलाल वाले ख़ुदा के होते हुए ऐसे नाकारा लोगों को पुकारना जो न नफ़ा के मालिक हैं और न नुक़सान के सरासर ज़ुल्म है क्यूँकि बड़ी से बड़ी हस्ती का मक़ाम महज़ नाकारा लोगों को दिया जा रहा है।" (तक़वियतुल ईमान, सफ़हा 37)

मैं कहता हूँ ठीक है आप महबूबीने ख़ुदा से मदद मत मांगिये आप महरूम रहिये लेकिन उन्हें नाकारा तो

मत कहिये। यह कुर्आन व हदीस में हज़राते अम्बियाए किराम व औलियाए इज़ाम के लिए नाकारा का लफ़्ज़ कहाँ आया है। क्या उन्हें नाकारा कहे बग़ैर ख़ुदाए तआ़ला पर ईमान मुकम्मल नहीं हो सकता?

शफ़ाअ़त का इन्कार करते हुए एक जगह लिखते हैं :

(हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया)

"मैं तो ख़ुद ही डरता हूँ और अल्लाह के सिवा कहीं पनाहगाह नहीं देखता दूसरों को क्या बचा सकूंगा।" (तक़्वियतुल ईमान, सफ़्हा 37)

हालांकि हुज़ूर से ऐसा कहीं मनकूल नहीं बल्कि आप से शफ़ाअ़त के हक़ होने के बारे में बेशुमार हदीसें मरवी हैं जिनमें से कुछ मैंने "हदीसों की रौशनी" में नक़ल कर दी हैं और यक़ीनन हुज़ूर अल्लाह के हुक्म से एक ख़ल्क़े कसीर को अज़ाबे जहन्नम से नजात दिलायेंगे।

और देखिये यह बकवास :

"यानी तमाम इन्सान आपस में भाई-भाई हैं जो बहुत बुज़ुर्ग हुआ वह बड़ा भाई, उसकी बड़े भाई की सी ताज़ीम करना चाहिए।"

(तक़्वियतुल ईमान, सफ़्हा 71)

और अहलेसुन्नत का अ़क़ीदा इस सिलसिले में यह है कि अल्लाह के रसूल स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम हमारे बड़े भाई नहीं हमारे आक़ा हैं हम उनके ग़ुलाम, वह दाता हैं हम मंगता, वह बादशाह हैं हम उनके दर के फ़क़ीर।

एक दिल आज़ार (दिल को दुखाने वाली) इबारत और मुलाहिज़ा फ़रमायें। रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की तरफ़ से एक बात गढ़ कर बयान करते हैं कि आप ने फ़रमाया :

"मैं भी एक दिन मर कर मिट्टी में मिलने वाला हूँ।"

यह मरने का लफ़्ज़ आ़म बोलचाल में भी अच्छे भले लोगों के लिए नहीं बोला जाता बल्कि यूँ कहा जाता है "इन्तक़ाल कर गए", "गुज़र गए", "एक्सपाइर हो गए" वग़ैरह और आप अल्लाह के रसूल के लिए बोल रहे हैं और फिर मिट्टी में मिलने वाला, क्या यही इस्लाम है?

नोट : यह इबारत तक़वियतुल ईमान के पुराने नुस्ख़ों में सफ़हा 42 पर है। नए नुस्ख़ों से यह इबारत निकाल दी है लेकिन भाई इबारत निकालने से तो काम नहीं चलेगा जो लिख कर मर गया उसके बारे में भी कुछ बताओ क्या अब मरने के बाद वह तौबा करेगा? उससे तौबा कराने कौन जाएगा? और मरने के बाद की तौबा क़बूल हो जाएगी? इबारत तो आपने निकाल दी लेकिन उसको जहन्नम से कैसे निकालोगे? कम अज़ कम इतना कह दो कि उसने यह इबारत ग़लत लिखी थी और वह ग़लती पर मरा।

यह तो थी मौलवी इस्माईल देहलवी की तक़वियतुल ईमान अब उनकी एक और किताब "सिराते मुस्तक़ीम" की भी एक इबारत मुलाहिज़ा फ़रमाइये, लिखा है :

"ज़िना के वसवसे से अपनी बीवी की मुजामिअ़त (हमबिस्तरी) का ख़्याल बेहतर है और शैख़ या उस जैसे और बुज़ुर्गों की तरफ़ ख़्वाह जनाबे रिसालत मआब ही हों अपनी हिम्मत को लगा देना अपने बैल और गधे की

सूरत में मुसतग़रक़ होने (डूब जाने) से बुरा है।"
(सिराते मुस्तक़ीम, सफ़हा 118, मतबअ़ अर्रशीद, देवबन्द)

यानी मआ़ज़ल्लाह नमाज़ में हुज़ूर का ख़्याल गधे और बैल के ख़्याल से बुरा है।

एक और मौलवी हैं जो देवबन्दी वहाबी गिरोह के बड़े लोगों में शुमार होते हैं उनका नाम है मौलाना ख़लील अहमद अम्बेठवी वह देवबन्द के मदरसे की तारीफ़ इन अल्फ़ाज़ में करते हैं :

"एक स्वालिह़ (नेक शख़्स) फ़ख़्रे आ़लम अ़लैहिस्सलाम की ज़्यारत से मुशर्रफ़ हुए तो आप को उर्दू में कलाम करते देख कर पूछा कि आपको यह कलाम कहाँ से आ गई आप तो अरबी हैं। फ़रमाया जब से उलमाए मदरसए देवबन्द से हमारा मुआ़मला हुआ हम को यह ज़बान आ गई। सुब्हानल्लाह इससे रुतबा इस मदरसे का मालूम हुआ।"
(बराहीने क़ातिअ़ह, सफ़हा 30)

इस इबारत से अन्दाज़ा लगाइये कि अल्लाह के महबूब सय्यिदे आ़लम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम का मक़ाम अहले देवबन्द की नज़र में क्या है? जिन्हें वह उर्दू देवबन्द के मदरसे से सिखा रहे उसी किताब के सफ़हा 55 पर शैतान और मलकुल मौत को ज़मीन व आसमान के सारे उलूम तसलीम कर लिए लेकिन हुज़ूर के लिए इस अक़ीदे को शिर्क क़रार दिया है।

और मौलवी अशरफ़ अ़ली थानवी ने "हिफ़्ज़ुल ईमान" नाम की किताब में हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के इल्मे पाक को ज़ैद व अम्र, जानवरों के इल्म की तरह लिख मारा; इबारत उनकी यह है :

"दरयाफ़्त तलब अम्र यह है कि उस ग़ैब से बाज़ उलूम ग़ैबिया मुराद हैं या कुल, अगर बाज़ उलूमे ग़ैबिया मुराद हैं तो इसमें हुज़ूर ही की क्या तख़सीस है ऐसा इल्मे ग़ैब तो ज़ैद व अम्र बल्कि हर बच्चे, पागल बल्कि तमाम जानवरों और चौपायों को हासिल है।"

(हिफ़्ज़ुल ईमान, सफ़हा 8, मतबूआ कुतुबख़ाना एज़ाज़िया, देवबन्द)

इस क़िस्म की अहले ईमान के दिलों में चुभने वाली इबारतें उनकी किताबों से सैकड़ों की तादाद में जमा की जा सकती हैं जिससे ज़ाहिर हो जाता है कि वहाबियों, देवबन्दियों के दिल में किसी नबी और वली का कोई मक़ाम नहीं है और यक़ीनन यह इबारतें ग़ैर इस्लामी और काफ़िराना हैं और उन के लिखने वाले और जानबूझ कर उनको मानने वाले सब इस्लाम के दाइरे से बाहर हैं।

कभी-कभी यह लोग इन इबारतों में तावीलें करते हैं। और मअ़ना व मुराद कुछ से कुछ बना कर सफ़ाई पेश करना चाहते हैं। उनसे पूछा जाए कि ऐसी इबारतें लिखने की ज़रूरत ही क्या थी कि जिनकी सफ़ाई पेश करने को फिर से पूरी-पूरी किताबें लिखना पड़ें। और सफ़ाई पेश करना और तावीलें करना ऐसा ही है कि जैसे कोई किसी से कहे कि मैंने तेरी बहन के साथ हमबिस्तरी की है और वह शख़्स जब उस कहने वाले से झगड़े तो कह दे कि तेरी बहन से मुराद मेरी बीवी है क्यूँकि सब मुसलमान मर्द व औरत आपस में भाई बहन हैं लिहाज़ा मेरी बीवी तेरी बहन है; भला बताइये कि यह तावील चल जाएगी? और कोई सुनने को तय्यार होगा? समझ में नहीं

आता हो तो किसी से कह कर देखिये। देवबन्दी, वहाबी अकाबिरीन की यह आदत रही है कि पहले बकवास कर लो फिर तावीलें गढ़ते फिरो। पहले गालियाँ दे लो फिर मअ़ना व मतलब बताते फिरो कि ऐसा नहीं ऐसा है।

ख़ुलासा यह कि वहाबियत अल्लाह का नाम लेकर अल्लाह वालों की शान में तौहीन करने, उनका नाम व ज़िक्र याद और महब्बत दिलों से निकालने, उनकी बारगाहों में गुस्ताख़ और बेअदब बनाने वाली एक ग़ैर इस्लामी तहरीक, पालेसी और चालाकी का नाम है। अलबत्ता यह ज़रूरी नहीं है कि उनकी जमाअ़त में शामिल हर शख़्स गुस्ताख़ हो लेकिन जमाअ़त ज़रूर गुस्ताख़ों की है, बे अदबों की है और यह भोला-भाला जो तहरीक का ज़ाहिर देख कर शामिल हो गया है उसने एक ग़लत राह पकड़ी जो आज नहीं कल उसे गहरे ग़ार में ले जाकर गिराएगी फिर यह वहाँ से निकल नहीं सकेगा।

क्या नहीं देखते कि हिन्दुस्तान में कुछ इस्लाम दुश्मन सियासी पार्टियाँ हैं जिनके पोशीदा एजेन्डे में इस्लाम और मुसलामानों को मिटाना शामिल है लेकिन नासमझ मुसलमान भी उन पार्टियों में शामिल हैं, उहदेदार भी हैं, और वोटर भी, सपोर्टर भी। तो किसी भी तन्ज़ीम जमाअ़त और पार्टी में कुछ अच्छे भले लोगों को देख कर यह नही समझ लेना चाहिए कि वह पार्टी भी सही है और उसका आईन भी सही है। आख़िर ग़लतफ़हमी और मफ़ादपरस्ती भी कोई चीज़ है।

वहाबियत क्यूँ फैली और क्यूँ फैलती है?

बात दरअस्ल यह है कि वहाबियों ने एक चालाकी की कि उन्होंने अल्लाह वालों और उसके महबूब बन्दों की तौहीन करने के लिए अल्लाह के नाम को इस्तेमाल किया और उनका मुक़ाबला ख़ुदाए तआ़ला से कराया और ख़ुदाए तआ़ला की ह़म्द व सताइश (तारीफ़) और उसकी बुज़ुर्गी और बरतरी के ज़िक्र के शहद में ख़ासाने ख़ुदा अम्बिया, औलिया की तौहीन व तज़लील का ज़हर घोल कर पिलाया। और यह तरकीब होती है कि किसी की तहक़ीर व तज़लील करना हो तो उस से बड़े का ज़िक्र बड़ाई के साथ करते रहो और फिर उस छोटे को मुँह भर कर ज़लील करो और ख़ूब दिल की भड़ास निकालो वहाबियों की तहरीरों में उसकी आ़म बोलियाँ यह होती हैं :

"सब इख़्तियार अल्लाह को हासिल हैं किसी नबी और वली को कोई इख़्तियार नहीं।"

"अल्लाह जो चाहे करे किसी नबी और वली के चाहे से कुछ नहीं होता।"

"सारे नबियों और वलियों की अल्लाह के सामने कोई औक़ात और हैसियत नहीं बल्कि वह उसके मुक़ाबिल ज़लील हैं।"

"नफ़ा और नुक़सान का मालिक सिर्फ़ अल्लाह है कोई नबी व वली किसी को नफ़ा और नुक़सान नहीं पहुँचा सकता।" वग़ैरह इस क़िस्म के सैकड़ों जुमले तक़वियतुल ईमान में देखे जा सकते हैं। मैं कहता हूँ नादानों यह तुम अल्लाह तआ़ला की तारीफ़ नहीं कर रहे हो बल्कि उसके दोस्तों की तौहीन कर रहे हो। हाँ यह

अलग बात है कि तुमने उस तौहीन के लिए ज़िक्रे इलाही को आड़ बना लिया कि आख़िर कड़वे घूँट बग़ैर शकर मिलाए आसानी से उतारे भी तो नहीं जा सकते।

इन्हीं बातों को यूँ भी कहा जा सकता था :

★ सब इख़्तियार अल्लाह तआ़ला के लिए हैं लेकिन उसने हज़राते अम्बिया, औलिया को भी बड़े–बड़े इख़्तियारात अता फ़रमाए हैं।

★ बेशक अल्लाह जो चाहे वह ही होता है उसकी मर्ज़ी के बग़ैर कुछ नहीं हो सकता लेकिन उसके महबूब बन्दे जो चाहें तो ख़ुदाए तआ़ला अपने करम से उनकी चाहत और मर्ज़ी पूरी फ़रमा देता है।

★ हज़राते अम्बिया, औलिया, अल्लाह तआ़ला के यहाँ ज़लील नहीं हैं बल्कि वह उसकी बारगाह में मक़बूल हैं उन्हें उसने बड़े–बड़े मरतबे अता फ़रमाए हैं।

★ हक़ीक़त में नफ़ा व नुक़सान का मालिक अल्लाह ही है लेकिन उसकी देन और अता से बन्दों से भी बन्दों को बड़ा–बड़ा नफ़ा और नुक़सान पहुँच सकता हैं

तो आप देखें ये ऐसे जुमले हैं कि जिनमें ख़ुदाए तआ़ला की वहदानियत, रहमत व यकताई और क़ुदरत व किबरियाई का भी ज़िक्र हो गया और उसके मक़बूल बन्दों की शान व अज़मत भी ज़ाहिर हो गई।

मैं पूछता हूँ क्या अल्लाह तबारक व तआ़ला की तौहीद के अक़ीदे की हिफ़ाज़त के लिए उसके मक़बूल बन्दों की तज़लील व तहक़ीर (बेइज़्ज़त करना) ज़रूरी है। क्या इसके बग़ैर अल्लाह पर ईमान कामिल (पूर्ण) नहीं हो सकता? क्या यही इस्लाम है? सोचो और ग़ौर करो और मरने से पहले आँख खोल लो।

एक मिसाल

अगर कोई शख़्स किसी ज़िला मजिस्ट्रेट यानी कलेक्टर के पास जाए और उससे कहे कि वज़ीरे आला और गवर्नर के मुक़ाबले में आपकी कोई औक़ात नहीं है, उनके सामने आप चपरासी की सी हैसियत रखते हैं। तो यक़ीनन उसको यह बातें अच्छी नहीं लगेंगी। हालांकि बातें सच्ची हैं लेकिन तौहीन और अपमान की बू आ रही है। और उसी कलेक्टर से यह कहा जाए कि आप सैकड़ों मील रक़्बे (क्षेत्रफल) में फैले हुए इस ज़िले के मालिक हैं जो चाहें करें आपको बड़ा इख़्तियार हासिल है, कई सौ आफ़िसरान, इन्सपेक्टर्स, इन्जीनियर्स आपके मातहत काम कर रहे हैं तो ज़ाहिर है यह बातें सुन कर वह ख़ुश होगा।

बस आप समझ गए होंगे कि अल्लाह तबारक व तआ़ला का नाम लेकर और उसकी ज़ाती और हक़ीक़ी मिल्कियत व बादशाहत व क़ुदरत व जलालत का ज़िक्र करके हज़राते अम्बिया, औलिया को उसके मुक़ाबले में पेश करके उन्हें बेइख़्तियार, मजबूर, बेताक़त, बे नफ़ा जैसे अल्फ़ाज़ से याद करना उनकी बारगाहों में गुस्ताख़ी बेअदबी करना है और दिल की भड़ास निकालना है, शैतानी कलेजे को ठन्डक पहुँचाना है। इसके अलावा और कुछ नहीं है और जानते हो तौहीन और बेअदबी इस्लाम में कितना संगीन जुर्म है। क़ुर्आने करीम की सिर्फ़ एक आयत सुनो :

يٰاَيُّهَا الَّذِيْنَ آمَنُوا لَا تَرْفَعُوْا اَصْوَاتَكُمْ فَوْقَ صَوْتِ النَّبِيِّ وَلَا تَجْهَرُوْا لَهٗ
بِالْقَوْلِ كَجَهْرِ بَعْضِكُمْ لِبَعْضٍ اَنْ تَحْبَطَ اَعْمَالُكُمْ وَاَنْتُمْ لَا تَشْعُرُوْنَ ○

तर्जमा : "ऐ ईमान वालो! नबी की आवाज़ से अपनी आवाज़ को ऊँचा मत होने दो और उनकी बारगाह में इस तरह ज़ोर-ज़ोर से बातचीत मत करो जैसे एक दूसरे से ज़ोर-ज़ोर से बोलते हो कहीं ऐसा न हो कि तुम्हारे सब अ़मल बरबाद हो जायें और तुम्हें ख़बर न हो।"

(सूरए हुजरात, रुकूअ़ 1)

देखा आपने सिर्फ़ इतनी सी बात पर कि आवाज़ से आवाज़ ऊँची हो जाए, अल्लाह तबारक व तआ़ला ने कैसी सख़्त सज़ा सुनाई है कि सारे अअ़्माल बरबाद हो जायेंगे सब करे धरे पर पानी फिर जाएगा। हालांकि आवाज़ से आवाज़ का ऊँचा हो जाना बातचीत के दरमियान उर्फ़ में कोई बड़ी बे अदबी नहीं मानी जाती है आ़मतौर से ऐसा हो जाता है कि लोग अपने बड़ों से बातचीत में इसका ख़्याल नहीं रख पाते और उनकी आवाज़ बड़ों की आवाज़ से ऊँची हो जाती है लेकिन ख़ुदाए तआ़ला को अपने महबूब की बारगाह में इतनी सी बेअदबी गवारा नहीं और उसकी सज़ा सब नेकियों पर पानी फिर जाना है। यानी क़ुर्आने करीम में साफ़ कर दिया गया कि बेअदब का कोई अमल क़बूल नहीं, उसके नमाज़, रोज़े, हज व ज़कात वग़ैरह सब अकारत (बेकार) हैं।

एक ज़रूरी नोट

दीनी इस्लामी किताबों का अदब कीजिये। किताब के ऊपर कभी कोई घरेलू सामान मत रखिये। यह भी न हो कि आप ऊपर हों और क़रीब में किताब आपके नीचे। जिसके पास अदब है वह बे-पढ़ा होकर भी अच्छा है पढ़े लिखे बे-अदब से।

आज की दुनिया का बेअदब माहौल

वहाबियत के फ़रोग़ पाने में इस बात का भी बड़ा दख़ल है कि आज की दुनिया पहले से बहुत बदल चुकी है सौ-डेढ़ सौ साल से तरक़्क़ी के नाम पर नई नस्लों की ज़हनियत को बिल्कुल तब्दील कर दिया गया है। आज़ाद ख़्याल और आवारागर्दी की एक लहर चली है। लिहाज़-पास उठता जा रहा है। मदरसों की जगह स्कूलों और कालेजों ने ले ली है। जहाँ उस्ताद शगिर्दों को डाँटते डपटते अदब सिखाते उन्हें सज़ा देते थे अब शगिर्द उस्तादों को डाँटने मारने लगे हैं हर तरफ़ बेअदबी और बदतहज़ीबी का दौरदौरा है। जहाँ गाँव बस्ती और मोहल्लों में वहाँ के छोटे अपने से उम्र में बड़े बूढ़ों का अदब करते थे, उनके सरहाने नहीं बैठते थे, उनके सामने हुक़्क़ा-बीड़ी और पान का इस्तेमाल नहीं करते थे, मामलात में उन्हें पेश-पेश रखते थे उनसे मशवरे करते, उनकी बात बड़ी रखते, उनके सामने नंगे सर नहीं जाते थे। अब कहाँ दूसरे घरानों के बड़े बूढ़े? अब तो ख़ास अपने माँ-बाप, दादा-दादी तक का कोई लिहाज़ नहीं है। उन्हें डाँटना, डपटना, मारना, चिल्लाना, गालियाँ देना बजाए उनकी मानने के उनसे अपनी बात मनवाना उनसे ख़ुद को ज़्यादा अक़्लमन्द समझना और उन्हें बेवकूफ़ समझना, तरक़्क़ी और फ़ैशन बन गया है, ख़ुदाए तआला ख़ैर फ़रमाए, दुनिया का माहौल अब देखा नहीं जा रहा है। साथ ईमान के ख़ात्मा नसीब फ़रमाए।

मैं कहता हूँ बड़ों की बात में हिकमत और बरकत

होती है, हो सकता है उनकी कोई बात या कोई हुक्म आपकी अक़्ल के ख़िलाफ़, नादानी, नासमझी और बेवक़ूफी मालूम होती हो लेकिन हर काम के अन्जाम व मसलेहत को अल्लाह ही जानता है और नफ़ा नुक़सान का मालिक वही है, वह चाहे तो दौलत देकर बेचैन कर दे और वह चाहे तो ग़रीबी में सुकून दे दे। वह चाहे तो शानदार बिल्डिंगों, आलीशान इमारतों में तड़पा दे और वह चाहे कच्चे मकानों और झोंपड़ियों में चैन की नींद सुला दे। बहरहाल कोई समझे न समझे बात यही है कि इताअ़त व फ़रमांबरदारी में बरकत है और अदब व ताज़ीम में ख़ुदाए तआ़ला की रहमत है। क्या नहीं देखते कि पहले ज़माने में लोग ग़रीबी, नादारी, मुफ़लिसी व नातवानी, फ़ाक़ाकशी और तंग हाली के बावुजूद सुकून से नज़र आते थे, ख़ुश दिखाई देते थे। आज दौलत की फ़रावानी है, मालदारी और क़िस्म-क़िस्म के साज़ो सामानों की बहुतात है। ऐश व आराम के लिए तरह-तरह की चीज़ें मौजूद हैं लेकिन सुकून व चैन कहाँ है? जिससे पूछो वह परेशान है। हज़ार क़िस्म की उलझनें और ज़हनी परेशानियाँ गिनाता है। जहाँ महब्बत थी ईसार था, एक का दूसरे से लगाव था वहाँ अब यह हाल है कि इन्सान इन्सान को खाने के लिए दौड़ रहा है।

ख़ुलासा यह कि आज स्कूलों, कालिजों और यूनीवर्सिटियों, डाक्टरों, मास्टरों, वकीलों, बैरिस्टरों, लेक्चरारों और प्रोफ़ेसरों वाली मग़रिबी तहज़ीब की तरफ़दार आज़ाद ख़्याल दुनिया और उसका माहौल वहाबियत के लिए और बेअदबी फैलाने के लिए साज़गार साबित हुआ

बेअदबों को दुनिया का बे अदब माहौल रास आ गया और इश्क़ व महब्बत, अदब व ताज़ीम वाली हदीसें और क़ुर्आनी आयात, दीनी मदरसों और ख़ानक़ाहों की रिवायात उन्हें अफ़साने और कहानियाँ मालूम होने लगे। इसका मतलब यह नहीं है कि मैंने ज़िक्र किए गए तमाम मग़रिबी तालीम याफ़्ता अफ़राद को आज़ाद ख़्याल कह दिया। सही बात यह है कि उनमें से वह लोग जो अपने दीन व ईमान को बचाए हुए हैं, कुछ भी हैं लेकिन अपनी इस्लामी बूद–ो बाश, रंग और लिबास में नज़र आते हैं। हज़राते अम्बिया, औलिया व उलमा का अदब व इह्तिराम दिल में रखते हैं। यक़ीनन वह हमारी क़ौम के लिए सरमायए इफ़्तिख़ार (बड़ी पूंजी) हैं और उनसे बड़े–बड़े क़ौमी मफ़ाद बावस्ता हैं। बात वही है जो अकबर साहब इलाहबादी कह गए :

हम ऐसी कुल किताबें क़ाबिले ज़ब्ती समझते हैं
कि जिनको पढ़ के बेटे बाप को ख़ब्ती समझते हैं

मैंने ख़ुद देखा है कि एक डबल एम. ए. पास बाबूजी शर्ट पैन्ट वाले हैट और बूट पहने नंगे सर एक मुफ़्ती साहब के पास मस्जिद के हुजरे में एक फ़तवा लेने आए अज़ान हो चुकी थी नमाज़ का वक़्त था। उन्होंने फ़रमाया आप फिर किसी वक़्त आइयेगा, मसअला पेचीदा है, ग़ौर करना पड़ेगा, किताबें भी देखना पड़ेंगी। वह साहब नाराज़ होकर वापस हुए और यह कहते जा रहे थे, मौलवी भी अजीब लोग हैं किसी की हैसियत को नहीं समझते, हम से बैठने तक को नहीं कहा और फ़तवे के लिए कह दिया कि फिर कभी आइयेगा, हमारे पास इतना

वक़्त कहाँ है?

देखा आपने कलक्टरों, कमिश्नरों और जजों के पास सिर्फ़ एक दस्तख़त कराने को छोटे-छोटे कामों या मामूली मुक़दमों और फ़ैसलों के लिए कई-कई साल तक दौड़ने वाले, कचहरियों और दफ़्तरों में छह-छह घन्टें "साहब" का इन्तिज़ार करने वाले मुफ़्तियों और आलिमों को ग़ुलामों और नौकरों की तरह समझने लगे हैं और हर मसअले और फ़तवे का जवाब उनसे फ़ौरन चाहते हैं। हालांकि इस्लामी फ़िक़्ह और उसके मसाइल का मुकम्मल तौर पर जानना, वकालत व बैरिस्टरी के कोर्स से ज़्यादा मुश्किल है और यहाँ रवादारी और जल्दी में या मिज़ाज व तबीअ़त की नासाज़गारी में या किसी ज़हनी उलझन और दबाव में ग़लत बात या कुछ का कुछ मुँह से निकल जाए या क़लम से लिख जाए तो ख़ौफ़े ख़ुदा और फ़िक्रे आख़िरत भी दामनगीर है।

बात लम्बी हो गई अब इस बात को यहीं डाक्टर इक़बाल साहब के एक शेर पर ख़त्म करता हूँ

क्या फ़ाएदा कुछ कह के बनूँ और भी मअ़तूब
पहले ही ख़फ़ा मुझ से हैं तहज़ीब के फ़रज़न्द

ज़रूरी नोट

दीनी इस्लामी किताबों का अदब कीजिये। किताब के ऊपर कभी कोई घरेलू सामान मत रखिये। यह भी न हो कि आप ऊपर हों और क़रीब में किताब आपके नीचे। जिसके पास अदब है वह बे-पढ़ा होकर भी अच्छा है पढ़े लिखे बे-अदब से।

ख़ानक़ाही निज़ाम की बदहाली

वहाबियत फैलाने और उसके फ़रोग़ पाने मे मौजूदा दौर के ख़ानक़ाही निज़ाम और उनके ग़ैर शरई हालात, रस्मो रिवाज को भी बहुत बड़ा दख़ल है। जहाँ "इल्लल्लाह" की ज़रबें लगाई जाती थीं वहाँ तबले बजने लगे, जहाँ रात दिन क़ुर्आन की तिलावतें होती थीं वहाँ हारमोनियम और साज़ सजने लगे, जहाँ एक ख़ुदाए वहदहू लाशरी-क लहू की इबादत का ज़ौक़ व शौक़ पैदा किया जाता था वहाँ अब इबादत को शरीअ़त और मौलवियों का रास्ता बता कर उससे रोका जाने लगा, जहाँ नमाज़ों की सफ़ें लगती थीं वहाँ नाच रक़्स होने लगे। इस सिलसिले में पूरी तफ़सील तो अभी आगे आती है। यहाँ तो सिर्फ़ इतना बताना है कि जिन अल्लाह वालों, उसके महबूब बन्दों, औलिया किराम, बुज़ुर्गाने दीन की इज़्ज़त व अ़ज़मत के लिए हम दूसरों से लड़े उनकी शान और मरतबे को घटाने वालों, उनकी तौहीन व तज़लील करने वालों से मुक़ाबले किए आज के अक्सर पीरों और पीरज़ादों में उन बुज़ुर्गों के किरदार की कोई झलक नज़र नहीं आती, उनकी ख़िलाफ़े शरअ़ हरकतों ने उन्हें दीन से दूर कर दिया। और औलिया अल्लाह और बुज़ुर्गों की जो करामतें और उनके फ़ज़ाइल व मनाक़िब मौलवियों ने बयान किए क़ौम ने अपनी नासमझी व बेइल्मी के सबब उन्हें आज के पीरों और पीरज़ादों में टटोला क़रीब से देखा भाला और नासमझी से उन्होंने उन्हीं को औलिया व अतक़िया समझा तो उन्हें यह सब ढकोसला और धोका मालूम हुआ और उसमें हमारी जमाअ़त के पेशावर लालची मुक़र्रिरों, ख़तीबों और शाइरों का भी बहुत बड़ा दख़ल है। आज अक्सर

मौलवियों का यह हाल है कि उनमें किसी का भी किसी बे नमाज़ी ख़िलाफ़े शरअ़ अनपढ़ पीर और पीरज़ादे को हज़ारों के मजमे में बरसरे मिम्बर वलीए कामिल और पीरे तरीक़त कह देना कोई तअ़ज्जुब की बात नहीं है और किसी भी शाइर का किसी भी नाअहल सज्जादे की शान में क़सीदा और मनक़बत पढ़ कर उसको बाकरामत मुरशिदे बरहक़ साबित कर देना एक आ़म बात है। जब कि हदीस में है फ़रमाया रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने "जब फ़ासिक़ की तारीफ़ की जाती है, रब तआ़ला ग़ज़ब फ़रमाता है और उसके सबब अ़र्शे इलाही हिल जाता है।" (अलजामेउ़स्सग़ीर)

दरअस्ल आज की यह मुक़र्रिरी और शाइरी इस्लाम व सुन्नियत के लिए बहुत बड़ा ख़तरा बनती जा रही है। इस सिलसिले में क़ौम से सिर्फ़ इतना कहूँगा कि वह आज के मुक़र्रिरों और शाइरों की बोलियों को इस्लामी फ़तवा न समझें बल्कि दीनी इस्लामी किताबें पढ़ने, उनका मुतालआ़ करने की आदत बनायें। आज तक़रीर करने वालों में अक्सर वह लोग हैं कि जिनका मक़सद वाज़ व नसीहत, इस्लाह व तबलीग़ नाम की कोई चीज़ नहीं है, क़ौम को किसी तरह ख़ुश करके और उसका दिल जीत कर नज़राने वुसूल करने के लिए ही यह घर से निकलते हैं। याद रक्खो जिस क़ौम की हलाकत क़रीब होती है उनमें पेशावर मुक़र्रिर और शाइर ज़्यादा पैदा हो जाते हैं। और जो क़ौम सिर्फ़ जलसों, मुक़र्रिरों, शाइरों और मुशाइरों पर रह गई हो उसकी उम्र बहुत कम है।

अवाम की बेराहरवी

इससे मेरा मक़सद वह लोग हैं जो नियाज़ व फ़ातिहा, दसवें और चालीसवें तो ख़ूब करते हैं, बुज़ुर्गों के नाम पर खिचड़े, मलीदे, पुलाव और ज़र्दे ख़ूब पका-पका कर खाते हैं, दरगाहों पर भी ख़ूब जाते हैं लेकिन नमाज़, रोज़े की पाबन्दी नहीं करते, अहकामे शरअ़ से बहुत दूर हैं, ज़कात भी कभी नहीं निकालते, ऐसे लोगों के इस तरीक़ए कार से वहाबियत को फ़रोग़ मिल रहा है और मज़हबे अहलेसुन्नत को नुक़सान पहुँच रहा है। उनके अमल और तरीक़ए कार को देख कर लोग गुमराह हो रहे हैं और मज़हब का ग़लत तआ़रुफ़ (परिचय) हो रहा है क्यूँकि आजकल दुनिया दार लोग उलमा के फ़तवों और और उनकी किताबें तो देखते नहीं अवाम की रविश और उनके समाज को ही मज़हब ख़्याल करते हैं।

काश हमारे अवाम भाई इस्लाम की ज़रूरी बातों पर अमल करते और उसके साथ शरीअ़त के दाइरे में रह कर नियाज़ व फ़ातिहा वग़ैरह को भी करते तो मज़हबे अहलेसुन्नत को बड़ी ताक़त मिलती।

एक ज़रूरी नोट

दीनी इस्लामी किताबों का अदब कीजिये। किताब के ऊपर कभी कोई घरेलू सामान मत रखिये। यह भी न हो कि आप ऊपर हों और क़रीब में किताब आपके नीचे। जिसके पास अदब है वह बे-पढ़ा होकर भी अच्छा है पढ़े लिखे बे-अदब से।

वहाबियत को रोकने के लिए कुछ तदबीरें

(1) अक़ाइद की इस्लाह के साथ-साथ अअ्माल की इस्लाह पर भी ज़ोर दिया जाए। सिर्फ़ जलसों और तक़रीरों के ज़रिए नहीं बल्कि तनज़ीमें और तहरीकें चला कर मस्जिदों को नमाज़ियों से भरा जाए, ख़िलाफ़े शरअ़ बातों से रोक कर अहकामे शरअ़ का पाबन्द बनाया जाए। इधर कुछ दिनों से हिन्द व पाक के हालात कुछ इस मोड़ पर आ गए हैं कि अहलेसुन्नत वलजमाअ़त नमाज़, रोज़े और अहकामे शरअ़ की तबलीग़ व इशाअ़त पर जितना ज़ोर देंगे उतना ही अहलेसुन्नत को फ़रोग़ होगा और नए-नए फ़िरक़ों से क़ौम महफ़ूज़ रह सकेगी। भाईयो! क़ौम की मिसाल ख़ुद रौ (ख़ुद उगने वाली) घास की तरह है जो उसे काट कर ले गया वही उसका मालिक है। सुलहकुल्लियत की ऐसी लहर चली है कि अवाम अमूमन तरदीद और इख़्तिलाफ़ की बातों को पसन्द नहीं करते और मशाग़िले दुनिया काम धन्धों की वजह से न उन्हें इसकी फ़ुरसत और उनकी अपनी नज़र में न उन्हें उसकी ख़ास ज़रूरत। बस जो उन्हें अपने किरदार से ख़्वाह ज़ाहिरियत ही सही मुतास्सिर (प्रभावित) करके ले गया वह उसके पीछे हैं और ख़ुद तो ज़्यादा जानते नहीं बस जो उसके अक़ाइद वह उनके अक़ाइद, जो उसका दीन वह उनका दीन। इसको यूँ समझिये कि कहीं लावारिस ख़ुद रौ खेती खड़ी है और एक शख़्स उसे काट रहा है आप उसके क़रीब जाकर उससे झगड़ा करते रहें कि तू क्यूँ काट रहा है मैं काटूंगा, मेरा हक़ है, तू भाग जा, तू ग़लत आदमी है, तू इसे काट कर इसका ग़लत इस्तेमाल करेगा, आग में जला देगा या दरिया में बहा देगा या उसका ग़ल्ला चोरों, डकैतों और बदमाशों को खिलायेगा। आप यह सब कहते रहें और वह काटता रहे तो उस में आप एक बड़ी

भूल कर रहे हैं, आपको चाहिए कि आप जहाँ तक हो सके उसको रोकने की कोशिश करें और ख़ुद औज़ार लेकर काटना भी शुरू कर दें वरना आप उसका रद करते रह जायेंगे और वह खेती कट जाएगी।

कुछ लोग इस ग़लतफ़हमी में पड़े हुए हैं कि ईमान व अक़ीदा दुरुस्त हो बस काफ़ी है, तो इसमें तो कोई शक नहीं कि ईमान अक़ाइद की दुरुस्तगी का ही नाम है लेकिन इस बात से भी ग़ाफ़िल नहीं रहना चाहिए कि जब बन्दा नाफ़रमानी और सरकशी में हद से आगे बढ़ जाता है, गुनाहे कबीरा करने और फ़राइज़ व वाजिबात को छोड़ने पर जरी (निडर) हो जाता है तो कभी-कभी उसका ईमान भी छीन लिया जाता है। हदीसे पाक में है कि "रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम से एक साहब ने पूछा कि या रसूलल्लाह ईमान क्या है? तो आपने फ़रमाया कि जब तुम्हें नेकी करके ख़ुशी हो और गुनाह करके अफ़सोस हो तो तुम ईमान वाले हो।"

(मिश्कात, किताबुल ईमान, सफ़हा 16)

क़ुर्आने करीम में है :

"वह (क़ुर्आन) हिदायत है डर वालों के लिए जो बे देखे ईमान लाए और नमाज़ क़ाइम रखें और हमारी दी हुई रोज़ी में से हमारी राह में ख़र्च करें।" (सूरए बक़रा, रुकूअ 1)

और फ़रमाता है :

"बेशक मुराद को पहुँचे ईमान वाले जो अपनी नमाज़ में गिड़गिड़ाते हैं और वह जो किसी बेहूदा बात की तरफ़ तवज्जोह नहीं करते और वह ज़कात देने का काम करते हैं और वह जो शर्मगाहों की हिफ़ाज़त करते हैं।"

(सूरए मोमिनून, रुकूअ 1)

और क़ुर्आने करीम में जगह-जगह जहाँ ईमान लाने वालों की तारीफ़ की गई है वहाँ عملوا الصّٰلحٰت का लफ़्ज़

भी साथ में है यानी जो ईमान लाए और अच्छे-अच्छे काम किये गोया कि ख़ुदाए तआ़ला को और उसके रसूल को राज़ी करने के लिए ईमान व अ़क़ाइद की दुरुस्तगी के साथ-साथ नेकियाँ करना और गुनाहों से बचना दोनों बातें ज़रूरी हैं। पिछली उम्मतों में अक्सर ऐसा हुआ है कि उन पर ग़लतकारियों की वजह से अज़ाब आ गया। क़ारून को इसलिए ज़मीन में धँसा दिया गया था कि उसने ज़कात देने से इन्कार कद दिया था। अलग-अलग क़िस्म के गुनाहों और हराम कामों के करने वालों पर क़ुर्आन व हदीस में जो सख़्त-सख़्त क़िस्म के अज़ाब की सज़ायें आई हैं वह ख़्वामख़्वाह नहीं हैं तो बात यह है कि जो लोग यह सोचे हुए हैं कि ईमान व अ़क़ाइद की दुरुस्तगी काफ़ी है, नेकियाँ करना और गुनाहों से बचना ज़रूरी नहीं, यह लोग बड़े धोके में हैं और शैतान के ज़ाल में फँसे हुए हैं और जो वाइज़ (नसीहत करने वाले) व मुक़र्रिरीन (तक़रीर करने वाले) अपनी तक़रीरों के ज़रिए यह ज़हन देते हैं कि ईमान व अ़क़ीदा दुरुस्त कर लो फिर जो चाहो करो और उनकी तक़रीरों से बजाए इस्लाह के लोग गुनाहों पर जरी हो जाते हैं और उनके दिलों से ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ निकल जाता है। ऐसे तमाम मौलवी गुमराह करने वाले हैं जो इबलीस का गिरोह बढ़ाने में लगे हैं। वलइयाज़ु बिल्लाहि तआ़ला। तो आलिम वही है जो अल्लाह की रहमत और उसके रसूल की शफ़ाअ़त से उम्मीद भी दिलाता रहे और बदअ़क़ीदगी और बदअ़मली व फ़िस्क़ व फ़िजूर पर अल्लाह तआ़ला के अज़ाब से डराता भी रहे और हिकमत व तदबीर के साथ बदमज़हबों का रद भी करता रहे।

(2) मुक़र्रिरों, ख़तीबों, शाइरों और पीरों से ज़्यादा मस्जिदों के इमाम और मदरसों के उस्तादों का ख़्याल रखा जाए, बासलाहियत बाअमल इमाम और मुदर्रिसीन रखे जायें

और उनकी ज़रूरतों का भरपूर ख़्याल रखा जाए। आज वह दौर है कि एक-एक नज़्म पढ़ने पर शाइरों को पाँच-पाँच हज़ार की रक़म एक रात में दे दी जाती है और इमामों को, बच्चों को दीनी तालीम सिखाने वालों को एक महीने में दो-तीन हज़ार रुपये की तनख़्वाह बमुश्किल मिल पाती है। यह सब बरबादी के आसार हैं।

(3) नियाज़ व फ़ातिहा, सोएम, दसवें, बीसवें, चालीसवें, कूंडे, शबे बराअत, ग्यारहवीं शरीफ़, और बारहवीं शरीफ़ के मौक़े पर फ़ातिहा और ईसाले सवाब, महफ़िले मीलाद शरीफ़ का इनइक़ाद, मज़ारात की हाज़िरी और बुज़ुर्गाने दीन के उर्स वग़ैरह काम बिदअ़ते हसनह ख़ैर व बरकत के बाइस और अच्छे काम हैं। लेकिन उलमाए अहलेसुन्नत के फ़तवों में भी उन्हें कहीं फ़र्ज़ व वाजिब नहीं लिखा है। उन्हें करते रहना चाहिए लेकिन सिर्फ़ मुस्तहब और अच्छे काम समझ कर किया जाए, फ़र्ज़ व वाजिब समझ कर न किया जाए और लोगों को यह भी याद कराते रहना चाहिए कि इन सब बातों को वह अच्छे काम ख़्याल करके करते रहें शरअ़न लाज़िम व ज़रूरी समझ कर न करें। कभी-कभी छोड़ भी दें तो कुछ गुनाह नहीं बल्कि इसमें मसलिहत है। पाबन्दी करने से लोग उन्हें फ़र्ज़ व वाजिब ख़्याल करने लगेंगे और आने वाली नस्लें ग़लतफ़हमी का शिकार हो सकती हैं।

हदीस शरीफ़ में है रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने रमज़ान शरीफ़ में तरावीह की नमाज़ पाबन्दी से पूरे महीने नहीं पढ़ी और फ़रमाया "मुझको यह अन्देशा हुआ कि वह कहीं तुम पर फ़र्ज़ न हो जाए।" (मिश्कात बाबे क़ियामे रमज़ान, सफ़हा 114, बहवाला बुख़ारी व मुस्लिम)

आला हज़रत मौलाना शाह अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी फ़रमाते हैं नज़र व नियाज़ व उर्से बुज़ुर्गाने ...

अगर बतौरे शरअ़ शरीफ़ हो तो सिर्फ़ मुस्तहबात हैं इन पर जबर नही किया जा सकता यानि करने के लियें किसी को मजबूर नही किया जा सकता (फ़तावा रज़विया जिल्द 26 सफ़हा 289)

यही आला हज़रत दूसरी जगह लिखते हैं

اوصو ابترك التزام مستحب اذا خيف ان يظنه العوام واجباً

अगर यह ख़तरा हो कि आम लोग किसी मुस्तहब काम को वाजिब और ज़रूरी ख़्याल करने लगेंगे तो उलमा ने उसको पाबन्दी से करने से मना किया है (फ़तावा रज़विया जिल्द नं 3 सफ़हा 704 मतबुआ मुबारकपुर)

आला हज़रत से एक मर्तबा सवाल किया गया कि एक शख़्स तकबीरे अक़ामत से पहले बुलन्द आवाज़ से दुरूद शरीफ़ पढ़ता है कोई न पढ़े उसको बुरा कहता है आला हज़रत ने जवाब में लिखा दुरूद शरीफ़ इक़ामत से पहले पढ़ने में कोई हरज नही लेकिन इक़ामत से फ़सल होना चाहिये यानि दोनो के बीच में कुछ देर ठहरे या दुरूद शरीफ़ की आवाज़ इक़ामत की आवाज़ से ऐसी अलग हो कि दोनो मे फ़र्क रहे और अवाम को दुरूद शरीफ़ इक़ामत का हिस्सा न मालूम हो और उस पर इसरार करना या न पढ़ने को बुरा जानना कोई वजह शरअ़ई नही रखता

(फ़तावा रज़विया जिल्द नं0 26 सफ़हा 553)

आला हज़रत की इस इबारत का खुलासा यह है कि अज़ान व इक़ामत से पहले जो दुरूद शरीफ़ पढ़े तो इस बात का ध्यान रखे कि लोग इस दुरूद शरीफ़ को अज़ान व इक़ामत का हिस्सा और टुकड़ा न समझें और कोई न पढ़े तो उसको गुनाहगार व बुरा भी न समझें।

हज़रत मौलाना शाह अब्दुलसमी साहब रामपुरी फ़रमाते हैं

यह भी ख़्याल रखना चाहिये कि क़र्ज़दार आदमी को सदक़ात व ख़ैरात करना अपनी तरफ़ से करें या मय्यत की तरफ़ से शरअ़ में अच्छा नही ख़ासकर जबकि कर्ज़ सूद पर लिया जावे यह बहुत बुरी बात है ऐसा आदमी सिर्फ़ अल्हमद और सूरते पढ़कर बख़्श दिया करे। (अनवारे सातिआ़ बरहाशिया बराहीनेक़ातेआ़ सफ़हा 148)

और यही मौलाना अब्दुल समी साहब रामपुरी जिन्होने अब से कुछ ऊपर सौ साल पहले अपनी किताब अनवारे (सातेआ़)के ज़रिये मीलाद सलाम नियाज़ फ़ातेहा उर्स वगैरह के मुनकिर वहाबियों के दांत खट्टे कर दिये थे इसी किताब में इन चीज़ों के बारे में लिखते है।

एक अमरे ख़ैर और सवाब का काम है जो कोई इसको वाजिब या वाजिब से ज़्यादा होने का अक़ीदा रखेगा उसको इन कामों से मना किया जायेगा क्योकि उसने दीन को बदल दिया कि मुस्तहब को वाजिब ख़्याल कर लिया। (अनवारे सातेआ़ बरहाशिया बराहिने क़ातेआ़ सफ़हा 69)

और हज़रत मौलाना जलाल उद्दीन साहब अमजदी फ़रमाते हैं:

औलिया-ए-कराम का उर्स जाईज़ है ज़रूरी नही और कोई मुसलमान उसे ज़रूरी नही कहता जाईज़ ही कहता है

(फ़तावा फ़ैज़ुररसूल जिल्द 2 सफ़हा 672)

यानी अब अगर उर्स को कोई ज़रूरी ख़्याल करता है या कहता है या अहलेसुन्नत पर ज़रूरी समझने का इल्ज़ाम लगाता है तो यह उसकी जिहालत नादानी और इल्ज़ाम तराशी है।

इस सब ब्यान को और ज़्यादा तफ़सील व तहक़ीक़ से जानने के लिये हमारी किताब "आओ दीन पर चलें" या "दरमियानी उम्मत" उर्दू एडीशन का मुतआ़ला करें।

आज सूरते हाल यह हो गई है कि मैंने ख़ुद देखा कि

एक गाँव में एक ग़रीब मज़दूर ने बनिये से सूद पर क़र्ज़ लिया और उसने चार सेर मैदा की पूड़ियों पर कूंडे की फ़ातिहा कराई ऐसे ही एक ग़रीब व नादार शख़्स के यहाँ मय्यत हो गई तो लोगों ने ज़बरदस्ती उससे 15 किलो चने ख़रीदवा कर फ़ातिहा व कलमा ख़्वानी कराई और उसने यह इसलिए किया कि लोग उसे वहाबी कह देंगे। हालांकि यह ज़्यादती है और लोग मज़हबे अहलेसुन्नत की तरफ़ से सख़्त ग़लतफ़हमी का शिकार हैं। इस्लाम में ज़कात, फ़ितरा, कुर्बानी और हज को भी मालदार यानी साहिबे निसाब और साहिबे इस्तिताअ़त लोगों पर लाज़िम किया गया है। जब कि यह इस्लाम में इतने अहम काम हैं कि उनके बग़ैर इस्लाम मुकम्मल नहीं होता। फिर तीजे, दसवें, चालीसवें, उर्स और बरसी और दीगर नियाज़ों, फ़ातिहाओं के लिए परेशान होना क़र्ज़ लेकर करना या ग़रीबों, नादारों और मुफ़लिसों को इन कामों के लिए मजबूर करना या अपने अमल या क़ौल से इन कामों को फ़र्ज़ व वाजिब का दर्जा दे देना मज़हबे अहलेसुन्नत नहीं है और जिस इस्लाम को अल्लाह तबारक व तआ़ला ने आसान बनाया और आसान फ़रमाया उसे मुश्किल बनाना है। क़ुर्आने करीम में है ख़ुदाए तआ़ला फ़रमाता है :

لَا يُكَلِّفُ اللّٰهُ نَفْسًا اِلَّا وُسْعَهَا

तर्जमा : अल्लाह तआ़ला किसी जान पर उसकी ताक़त से ज़्यादा बोझ नहीं डालता।

ख़ुलासा यह कि क़र्ज़ें लेकर या तंगी और परेशानी उठा कर लम्बी-लम्बी नियाज़ें, फ़ातिहायें, तीजे और दसवें, बीसवें और चालीसवें करके पूड़ियें, हलवे, खिचड़े, मलीदे पकाने की कोई ज़रूरत नहीं है बल्कि अगर किसी का क़र्ज़ा आता हो तो उसे अदा करना नियाज़ व फ़ातिहा से ज़्यादा ज़रूरी है। बिला ख़ास ज़रूरत के क़र्ज़ा लेना या ख़्वामख़्वाह क़र्ज़दार रहना शरअ़न मना है।

और नियाज़ व फ़ातिहा पाव भर और छटांक पर मैदे की पूड़ी और सूजी के हलवे पर भी हो सकती है और तीसरे दिन चनों के बजाए सत्तर हज़ार मरतबा कलमा उंगलियों और तसबीह के दानों पर भी पढ़ा जा सकता है, चने ज़रूरी नहीं और हों तो कोई हरज नहीं लेकिन उनके लिए क़र्ज़ लेने या परेशान होने की भी ज़रूरत नहीं। और कुछ भी न हो महज़ कुर्आन पढ़ कर या अल्लाह व रसूल का ज़िक्र करके या नफ़्ल रोज़े रख कर आ़म मय्यत को या बुज़ुर्गों को ईसाले सवाब किया जाए तो यह भी मुकम्मल नियाज़ और पूरी फ़ातिहा है जिसमें कोई कमी नहीं है और साथ में खाना खिलाना, सदक़ा व ख़ैरात भी हो जाए तो कोई बुराई नहीं बल्कि अच्छी बात है। लेकिन इसके लिए क़र्ज़ लेने या परेशान होने की ज़रूरत नहीं। और मय्यत की छोड़ी हुई जाएदाद या नक़दी में से ख़र्च करके उसका तीजा, दसवां और चालीसवां वग़ैरह करना बग़ैर तमाम वारिसों की मर्ज़ी के बजाए नेकी के और गुनाह है और वारिसों में कोई नाबालिग़ हो तो उसकी मर्ज़ी लेकर भी तर्के (मय्यत की छोड़ी हुई जायदाद) में से नियाज़ व फ़ातिहा करना जाइज़ नहीं है बजाए सवाब के अज़ाब का काम है। हाँ कोई अपनी कमाई से करे तो कुछ हरज नहीं

और मैं यह भी देख रहा हूँ कि आज कल काफ़ी लोग नियाज़ व फ़ातिहा नाम व नमूद के लिए अपनी शोहरत के लिए भी करते हैं कोई कहता है कि मेरी पूड़ियां सब से अच्छी रहीं, कोई कहता है कि मैं ने हलवा ऐसा बनाया कि रिकार्ड तोड़ दिया, कोई कहता है कि मेरा खिचड़ा खाकर लोगों के मुँह बन गए, कोई लम्बे-लम्बे खाने खिला कर धूम धाम से जलसे और प्रोग्राम सजा कर तीजे, दसवें और चालीसवें इसलिए कराता है कि लोग कहेंगे और ताने देंगे कि फ़लां ने अपने बाप के मरने

के बाद कुछ किया ही नहीं तो ऐसी तमाम नियाज़ें, फ़ातिहायें और दसवें, चालीसवें दुनियादारी है दीनदारी नहीं और उनमें कोई सवाब नहीं है। और शेख़ी ख़ोरी और तारीफ़ पसन्दी के लिए यह काम करने वाले बड़ी भूल में हैं। और बग़ैर खाने के सिर्फ़ कुआ्रन पढ़ कर या थोड़े बहुत तौफ़ीक़ के मुताबिक़ खाने खिलाने के साथ जो नियाज़ व फ़ातिहा ख़ुलूसे दिल से की जाए वह उन बड़ी-बड़ी देगों से अफ़ज़ल है जो रियाकारी और दिखावे के लिए हों। और जो लोग नमाज़ न पढ़ते हों, ज़कात न निकालते हों और दूसरे फ़राइज़ व अह्कामे शरअ़ को छोड़ कर जुए, शराब, गानों, तमाशों के आ़दी हैं; माँ बाप के नाफ़रमान, अल्लाह के हक़ और बन्दों के हक़ में गिरफ़्तार हैं, उन लोगों की नियाज़ें, फ़ातिहायें रियाकारी और दिखावा ही मालूम होती हैं।

और मौजूदा नियाज़ व फ़ातहा की मख़सूस सूरतों से भी बेहतर सवाब पहुंचाने के कुछ और तरीक़े भी हैं आला हज़रत से पूछा गया कि फ़ातेहा में जो खाना मिसकीन को खिलाया या तक़सीम किया जाता है उसके बजाये अगर दीनी तालिबे इल्म की मदद कर दी जाये तो कैसा है क्या सवाब में कमी होगी? जवाब मे लिखा

यह उसका नेमल बदल(अच्छा बदला) है और सवाब मे कमी क्या माअ़ना बल्कि सत्तर गुना ज़्यादा सवाब मिलने की उम्मीद है (फ़तावा रिज़विया ज़िल्द 10 सफ़हा 305 मतबुआ़ बरकाते रज़ा पोर बन्दर)

फिर आला हज़रत ने अपने इस क़ौल को कुरआन की आयतों और हदीसो से साबित किया है भाईयो इसमे कोई शक नही कि नियाज़ व फ़ातेहा उर्स व लंगर अच्छे जाइज़ और सवाब के काम हैं लेकिन इसमे भी कोई शक नहीं कि मस्जिदो को आबाद रखने के लियें जो ख़र्चा किया जाये वह सबसे उम्दा सदक़ा और सबसे बड़े सवाब

का काम है और जिनके दम से मस्जिदें आबाद हैं उन इमामों और मोअ़ज़्ज़िनो और दीनी मदरसो के तलबा को खुशहाल रखना इस्लाम में सबसे ज़रूरी काम है जहां मस्जिद न हो वहां मस्जिद बनवा देना खालिस इस्लाम है और इसमे भी अपने लिये या अपने मुर्दों के लियें सवाब की नियत कर ली जाये तो यह बेहतरीन फ़ातेहा है।

तो बात यह है कि नियाज़ व फ़ातिहा वग़ैरह कामों को जिन लोगों ने हराम व गुनाह समझ रखा है वह लोग यक़ीनन बदनसीब और क़िस्मत से महरूम हैं और जिन लोगों ने फ़र्ज़ व वाजिब, शरअ़न लाज़िम व ज़रूरी समझ रखा है या इन्हीं कामों को इस्लाम ख़्याल कर रखा है वह लोग भी ग़लती पर हैं, रास्ता बीच में है।

भाईयो ! वहाबी नियाज़ व फ़ातिहा न करने वाले को नहीं कहते, वहाबी उसे कहते हैं जो नियाज़ व फ़ातिहा से मना करे, उससे रोके और उसको बुरा जाने और अल्लाह तआ़ाला के महबूब बन्दों की शान में गुस्ताख़ियाँ करे और उनका ज़िक्र उसे नागवार हो।

मशहूर आलिमे दीन अल्लामा सईद अहमद काज़िमी फ़रमाते हैं :

"देवबन्दी हज़रात और अहलेसुन्नत के दरमियान बुनियादी इख़्तिलाफ़ात का मोजिब (कारण) उलमाए देवबन्द की सिर्फ़ वह इबारात हैं जिनमें अल्लाह तआ़ला और नबीए करीम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की शाने अक़दस में खुली तौहीन है।" (अलहक़्क़ुल मुबीन, मुसन्निफ़ा अल्लामा सईद काज़िमी, सफ़हा 12)

यानी उनकी उन कुफ़्री इबारतों की वजह से उन्हें इस्लाम से ख़ारिज कहा गया है सिर्फ़ नियाज़ व फ़ातिहा, मीलाद व क़ियाम, उर्स और बरसी न करने की वजह से उन्हें काफ़िर नहीं कहा जाता बल्कि शाने रिसालत में खुली गुस्ताख़ियाँ करने की बिना पर वह इस फ़तवे की

ज़द में आते हैं। जहाँ तक नियाज़ व फ़ातिहा, उर्स व बरसी वग़ैरह का मामला है तो हक़ यह है कि उन्हें न करने वाला हरगिज़ वहाबी नहीं हाँ जो उन्हें बुरा कहे, ग़लत बताए, उनसे रोके, मना करे वह वाक़िई बदनसीब है सिर्फ़ इतने पर भी काफ़िर नहीं कहा जा सकता जब तक कि शाने रिसालत में गुस्ताख़ी न करता हो या गुस्ताख़ों की गुस्ताख़ी जान कर उनसे मुत्तफ़िक़ हो।

आलाहज़रत रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु से फ़तवा पूछा गया कि एक शख़्स नियाज़ व फ़ातिहा, मज़ारात पर हाज़िरी और मीलाद शरीफ़ को जाइज़ कहता है लेकिन औलिया अल्लाह से मुरादें मांगने से मना करता है वह वहाबी हुआ या नहीं तो फ़रमाया कि अगर वह कोई और बात वहाबियों की नहीं रखता और वहाबियों को काफ़िर जानता है तो सिर्फ़ इतना कहने से वहाबी नहीं हो सकता।

(फ़तावा रज़विया, जिल्द 29,सफ़हा 543, मतबूआ रज़ा फाउन्डेशन लाहौर)

इससे मालूम हुआ कि फ़ुरूई अ़क़ाइद व मसाइल में इख़्तिलाफ़ से आदमी वहाबी और बदमज़हब नहीं होता बल्कि वहाबी वही है जो अम्बियाए किराम और औलियाए इज़ाम की शान में खुली गुस्ताख़ियाँ करता हो या जानबूझ कर गुस्ताख़ों का शरीक हो।

और हुज़ूर मुफ़्तीए आज़मे हिन्द अ़लैहिर्रहमतु वर्रिद्वान इन नियाज़ों, फ़ातिहाओं वग़ैरहा के सिर्फ़ न करने वाले के मुतअ़ल्लिक़ फ़रमाते हैं :

"अगर वह यह सआ़दात बजा नहीं लाता और यह बरकात हासिल नहीं करता तो बदमज़हब नहीं, नासआ़दतमन्द बदनसीब ज़रूर है।" (फ़तावा मुस्तफ़विया, सफ़हा 487, मतबूआ रज़ा एकेडमी बम्बई) अलबत्ता इतना ज़रूर है कि इन कामों से मना करना और कभी भी उन्हें न करना इन बलाद (शहरों) में वहाबियों की पहचान है लिहाज़ा इन्हें सिर्फ़ जाइज़ व मुस्तहब समझ कर करते रहना चाहिए, फ़र्ज़ व वाजिब समझ कर नहीं।

बहर हाल आज अहलेसुन्नत कहलाने वालों में एक बड़ी तादाद उन लोगों की है जो क़सदन नमाज़ों को छोड़ते, रोज़े और ज़कात से सरोकार नहीं रखते, जुए शराब और हरामकारियों के आ़दी हैं लेकिन नियाज़ व फ़ातिहा, उर्स और दरगाहों की हाज़िरी क़ज़ा नहीं होने देते गोया कि अ़मली और ज़ाहिरी एतबार से उनका मुआशरा व माहौल ऐसा बन गया है कि जिस को देख कर लगता है कि उन्होंने अल्लाह तआ़ला के भेजे हुए दीन को छोड़ कर कोई और मज़हब इख़्तियार कर लिया है कि इस्लाम में जिन कामों को लाज़िम व ज़रूरी क़रार दिया गया था। उन्हें तो सिरे से छोड़ बैठे और उन कामों के पाबन्द हो गए जिन की हैसियत इस्लाम में सिर्फ़ एक जाइज़ रस्म की थी आज कितने लोग हैं जो फ़रीज़ए ज़कात को भूले हुए हैं और खिचड़े, फ़ीरीनी, पुलाव, बिरयानी की देगें बुज़ुर्गों के नाम पर पकाते खाते और खिलाते हैं। और आज के दौर में यह भी नहीं कहा जा सकता कि अवाम नियाज़ व फ़ातिहा की उन रुसूम को फ़र्ज़ व वाजिब समझ कर नहीं करते बल्कि सही बात यह है कि आज हमारी जमाअ़त अहलेसुन्नत के काफ़ी लोगों के तरीक़ए कार से ज़ाहिर होता है कि वह इन बातों को फ़र्ज़ व वाजिब और शरअ़न ज़रूरी समझने लगे हैं।

ख़ुलासा यह कि इस वक़्त अरबाबे इल्म व फ़ज़्ल के लिए ज़रूरी है कि वह यह ज़ाहिर कर दें और बिला झिझक बेख़ौफ़ व ख़तर यह एलान करें कि नियाज़ व फ़ातिहा, उर्स वग़ैरह काम हमारे मज़हब में सिर्फ़ जाइज़ और अच्छे काम हैं, फ़र्ज़ व वाजिब नहीं हैं उनका न करने वाला भी अगर हज़राते अम्बिया, औलिया, अ़ला सय्यिदहिम की बारगाहों में गुस्ताख़ व बेअदब न हो और न क़सदन उनकी जमाअ़त में शामिल हो तो वह भी यक़ीनन सुन्नी मुसलमान है यह बात बताते रहने और उसका एलान करने से आप देखेंगे इन्शाअल्लाह तआ़ला मज़हबे अहलेसुन्नत को तक़वियत हासिल होगी और एक

बहुत बड़ा तबक़ा जो अवामी मुआशरे और माहौल की पैरवी को देख कर बदगुमान है वह क़रीब आएगा। और यह कोई नई बात नहीं बल्कि उलमाए अहलेसुन्नत की तक़रीरों और तहरीरों से और फ़तवों से पहले ही से ज़ाहिर है लेकिन बहुत अवाम की इस तक रसाई नहीं।

हो सकता है कोई साहब यह सोंचें कि इन कामों पर खूब ज़ोर देनें या पाबन्दी करने और कराने फ़र्ज़ व वाजिब की तरह कर देने से अहलेसुन्नत के मज़हब को ताक़त मिलेगी तो यह भी एक भूल है क्योकि यह सब जानते हैं कि यह काम जिस ख़ास शक्ल व सूरत में आज किये जाते है इन सूरतो में हुजूर सल्लल्लाहो अलैह वसल्लम और आपके सहाबा व ताबेईन के ज़माने में नही थे बात सिर्फ़ इतनी है कि जब यह शुरू हुए तो उलमा ने इस लिये मना नही किया कि काम अच्छे हैं अगरचे नये हैं आखिर खाना पीना या खिलाना पिलाना ही तो है या कुरआन की तिलावत और अल्लाह व रसूल का ज़िक्र ही तो है फिर नाजाईज़ कैसे कह दिया जाये लेकिन ज़्यादा ज़ोर देकर और फ़र्ज़ व वाजिब शरअ़न ज़रूरी क़रार देकर उन लोगों को मुतमईन नही किया जा सकता जो खूब जानते है किय यह सब काम ज़माना-ए-रिसालत व सहाबा के बाद शुरू हुए हैं और इस तरह मज़हबे अहलेसुन्नत को ताक़त मिलने के बजाये नुक़सान ही होगा और हो भी रहा है यहां यह जानना भी ज़रूरी है कि इन बातों को जो अवाम ने फ़र्ज़ व वाजिब की तरह शरअ़न ज़रूरी समझ लिया इसमें उन मुक़र्रीन व वाईज़ीन की भी चूक रही कि जिन्होने इन चीज़ो के सबूत तो दिये और जाईज़ बताया और बदमज़हबों इनकार करने वालो के रद् किये लेकिन इस नियाज़ व फ़ातेहा मिलाद शरीफ़ की शरई हैसियत को खुलकर ब्यान नही किया और यह नही बताया कि यह बातें मज़हबे अहलेसुन्नत में सिर्फ़ जाईज़ मुस्तहब हैं फ़र्ज व वाजिब नहीं

(4) किसी मुसलमान को वहाबी देवबन्दी कहने में जल्दी

नहीं करना चाहिए, जब तक कि उसके अक़ाइद का ख़ूब पता न चल जाए और पता हो जाने पर भी मुनासिब है कि उलमाए अहलेसुन्नत से फ़तवा हासिल किया जाए। क्यूँकि वहाबी और देवबन्दी कहना ऐसा ही है जैसे किसी को ग़ैर मुस्लिम कहना और ग़ैर मुस्लिम और काफ़िर होने के फ़तवे में बड़ी एहतियात दरकार है उसमें कभी-कभी ख़ुद अपने लिए भी ख़तरा है और अवाम पर कोई फ़तवा लगाने में जल्दबाज़ी नहीं करना चाहिए। क्यूँकि दूसरे फ़िरक़ों में ऐसे काफ़ी लोग शामिल हैं जो अभी बदमज़हब नहीं हुए हैं उनसे मुतास्सिर (प्रभावित) हैं और हक़ीक़त से नाआशना हैं।

इमामे अहलेसुन्नत आलाहज़रत फ़रमाते हैं :

"देखो नरमी के जो फ़ाएदे हैं वह सख़्ती में हरगिज़ हासिल नहीं हो सकते। अगर उस शख़्स से सख़्ती बरती जाती तो हरगिज़ यह बात नहीं होती जिनके अक़ाइद मुज़बज़ब (डांवा डोल) हों उनसे नरमी बरती जाए कि वह ठीक हो जायें, यह जो वहाबियों में बड़े-बड़े हैं उनसे भी इब्तिदाअन (शुरू में) नरमी की गई थी।"

(अलमलफ़ूज़ हिस्सा अव्वल, सफ़्हा 41)

इसके अलावा मैंने ख़ुद मोतबर (एतबार के क़ाबिल) लोगों से सुना है कि ताजदारे अहलेसुन्नत हुज़ूर मुफ़्तीए आज़मे हिन्द मौलाना मुस्तफ़ा रज़ा ख़ाँ बरेलवी फ़रमाते थे :

"वहाबी कम हैं वहाबियत के फ़रेबख़ुर्दा (धोखा खाए हुए) ज़्यादा हैं।"

इसके रावी मुहद्दिसे बरेलवी हज़रत *मौलाना तहसीन रज़ा ख़ाँ* साहब हैं।

और मशहूर आलिमे दीन अल्लामा सईद अहमद काज़िमी इरशाद फ़रमाते हैं :

"हमारे नज़दीक सिर्फ़ वही काफ़िर हैं जिन्होंने मआज़ल्लाह अल्लाह तआला और उसके रसूल और महबूबाने एज़दी (अल्लाह तआला के महबूब बन्दों) की

शान में गुस्ताख़ियाँ कीं और बावजूदे तम्बीहे शदीद के (काफ़ी समझाने के बावजूद) अपनी गुस्ताख़ियों से तौबा न की। नीज़ वह लोग जो उनकी गुस्ताख़ियों पर मुत्तलअ होकर और उनके सरीह मफ़हूम (साफ़ मतलब) को जान कर उन गुस्ताख़ियों को हक़ समझते हैं और गुस्ताख़ों को मोमिन, अहले हक़, अपना मुक़तदा और पेशवा मानते हैं और बस उनके अलावा हमने किसी मुद्दईए इस्लाम (इस्लाम का दावा करने वाले) की तकफ़ीर नहीं की है (यानी काफ़िर नहीं कहा है)। ऐसे लोग जिनकी हम ने तकफ़ीर की है अगर उनको टटोला जाए तो वह बहुत क़लील (कम) हैं और महदूद, उनके अलावा न कोई देवबन्द का रहने वाला काफ़िर है न बरेली का न लीगी न नदवी हम सब मुसलमानों को मुसलमान समझते हैं।"

(अलहक़्क़ुल मुबीन, मुसन्निफ़ा अल्लामा सईद काज़िमी, सफ़हा 25)

इस बारे में निहायत उम्दा बात वह है जो सूफ़ीए ज़मां हज़रत शैख़ मुसलेहुद्दीन शीराज़ी ने फ़रमाई :

"नरमी और सख़्ती दोनों चीज़ें मौक़े मौक़े से अच्छी होती हैं जैसे कि जर्राह यानी आपरेशन करने वाला ज़ख़्म भी लगाता है और मरहम पट्टी भी करता है।"

(5) मदरसों और तन्ज़ीमों, कमेटियों, मकतबों वग़ैरहा के नाम सिर्फ़ बुज़ुर्गों और सिलसिलों के नाम से मनसूब न किये जायें बल्कि उसके साथ "इस्लाम" का नाम ज़रूर लाया जाए मसलन मदरसों का नाम सिर्फ़ क़ादिरिया, चिश्तिया, नक़्शबन्दिया, बरकातिया, अशरफ़िया, रज़विया, नूरिया रखने के बजाए मदरसा इस्लामिया क़ादिरिया, इस्लामिया चिश्तिया, इस्लामिया नक़्शबन्दिया, इस्लामिया बरकातिया, इस्लामिया अशरफ़िया, इस्लामिया रज़विया, इस्लामिया नूरिया रखे जायें तो ज़्यादा बेहतर है।

आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत मौलाना शाह अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अ़लैहिर्रहमतु वर्रिदवान ने अब से कुछ ऊपर सौ साल पहले बरेली शरीफ़ में जो मदरसा क़ाइम

फ़रमाया उसका नाम "मन्ज़रे इस्लाम" रक्खा और उनके शाहज़ादे ताजदारे अहलेसुन्नत मुफ़्तीए आज़मे हिन्द मौलाना शाह मुस्तफ़ा रज़ा ख़ाँ अलैहिर्रहमतु वर्रिद़वान ने जो मदरसा क़ाइम फ़रमाया उसका नाम "मज़हरे इस्लाम" रक्खा गया हालांकि इन बुज़ुर्गों की मशाइख़ व अकाबिर से महब्बत व अक़ीदत और उसमें इन का तसल्लुब (सख़्ती) मशहूर व मारूफ़ और बेमिस्ल व बेमिसाल है।

आज कल अहलेसुन्नत वलजमाअत को एक अलग गिरोह और बरेलवी फ़िरक़े के नाम से नामज़द करने की कोशिश की जा रही है और हमें बजाए मुसलमान और सुन्नी के बरेलवी क़रार देकर छांटने का मनूसबा चल रहा है और हम हैं कि ख़ुद ही अपने ऊपर से मुसलमान और सुन्नी का लक़ब हटाने में लगे हैं और ख़ुद को बरेलवी कहते हैं हालांकि अहलेसुन्नत ही मुसलमान हैं और यक़ीनन आलाहज़रत मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ अलैहिर्रहमतु वर्रिद़वान की तालीमात ऐने इस्लाम हैं। लिहाज़ा हमें चाहिए कि ख़ुद को मुसलमान ही कहें और जहाँ ज़रूरत हो वहाँ सुन्नी कहें। ख़ुद को बरेलवी कहना हमारा काम नहीं बदमज़हब लोग हमें बरेलवी कहते हैं और जब हमारा मज़हब इस्लाम है और हमारे नज़रियात और अक़ाइद व ख़्यालात इस्लामी हैं तो इस्लाम के नाम से हमारी तन्ज़ीमों और इदारों, मकतबों का तआरुफ़ होना चाहिए। जलसों और जुलूसों वग़ैरह में नारें लगाने में भी इस बात का ख़्याल रखा जाए कि सीधे-सीधे एक दम "मसलके आलाहज़रत ज़िन्दाबाद" कहने के बजाए पहले "इस्लाम ज़िन्दाबाद", "अहलेसुन्नत ज़िन्दाबाद" उसके बाद जहाँ ज़रूरत व मसलेहत समझें तो "मसलके आलाहज़रत या तालीमाते आलाहज़रत ज़िन्दाबाद" का नारा लगायें।

ख़ुलासा यह कि इस्लाम में जहाँ हक़ को नाहक़ कहना बदमज़हबों, बातिल परस्तों की तरदीद और उन से नफ़रत और उनका बाइकाट ज़रूरी है वहीं लोगों को अपनाना, उन्हें अपने से क़रीब करके अपने अक़ाइद व

नज़रियात से मुतास्सिर करना और मौक़े की मुनासिबत से नरमी इख़्तियार करके समझा बुझा कर मज़हबे हक़ की तरफ़ खींचना भी ज़रूरी है। छोटी-छोटी बातों पर या किसी मुस्तहब काम, बिदअ़ते हसना के न करने पर वहाबी कह देना बड़ी भूल और नादानी है जिसका ख़िमयाज़ा कुछ तो हम भुगत रहे हैं बाक़ी आगे देखिये क्या होता है। और इन सब बातों का तअ़ल्लुक़ हालात मौक़ा व महल और नियत से है और अल्लाह जानता है किस की नियत में इस्लाह है और किस की नियत में खोंट।

हिन्दुस्तान के बाज़ इलाक़ों और दूसरे मुल्कों में अभी ऐसे लोगों की बड़ी तादाद है जो सुन्नियत और वहाबियत के इस फ़र्क़ से वाक़िफ़ ही नहीं हैं, उन तक यह इख़्तिलाफ़ पहुँचा ही नहीं। और वह लोग पहले से चली आ रही बुज़ुर्गों की राह व रविश पर क़ाइम हैं उन्हें सुन्नी मुसलमान ही समझा जाएगा।

(6) जो वाक़िअ़तन वहाबी मज़हब इख़्तियार कर चुके हैं और क़सदन शैख़ मुहम्मद इब्ने अ़ब्दुलवहाब नजदी या मौलवी इस्माईल देहलवी, मौलवी रशीद अहमद गंगोही, मौलवी क़ासिम नानौतवी, मौलवी ख़लील अहमद अम्बेठवी, मौलवी अशरफ़ अली थानवी वग़ैरह के पैरोकार बने हुए हैं, और उन लोगों की कुफ़्रिया इबारतें जो उनकी किताबों में मुद्दत से लिखी हुई हैं और छप भी रही हैं, उन सब के मफ़हूम को जानते हुए उन्हें अपना पेशवा और मुक़तदा मानते हैं ऐसे लोगों से मेलजोल, दुआ, सलाम, बियाह, शादी वग़ैरह सब मामलात बन्द कर दिये जायें, इसी में ख़ैरियत है।

(7) अवाम सुन्नी मुसलमानों में जो ख़िलाफ़े शरअ़ बातें हैं, वह वहाबियों के बताने से पहले आप ख़ुद बता दीजिये। मिसाल के तौर पर ताज़ियेदारी, मज़ामीर के साथ क़व्वाली, ख़्वाब की बिशारतों पर नक़ली मज़ार बनाना, मज़ारात पर सज्दे करना, बिला ज़रूरत चादरें चढ़ाना, ऐसे और बहुत से ख़िलाफ़े शरअ़ काम जो सुन्नी उलमा के

फ़तवों के ख़िलाफ़ हैं उन्हें बजाए वहाबियों के बताने के आप बताइये। लोग मानें या न मानें, अगर मान जायें तो अच्छी बात है, अगर न मानें तो कम से कम इतना फ़ायदा ज़रूर है कि हमारे मज़हब का ग़लत तआरुफ़ (परिचय) नहीं होगा।

मुख़ालिफ़े शरअ़ पीर, मक्कार सूफ़ी और फ़क़ीर

गुज़रे हुए पेजों में आप पढ़ चुके कि वहाबियत अल्लाह तआ़ला का नाम लेकर उसके महबूब बन्दों हज़राते अम्बिया व औलिया व अइम्मा की महब्बत व अ़क़ीदत दिल से निकालने और उनसे दूर करके उनकी नफ़रत दिल में बिठाने, उनकी बारगाहों में बेअदब और गुस्ताख़ बनाने का नाम है और यक़ीनन यह लोग बीच के रास्ते से हटे हुए और इस्लामी हद से आगे बढ़े हुए हैं और दूसरी तरफ़ वह लोग हमारे सामने हैं जो पीरों, वलियों और सूफ़ियों, फ़क़ीरों का भेस बना कर अल्लाह वालों के नाम को बदनाम करने में लगे हैं और पीरी मुरीदी के नाम पर क़ौम को सख़्त धोके में डाले हुए हैं और उनके मुरीद इन पीरों से अ़क़ीदत व महब्बत में इस क़दर ग़ुलू किये हुए हैं और हद से आगे बढ़े हुए हैं कि उनकी ख़िलाफ़े शरअ़ बातें, क़ुर्आन व हदीस के मुख़ालिफ़ आदतें, अल्लाह तआ़ला को नाराज़ करने वाली ख़सलतें देखते हैं मगर फिर भी उनकी हाँ में हाँ मिलाते, उन्हें अपना पेशवा ख़्याल करते और इस्लाम मुख़ालिफ़ हरकतों को तरीक़त कहते और मज़हबी पाबन्दियों, अल्लाह तआ़ला

और उसके रसूले मक़बूल सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की इताअत व फ़रमांबरदारी को शरीअत बता कर उस से मुँह फेरते हैं। गोया कि यह लोग पीरों, वलियों का नाम लेकर ख़ुदाए तआला और उसके बताए हुए रास्ते से लोगों को दूर करने में लगे हैं उनमें के बहुत से तो ऐसे अन्धे, गूंगे और बहरे हो गए हैं कि वह सिवाए अपने नाम निहाद पीर के और किसी की कोई बात सुनना ही नहीं चाहते। उनमें से बहुत से ऐसे पीरों के मोतक़िद होते हैं कि उनकी जवान बहू, बेटियाँ उनके सामने उनके पीरों के हाथ पैर दबाती, उनकी हर क़िस्म की ख़िदमतें करती हैं और उनका दिल लुभाती हैं मगर उन बेग़ैरत मुरीदों को ग़ैरत नहीं आती।

भाईयो! जिस कलमए तय्यिबा को पढ़ कर तुम मुसलमान हुए हो, उसमें सिर्फ़ अल्लाह तआला और उसके रसूल का नाम है तीसरा कोई नाम नहीं। लिहाज़ा बाक़ी जिसको भी हमने माना है उसको अल्लाह तआला और उसके रसूल की वजह से माना है यानी जो ख़ुदा और रसूल की पैरवी करे वह हमारा है और उसमें जितना आगे बढ़ जाए वह उतना ही हमारे नज़दीक मुअज़्ज़म व मुहतरम है और जो ख़ुदा व रसूल की पैरवी न करे उनकी मुख़ालिफ़त करे वह हमारा कोई नहीं है। जो लोग अल्लाह तआला और उसके रसूल के बताए हुए रास्ते की मुतलक़न मुख़ालिफ़त करने वालों को क़सदन पीर व मुरशिद बनाए हुए हैं उन्हें चाहिए कि वह कलमा "ला इला–ह इल्लल्लाहु मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह" के बजाए कोई और कलमा पढ़ लें। क्यूँकि इस कलमे में तो सिर्फ़ अल्लाह का नाम है और उसके रसूल का, तीसरे

किसी का नाम नहीं है। लिहाज़ा जिस तरह इस्लाम में अल्लाह तआला के अलावा किसी दूसरे की इबादत, पूजा और परस्तिश करना शिर्क और कुफ़्र है, ऐसे ही उसके रसूल हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम की शरीअत का इन्कार करना और बताई हुई बातों के मुक़ाबिल किसी और की बातों को पेश करना भी काफ़िर का काम है। लिहाज़ा जिन लोगों को अल्लाह व रसूल के फ़रमान और क़ुर्आन व हदीस से साफ़ और सरीह तौर पर साबित अहकाम व मसाइल बताए जायें और वह उनका इन्कार करें और कहें कि हम तो अपने पीर ही की मानेंगे, हमें क़ुर्आन व हदीस से कोई मतलब नहीं, हमारा पीर जो कहेगा हम वह करेंगे तो यह लोग इस्लाम के रास्ते पर नहीं हैं और यह जिसको पीर कह रहे हैं उस को नबी और रसूल मान रहे हैं क्यूँकि यह मरतबा सिर्फ़ रसूल का ही है कि उसके मुक़ाबिल किसी की बात तस्लीम नहीं की जाती और उसकी हर बात अल्लाह का फ़रमान है। और जो वाक़िई सच्चे पीर और अल्लाह के वली होते हैं वह ख़ुदा व रसूल के हुक्म की ख़िलाफ़वर्ज़ी न ख़ुद करते हैं और न दूसरों को करने देते हैं, हाँ यह हो सकता है कि उनकी कोई बात या उसकी हिकमत किसी आम आदमी की समझ में न आए।

एक ज़रूरी नोट

यह किताब उर्दू ज़बान में छप चुकी है। उर्दू जानने वाले उर्दू वाला नुस्ख़ा हासिल करके पढ़ें। दीनी इस्लामी किताबें पढ़ने का जो मज़ा उर्दू में है वह हिन्दी में नहीं।

मुख़ालिफ़े शरअ़ जाहिल पीरों और उनके मुरीदों की कुछ ग़ैर इस्लामी हरकतें

(1) पीरों की तस्वीरें उनके फ़ोटो घरों में रखना, उन्हें चूमना, सजाना, सज्दे करना : हालाँकि यह बुतपरस्ती से मुशाबहत और काफ़िरों का तरीक़ा है। हदीसे पाक में है रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया :

"क़ियामत क़ाइम न होगी यहाँ तक कि मेरी उम्मत के कुछ क़बीले मुशरिकीन से मिल जायेंगे और यहाँ तक कि मेरी उम्मत के कुछ क़बीले बुतपरस्ती करेंगे।"

(मिश्कात, किताबुल फ़ितन, सफ़हा 465)

इस हदीस की शरह फ़रमाते हुए मौलाना मुफ़्ती अहमद यार ख़ाँ साहब नईमी फ़रमाते हैं :

"हमने देखा कि बाज़ लोग अपने पीरों के फ़ोटुओं को सज्दा करते हैं, उन्हें चूमते, उन्हें सजा कर रखते हैं यह उस हदीस का ज़हूर है बाज़ कलमागो ताज़ियों को सज्दा करते हैं, क़ब्रों को तो बहुत लोग सज्दा करते हैं, बाज़ ज़िन्दा पीरों को सज्दे करते हैं, यह है बुतपरस्ती नऊज़ुबिल्लाह।" (मिरअतुल मनाजीह, जिल्द 7, सफ़हा 219)

यानी यह बुतपरस्ती से मेल खाने वाली बातें और बुतपरस्तों के तरीक़े हैं।

आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत मौलाना शाह अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी फ़रमाते हैं :

"दुनिया में बुतपरस्ती की इब्तिदा यूँही हुई कि अच्छे और नेक लोगों की तस्वीरें बना कर घरों और मस्जिदों में तबर्रुकन रख लीं धीरे-धीरे वहीं मअ़बूद (खुदा) हो गई।" (फ़तावा रज़विया, जिल्द 24, सफ़हा 573, मतबूआ पोरबन्दर)

और यही आला हज़रत लिखते हैं

बल्कि मोअ़ज़्ज़मे दीनी (बड़ी इस्लामी शख़्सियत की तस्वीर होना न उज़्र हो सकता है न इस बड़े गुनाह से बचा सकता है बल्कि मोअ़ज़्ज़मे दीनी की तस्वीर मे और ज़्यादा गुनाह है कि उसकी ताज़ीम की जायेगी और ज़ी रूह (आत्मा) की तस्वीर की ताज़ीम ख़ालिस बुत परस्ती की सूरत है और मज़हबे इस्लाम की खुली मुख़ालफ़त है (फ़तावा रज़विया जिल्द 24 सफ़हा 577)

आला हज़रत के इस क़ौल से खूब साफ़ हो गया कि दूसरों के मुक़ाबले में बुर्ज़ुगों और अल्लाह वालों की तस्वीरे रखने उनकी ताज़ीम करने उन्हे चूमने में और ज़्यादा अज़ाब है और बुज़ूर्गों की तस्वीरों की ताज़ीम बुत परस्ती की एक शक्ल है

एक हदीस मे है रसूले पाक सल्लल्लाहो अलैहिवसल्लम के सामने आपके विसाल से पहले बीमारी के दिनों में हबशा के एक गिरजाघर मे बनी हुई तस्वीरों का ज़िक्र किया गया आपने सर उठा कर इरशाद फ़रमायाः

यह वह लोग है कि जब इनमें कोई नेक आदमी मर जाता तो उसकी क़ब्र पर मस्जिद बना लेते और उसमे इन तस्वीरों को सजा देते यह ऐसा करने वाले मखलूक में सबसे ज़्यादा बुरे लोग हैं। (सहीह बुखारी जिल्द 1

सफ़हा 179 और सहीह मुस्लिम जिल्द 1 सफ़हा 201)

बुख़री की एक हदीस आला हज़रत नक़्ल करते हुए लिखते हैं

खाना-ए-काबा में हज़रत सय्यदना इब्राहीम ख़लीलुल्ला अलैहिस्सलाम हज़रत इस्माईल ज़बीहउल्लाह और हज़रत मरयम की तस्वीरें बनी हुई थीं जब मक्का फ़तेह हुआ तो हुज़ूर सल्लल्लाहो अलैहिवसल्लम ने हज़रत उमर को भेजकर उन्हे मिटवा दिया फ़िर खुद तशरीफ़ लाये कुछ निशान बाक़ी रह गये थे पानी मंगवाकर उन्हे खुद अपने हाथ से धोया और फ़रमाया अल्लाह हिलाक करे उनको जिन्होने यह तस्वीरें बनाई हैं (फ़तावा रिज़विया जिल्द 24 सफ़हा 577)

इसके अलावा हदीसे पाक में है कि वुद, सुवाअ़, यग़ूस, यऊक़, नस्र नूह अ़लैहिस्सलाम की क़ौम के नेक लोग थे जब वह वफ़ात पा गए तो शैतान ने उनकी क़ौम के दिल में यह बात डाली कि जिन मक़ामात पर वह अल्लाह वाले बैठा करते थे वहाँ उनके मुजस्समें बना कर रख दो और उन बुतों के नाम उन नेक लोगों के नाम पर रख दो। लोगों ने अ़क़ीदत की बुनियाद पर ऐसा कर दिया लेकिन उनको वह पूजते नहीं थे। जब लोग दुनिया से चले गए और इल्म भी कम हो गया तो उनकी पूजा होने लगी।

(सहीह बुख़ारी, किताबुत्तफ़सीर, जिल्द 2, सफ़हा 732)

ख़ुलासा यह कि मुसलमान होकर बुज़ुर्गों की तस्वीरों और फ़ोटुओं को घरों में रखना, सजाना, उन्हें चूमना, उनके सामने सज्दे करना हैरत की बात है और

यह अमल वह है जो मन्दिरों और गुरूद्वारों में होता है और यह जाहिल पीर और उनके मुरीद ऐसा करते या कराते हैं। यह सब आँखें खोलें,

(2) शरीअ़ते इस्लामिया और उसके अह्काम की मुख़ालिफ़त करना

यह बीमारी आजकल के नाम निहाद सूफ़ियों, मक्कार पीरों में आ़म हो गई है। कोई कहता है कि शरीअ़त तो रास्ता है, जो मन्ज़िल तक पहुँच गया उसे इसकी क्या ज़रूरत। कोई कहता है कि नमाज़, रोज़ा वग़ैरह अहकामे शरअ़ यह सब मौलवियों का काम है, हम तो फ़क़ीरी लाइन के हैं फ़क़ीरों के लिए सब माफ़ है। कोई बकता है कि हमने अपने पीर को देख लिया यही हमारी नमाज़ है। कोई कहता है कि फ़क़ीर तो हर वक़्त इबादत में रहता है उसको इस ज़ाहिरी नमाज़ की क्या ज़रूरत। कोई कहता है कि हमारा पीर तो काबे में नमाज़ पढ़ कर आ जाता है उसको यहाँ पढ़ने की क्या ज़रूरत। एक पीर के चेहरे पर दाढ़ी नहीं थी तो उसके मुरीद कहते थे कि हमारे पीर की दाढ़ी बातिन में है यानी वह है लेकिन तुम लोगों को नज़र नहीं आती। कोई कहता है कि यह जो मौजूदा क़ुर्आन यानी तीसों पारे मौलवियों के पास हैं उसके अलावा दस पारे और हैं वह फ़क़ीरों के पास हैं और मौलवियों को उनकी हवा तक नहीं लगी।

यह इस क़िस्म की बकवासें करने वाले खुले आ़म शरीअ़ते इस्लामिया का मज़ाक़ उड़ाने वाले पीर हों या उनके मुरीद यह मुसलमान नहीं हैं। हर दौर में सारे औलिया किराम ने उनका रद किया है और उनसे दूर

रहने का हुक्म दिया है। इस बारे में मैंने मुस्तक़िल एक किताब लिखी है जिसका नाम है : "तसव्वुफ़ क़ुर्आन व हदीस की रौशनी में"। जिसे तफ़सील दरकार हो और बुज़ुर्गाने दीन के अक़्वाल इस मुख़ालिफ़े शरअ़ फ़िरक़े की तरदीद में देखना हों वह उसको हासिल करके मुतालआ़ करे। इसके अलावा मेरी तसनीफ़ "ग़लतफ़हमियाँ और उनकी इस्लाह" छप चुकी हैं उसमें भी उनकी काफ़ी हरकतों की निशानदेही कर दी है।

इन जाहिल पीरों में से कुछ लोग ग़ैर मुस्लिमों, मुशरिकों को बग़ैर मुसलमान बनाए मुरीद कर लेते हैं और उनको ख़ुश करने के लिए उन्हीं की सी बोलियाँ बोलते और लिखते हैं। अभी हाल ही में मेरी नज़र से एक किताब गुज़री जिसका नाम "वारिसे पाक क़ुर्आन के आईने में" है इसका मुसन्निफ़ कानपुर का रहने वाला कोई शख़्स मुसम्मा राक़िम है जो ख़ुद को वारिसी कहता है और इस किताब के सफ़्हा 38 पर लिखता है :

"अगर मुहब्बत है तो मस्जिद और मन्दिर में एक शान नज़र आएगी।"

सफ़्हा 206 पर लिखता है :

"मस्जिद, मन्दिर, गिरजा जहाँ जाए सिवा एक शान के कुछ नहीं देखे।"

सफ़्हा 168 पर लिखता हैं :

मज़हबे इश्क़ में कुफ़्र व इस्लाम से गरज़ नही

सफ़्हा 65 पर लिखता है :

हमको किसी के अमल (करतूतों) से कुछ भी मतबल नही हमको तो मतलब यार के लिबास से है

यानि चाहें कैसे अमल करो किसी की बहन बेटी से ज़िना करो शराब पियो डाका डालो क़त्ल करो बदफ़ेली (दुष्कर्म) करो या कराओ सब सही है इसको किसी के अमल से कोई मतलब नही

सफ़हा 197 पर लिखता है :

"मुवह्हिदीन शैतान और रहमान में फ़र्क़ नहीं करते और उश्शाक़ शैतान को बुरा नहीं कहते बल्कि वाक़िए इब्लीस ख़ास क़िस्म का सबक़ है।"

और इस शैतान ने इस क़िस्म की और बकवासें इस किताब में की हैं. और उन्हें एक मशहूर बुज़ुर्ग हाजी वारिस अली शाह साहब रहमतुल्लाहि अलैह की तरफ़ मनसूब किया है और उनके अक़वाल बताया है हालांकि यह उस इब्लीस का खुला झूट है और हज़रत हाजी साहब क़िब्ला पर बोहताने अज़ीम है, उन्होंने न ऐसा कभी कहा न लिखा।

मैंने इस मुसन्निफ़ को शैतान और इब्लीस इसलिए कहा है कि इसके मज़हब में शैतान कोई बुरी शख़्सियत नहीं है बल्कि जब उसकी नज़र में शैतान और रहमान मआज़ल्लाह एक ही हैं तो मुसलमानों में अब्दुर्रहमान

एक ज़रूरी नोट

क़ुर्आने करीम अल्लाह का कलाम है। वह अरबी ज़बान में नाज़िल हुआ उसको अरबी के अलावा किसी ज़बान में नहीं पढ़ना चाहिए। उसका तर्जमा (अनुवाद) किसी भी ज़बान में पढ़ सकते हैं लेकिन ख़ास क़ुर्आन को अरबी के अलावा किसी भी ज़बान में पढ़ना या लिखना या छापना बहुत बुरी बात है।

नाम रखे जाते हैं तो उसको अपने बच्चों का नाम अब्दुश्शैतान रखना चाहिए और बरकत हासिल करने के लिए अपने और अपने बच्चों और भाईयों और दीगर घर वालों के नाम में इब्लीस, अज़ाज़ील या शैतान का लफ़्ज़ ज़रूर लगा लेना चाहिए और अपनी लड़की, पोती या नवासी का नाम कनीज़ शैतान रखना चाहिए।

क़ुर्आने करीम भरा हुआ है शैतान की बुराई और उस पर लानत से मगर पता नहीं यह कैसा फ़क़ीर व सूफ़ी है कि क़ुर्आन जो कलामे इलाही है उसकी मुख़ालिफ़त पर जरी (निडर) हो गया। इस जाहिल को यह भी पता नहीं कि "बिस्मिल्लाह शरीफ़" से पहले "अऊज़ुबिल्लहि मिनश्शयता़निर्रजीम" पढ़ी जाती है जिसका मतलब है "मैं पनाह चाहता हूँ अल्लाह की तरफ़ शैतान से जो संगसार किया हुआ (धुत्कारा हुआ मरदूद) है।"

उस ईमान के अन्धे को मस्जिद, मन्दिर और गिरजा में फ़र्क़ नज़र नहीं आया। उससे पूछो कि जिस नबी का कलमा पढ़ता है उसने मदीने में आकर मस्जिद की तामीर फ़रमाई थी या मआज़ल्लाह मन्दिर की और गिरजा की? और ख़ानए कअ़बा से यह बुतों को क्यूँ गिराया था? और यह अहले मक्का से इख़्तिलाफ़ किस बात का था? यह सरकारे दो आ़लम और आपके जांनिसारों पर ज़ुल्म व ज़्यादती के पहाड़ क्यूँ तोड़े जाते थे और वह किस ग़लत काम को रोकने के लिए यह काफ़िरों की ईज़ायें और जफ़ायें सहते थे? और जब मस्जिद और मन्दिर में एक ही शान दिखाती है तो मन्दिर में पूजा करने जाता क्यूँ नहीं? और यह जाता हो तब भी कोई तअ़ज्जुब की

बात नहीं।

आजकल कुछ ख़ुद को वारिसी कहने वालों ने यह कहना शुरू कर दिया है कि भैंसे का गोश्त नहीं खाना चाहिए क्यूँकि एक भैंसा हाजी वारिस अली शाह साहब का मुरीद हो गया था। यह भी उन्हीं बातों में है कि जो मुशरिकों और ग़ैर मुस्लिमों को ख़ुश रखने के लिए कही जाती हैं। शायद उन्हें अभी यह मालूम नहीं है कि अब ग़ैर मुस्लिमों ने भी भैंसा खाना शुरू कर दिया है तो वह भी इन बातों से ख़ुश होने के बजाए कहीं नाराज़ न हो जायें और पता चला :

न ख़ुदा ही मिला न विसाले सनम
न इधर के रहे न उधर के रहे

और भैंसे को किसी बुज़ुर्ग का मुरीद बताना उस बुज़ुर्ग की शान बढ़ाना नहीं बल्कि घटाना है और इस वजह से दुनिया भर के भैंसों का गोश्त हराम व मना क़रार देना इस्लाम को छोड़ कर दूसरे नए मज़हब की बुनियाद डालना है। इन वारिसी पीरों में से कुछ को देखा है कि वह हिन्दुओं के बाबाओं और साधुओं की तरह पीले और गेरुए कपड़े पहनते हैं और हदीस में है जो जिस क़ौम की मुशाबिहत करे वह उन्हीं में से है।

ख़ुलासा यह कि शरीअ़ते इस्लामिया और उसके अहकाम की मुख़ालिफ़त करने वाले न क़ादिरी हैं, न चिश्ती, न नक़्शबन्दी हैं, न मुजद्दिदी, न मदारी हैं, न वारिसी, न बरकाती हैं, न अशरफ़ी और न रज़वी बल्कि उनका सिलसिला इब्लीसी है। बन्दा जब तक होश में है उस के लिए अहकामे शरअ़ माफ़ नहीं होते। और क़ुर्आन

व हदीस के फ़रमानों की मुख़ालिफ़त करने वालों और उसको अहले ज़ाहिर और मौलवियों का रास्ता बता कर ख़ुद को फ़क़ीर कह कर उनसे रोकने वालों से वह बदअमल फ़ासिक़ व फ़ाजिर लाखों दरजे बेहतर हैं जो शामते नफ़्स की वजह से अहकामे शरअ़ की बजाआवरी में कोताही कर जाते हैं क्यूँकि यह बेचारे अपनी ग़लती को तस्लीम करते हें और अल्लाह तआ़ला से डरते हैं और दीन की बातों को अच्छा समझते हैं, कोई टोके तो सर झुका कर उसकी सुन लेते हैं और उन से उम्मीद की जाती है ख़ुदाए तआ़ला उन्हें आमाले सालिहा (अच्छे कामों) की तौफ़ीक़ अता फ़रमाएगा।

मकनपुरी पीरों की ग़ैर इस्लामी बातें

अल्लाह वालों से बेजा महब्बत व अ़क़ीदत में जो लोग अल्लाह व रसूल, उनके अहकाम व फ़रमानों को भूल गए। उनमें हज़रत क़ुतबुल अक़्ताब सय्यिदना शैख़ बदीउ़द्दीन मदार मकनपुरी रहमतुल्लाहि तआ़ला अ़लैह के नाम लेवाओं और उनसे ख़ुद को मनसूब करने वालों में से कुछ लोग हैं यह लोग हज़रत शैख़ बदीउद्दीन मदार रहमतुल्लाहि तआ़ला अ़लैहि को "मदार साहब" कहते थे फिर "क़ुतुबल मदार" और फिर "मदारुल आ़लमीन" कहने लगे। हालांकि इस लफ़्ज़ के मफ़हूम पर ग़ौर किया जाए तो ईमान की नज़र रखने वालों के लिए अल्लाह तआ़ला के अलावा किसी और के लिए इस लफ़्ज़ का इस्तेमाल मुनासिब नहीं मालूम होता क्यूँकि मदारुल आ़लमीन का मफ़हूम यह है कि सारी काइनात और सारे जहानों का

दारोमदार और उनकी बक़ा और वुजूद उसकी ज़ात से क़ाइम हुआ और उसके वुजूद से हर चीज़ का वुजूद हो और यह शान सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला की ही है हाँ अगर हुज़ूर सय्यिदे आ़लम अह़मदे मुजतबा मुह़म्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के लिए अगर कोई शख़्स यह नियत करके कि सारी मख़लूक़ को आपके सदक़े और तुफ़ैल में अल्लाह तआ़ला ने पैदा फ़रमाया, बोले तो आपके लिए भी इस लफ़्ज़ के इस्तेमाल में कोई हरज नहीं होना चाहिए लेकिन हुज़ूर के अलावा मख़लूक़ में किसी और के लिए यह भी नहीं कहा जा सकता कि काइनात उसके सदक़े में मौजूद हुई है। लिहाज़ा 'मदारुल आ़लमीन' का का लफ़्ज़ बोलना किसी वली के लिए उसकी बेजा महब्बत व अ़क़ीदत में अल्लाह तआ़ला और उसके रसूल को भूल जाना है। मगर यह लोग ज़िद और हटधर्मी पर इतने अड़ गए हैं कि कितना ही समझाओ कैसे ही बताओ अपनी रविश पर क़ाइम हैं। गोया कि उन्हें आख़िरत की कोई फ़िक्र नहीं और मरने के बाद उन्हें उठना ही नहीं,

इन मकनपुरियों की एक किताब में लिखा है :

"रिवायत है कि रोज़े अज़ल को जबकि फ़रिश्तों ने बहुक्मे रब्बे जलील तीन सफ़ें रूहों की मुरत्तब कीं तो सफ़े अव्वल में अरवाहें अम्बिया अ़लैहिमुस्सलाम और सफ़े दोम में अरवाहे औलिया इज़ाम और सफ़े सोम में कुल मख़लूक़ की रूहें दाख़िल कीं तो बफ़हवाए كُلُّ شَيْءٍ يَرْجِعُ اِلَى اَصْلِهٖ सय्यिदे अबरार हज़रत ज़िन्दा शाह मदार रूही फ़िदा की रूहे मुबारक दूसरे सफ़ से निकल कर सफ़े अव्वल में दाख़िल हीने लगी

तो हुक्म हुआ कि तुम सफ़े अव्वल और सफ़े सानी के दरमियान रहो क्यूँकि मरतबए मदारिया दरमियाने नुबुव्वत और विलायत के है।" (मीलाद ज़िन्दा शाह मदार, सफ़हा 27, मुसन्निफ़ा ज़ुल्फ़िक़ार अली, क़मर मकनपुरी)

इस इबारत में नुबुव्वत और विलायत के दरमियान एक और मरतबा साबित करना और उसको हज़रत मदार साहब के लिए मानना गुमराही नहीं तो और क्या है बल्कि इबारत बता रही है कि हज़रत मदार साहब की अस्ल नुबुव्वत है यानी आप सिर्फ़ वली नहीं थे बल्कि अस्ल में नबी थे।

ऐसा अक़ीदा रखना खुला कुफ़्र है।

और यही ज़ुल्फ़िक़ार अली क़मर मकनपुरी कहता है :

जब हज़रत क़ुतबुल मदार रदियल्लाहु तआला अन्हु के चिहरए अनवर से दो एक नक़ाब उठ जाता था तो मख़लूक़े ख़ुदा सज्दे में गिरने लगती थी क्यूँकि जिस तरह हज़रते आदम अलैहिस्सलाम मसजूदे मलाइका गुज़रे हैं इसी तरह हज़रते क़ुतबुल मदार मसजूदे ख़लाइक़ गुज़रे हैं। (मीलाद ज़िन्दा शाह मदार, सफ़हा 43, और ज़ुल्फ़िक़ार बदीअ सफ़हा 106)

यह मसजूदे ख़लाइक़ यानी सारी मख़लूक़ जिसको सज्दा करे अल्लाह तआला ही के शायाने शान है किसी वली को मसजूदे ख़लाइक़ कहना और हज़रते आदम अलैहिस्सलाम जो नबी हैं उन पर उस वली की बरतरी और बड़ाई ज़ाहिर करना यानी हज़रते आदम को तो सिर्फ़ मसजूदे मलाइक़ (जिसको फ़रिश्तों ने सज्दा किया हो) कहना और हज़रते मदार को ग़ैर मसजूदे ख़लाइक़ (जिसको सारी मख़लूक़ सज्दा करे) कहना ग़ैर इस्लामी अक़ीदा नहीं तो और क्या है? और यह अल्लाह वालों की महब्बत में हद से बढ़ जाना और अल्लाह तबारक व तआला को भूल जाना है।

इन मकनपुरियों की एक और ईमान को बरबाद करने वाली इबारत मुलाहिज़ा फ़रमाइये, लिखते हैं :

"तहक़ीक़ जब अल्लाह तआला 6 रोज़ में ज़मीन व

आसमान को पैदा फ़रमा चुका और अ़र्शे मुअ़ल्ला पर जलवानुमा हुआ तो इसी क़ुतबुल मदार के दोशों (कान्धों) से गुज़र कर अपने अनवार से मुशर्रफ़ फ़रमा कर जमीअ़ औलिया व अतक़िया, ग़ौस व क़ुतुब पर उसको इफ़्तिख़ार बख़्श कर अ़र्शे बरीं पर रौनक़फ़िज़ा हुआ और आवाज़ आई कि जिनके क़दम तमाम औलिया अल्लाह की गर्दन पर हैं उनकी गर्दन पर तेरा क़दम है।"

(मीलाद ज़िन्दा शाह मदार, सफ़हा 9)

यह इबारत भी बहुत सारी गुमराहियों का मजमुआ़ है अल्लाह तआ़ला के लिए गुज़रने का लफ्ज़ बोलना और किसी के कान्धे पर उसको चढ़ने वाला बताना ईमान पर बिजली गिराने वाले और मोमिनों के दिल हिला देने वाले कलिमात हैं हक़ यह है कि अल्लाह तआ़ला गुज़रने यानी एक जगह से दूसरी जगह मुनतक़िल होने से पाक है बल्कि वह किसी जगह में हो उससे भी पाक है वह किसी जगह में नहीं है सब जगहें उसने पैदा की हैं कान्धे पर सवार होकर चढ़ना बता रहा है कि उसे किसी सहारे की ज़रूरत है उसको किसी के सहारे की ज़रूरत नहीं है, सब उसके मोहताज हैं वह हरगिज़ किसी का मोहताज़ नहीं। इसके अलावा इस इबारत में हज़रते शैख़ मदार बदीउ़द्दीन रहमतुल्लाहि अ़लैह को तमाम औलिया, अतक़िया, ग़ौस व क़ुतुब पर बरतरी बताना भी गुमराही है क्यूँकि तमाम औलिया, अतक़िया में हुज़ूर के सहाबए किराम, ताबिईन और तबअ़ ताबिईन में से अजिल्लए सादात व औलिया किराम भी शामिल हैं जिन पर उम्मत में से किसी को बरतरी और बड़ाई साबित नहीं बल्कि ऐसी बात कहना गुमराही है।

यही मकनपुरी एक जगह और लिखता है :

"हज़रते ख़ातिमुन्नबीय्यीन अ़लैहित्तहिय्यतु वत्तसलीम ज़मानए नुबुव्वत से पहले दरजए क़ुतुबुल मदार पर फ़ाइज़ थे, वही मरतबा हज़रत ज़िन्दा शाह मदार को आपने इनायत फ़रमाया।"

(मीलाद ज़िन्दा शाह मदार, सफ़हा 27)

यह भी ख़ालिस झूट है। रसूले पाक सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम पर आ़लमे अरवाह में कोई ऐसा वक़्त नहीं गुज़रा कि आप नबी न रहे हों। हदीसे पाक में है, हुज़ूर से पूछा गया कि आप कब से नबी हैं फ़रमाया, "मैं उस वक़्त भी नबी था जब कि हज़रते आदम जिस्म और रूह के दरमियान थे।" (तिर्मिज़ी शरीफ़, सफ़हा 201) यह कहना कि पहले आप क़ुतबुल मदार थे फिर नबी हुए बड़ा झूट है। कहीं ऐसा तो नहीं कि इन मकनपुरियों ने हज़रत सय्यिदना शैख़ बदीउद्दीन मदार साहब की नुबुव्वत का एलान करने का इरादा कर लिया हो कि जैसे हुज़ूर पहले मदार साहब थे फिर नबी हो गए तो अब यह भी ऐसे ही नबी हो गए हैं और बजाए मुहम्मदुर्रसूलुल्लाह के मदारसाहब का कलिमा पढ़ने का इरादा कर लिया हो, और कलिमा पढ़ने में कमी ही क्या है उनकी ऊपर ज़िक्र की गई इबारतो से ज़ाहिर है जो बातें सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला या उसके रसूले मक़बूल सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम के लिए ही बोली जा सकती थीं उन्होंने वह हज़रते शैख़ बदीउद्दीन के लिए कह डालीं। यहाँ मैं इतने ही पर बस करता हूँ वरना उनके बाज़ मौलवियों की कुफ़्री इबारतें और ग़ैर इस्लामी बकवासें और भी हैं, उनको तफ़सील से जानने के लिए और उनके बारे में उलमाए अहलेसुन्नत के फ़तवे मुलाहिज़ा करने के लिए उन से मुतअ़ल्लिक़ लिखी हुई किताब "फ़ैसलए शरइय्या दरबारए मदारिया" का मुतालआ़ करना चाहिए। अभी जल्द ही अहैले मकनपुर की तरफ़ से एक किताब शाह क़ैसर रज़ा साहब मदारी मकनपुरी ने लिख कर छपवाई है उसके सफ़हा 9 पर हज़रत शाह मदार साहब की तारीफ़ में लिखा है

"हज़रत मदार साहब का तसर्रूफ़ (इख़्तियार) अर्शे इलाही से लेकर तहतुस्सरा तक है उनके वजूद से सातों तबक़ ज़मीन व आसमान का निज़ाम क़ायम है।"

यानि अर्शे इलाही भी हज़रत मदार साहब के इख़्तियार व हुकूमत में है वहां भी उनकी बादशाहत क़ायम है और मदार साहब न रहें तो सातों तबक़ ज़मीन व आसमान सब ख़त्म हो जायें और कायनात फ़ना हो जाये भाईयो मेरा मशवरह तो यही है कि बुज़ुर्गों की तारीफ़ में इस क़िस्म के अल्फ़ाज बोलने और लिखने से बचना चाहिये हर तारीफ़ की एक हद ज़रूर है और जिसकी शान मर्तबे और तारीफ़ की कोई हद नही वह तो सिर्फ़ अल्लाह की ज़ात है

पीर व वली अल्लाह व रसूल तक पहुँचने का वसीला हैं वह मआज़ल्लाह अल्लाह व रसूल नहीं हैं

ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि कुछ पीर परस्त लोग अपने पीरों, वलियों की महब्बत व अक़ीदत में हद से आगे बढ़ गए। और अल्लाह तआ़ला और उसके रसूले मक़बूल को भूल गए बस अपने पारों और बुजूर्गें को ही सब कुछ समझ बैठे। हालांकि पीर व वली अल्लाह व रसूल तक पहुँचने का वसीला और ज़रिया हैं वह मआज़ल्लाह अल्लाह व रसूल नहीं हैं और उनके क़ुर्ब और सोहबत को इसलिए इख़्तियार किया जाता है कि उनके ज़रिए अल्लाह व रसूल तक पहुँचा जाए और अल्लाह व रसूल का ज़िक्र करने की लज़्ज़त हासिल हो जाए और ख़ुदाए तआ़ला की इबादत में मज़ा आने लगे

न यह कि ख़ुदाए तआ़ला को भूल कर उन्हीं में लग जाए। और वह हज़रत बदीउ़द्दीन मदार साहब हों या कोई और वली उन सब का मक़सद भी यही होता है कि उनके ज़रिए और वसीले से उनके मुरीद और मोतक़िद अल्लाह अ़ज़्ज़ा व जल्ल से क़रीब हों, उसकी इबादत और उसके रसूल की इताअ़त व फ़रमांबरदारी में लग जायें और उन्हें ख़ुदाए तआ़ला का नाम लेने, उसका ज़िक्र करने और उसकी इबादत में मज़ा आने लगे। उनका मक़सद हरगिज़ यह नहीं होता कि मआ़ज़ल्लाह वह ख़ुद ही ख़ुदा बन जायें और अपनी पूजा और परस्तिश कराने लगें और अपनी तारीफ़ में वह बातें सुनें जो सिर्फ़ ख़ुदाए तआ़ला या उसके रसूल ही के शायाने शान हैं और जो ऐसा मक़सद रखे वह वली ही कब है, वह तो बड़ा शैतान है, फ़िरऔ़न व हामान है तो जो लोग पीरों, वलियों की तारीफ़ में हद से आगे बढ़ गए उनसे यह पीर व वली भी ख़ुश नहीं बल्कि नाराज़ हैं क्यूँकि यह उनके मक़सद के ख़िलाफ़ चल रहे हैं।

ऊपर के बयान से कोई यह न समझ ले कि मैंने उन सारे लोगों को गुमराह क़रार दे दिया है जो ख़ुद को हज़रते सय्यिदना शैख़ बदीउ़द्दीन मदार साहब अ़लैहिर्रहमतु वर्रिदवान से वाबस्ता करते हैं और मदारी कहलाते हैं बल्कि यह फ़तवा और हुक्म उन्हीं चन्द लोगो पर है जिन्होंने अपनी किताबों में यह ग़ैर इस्लामी इबारतें लिखीं या जो लोग उनकी इन गुमराह करने वाली बकवासों को पढ़ कर या जानकर भी उनके मुरीद या मोताक़िद बने हुए हैं वरना ख़ुद को मदारी कहलाने वालों में हज़ारों

ऐसे भी होंगे और हैं कि उनके सामने यह ग़ैर इस्लामी इबारतें आयें तो वह यक़ीनन बेज़ारी का इज़हार करेंगे और इन इबारतों को सुन कर कान पर हाथ धरेंगे, और ख़ौफ़े ख़ुदा से काँपने लगेंगे। ऐसे तमाम मदारी हज़रात चाहे वह हज़रत सय्यिदना शैख़ बदीउ़द्दीन मदार साहब से ख़ुद को वाबस्ता करते हों और उनकी महब्बत व अक़ीदत में सरशार हों लेकिन दूसरे औलियाए किराम ख़ासकर सय्यिदना ग़ौसे समदानी शैख़ अ़ब्दुलक़ादिर जीलानी अ़लैहिर्रहमतु वर्रिद़्वान की शान में नाज़ेबा कलिमात न बोलते हों और कोई बोले तो उससे नफ़रत करते हों तो ऐसे लोग सब सुन्नी मुसलान हैं और हमारे दीनी इस्लामी भाई हैं। हमारे इस सब बयान को तअ़स्सुब और हटधर्मी की ऐनक लगा कर नहीं बल्कि ईमान व इन्साफ़ की निगाहों से पढ़ा जाए और ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ और जहन्नम की फ़िक्र रखने वाले दिल व दिमाग़ से समझा जाए। और जहां तक सिलसिलो के इख़्तिलाफ़ात हैं तो मैं उनमें कोई दिलचस्पी नही रखता भले से कोई सिलसिला जारी न हो लेकिन उसके बावजूद भी कोई शख़्स उसमे मुरीद है या उससे खुद को वाबस्ता करता है तो सिर्फ़ इतनी सी बात पर उसको अहैले सुन्नत से खारिज या गुमराह नही कहा जा सकता मुफ़्ती-ए-आज़म मौलाना शाह मुस्तफ़ा रज़ा खाँ बरेलवी लिखते हैं

लोग बराबर इस मदारी सिलसिले में बैअ़त करते मुरीद होते हैं उन्हे यह साबित नही कि यह सिलसिला सोख़्त हो चुका है जिन बुजूर्गों को इसकी इत्तिला हुई उन्होने ऐसा तहरीर फ़रमाया इसमें इस दरजा जाहिलों को

पड़ना कि एक दूसरे का दुश्मन हो जाये एक दूसरे को काफ़िर और फ़ासिक कहने की नौबत पहुंच जाये हरगिज़ जाईज़ नही जो मदारी सिलसिले में होते हैं उनसे तअ़र्रुज़ (छेड़छाड़) न करें कि इस बेकार बहस का नतीजा सिवाय बहस के कुछ नही (फ़तावा मुस्तफ़विया सफ़हा 454 मतबुआ रज़ा एकेडमी बम्बई)

आला हज़रत इमाम अहेलेसुन्नत से इन झगड़ों और इख़्तिलाफ़ात के बारे में पूछा गया तो उन्होने फ़रमाया

अवाम को ऐसे उमूर में बहस करना सख़्त नुक़्सान का बाईस होता है मुबादा किसी तरफ़ गुस्ताख़ी हो जाये तो सख़्त तबाही व बर्बादी बल्कि उसकी शामत से ईमान जाने का अन्देशा। हज़रत शाह बदीउद्दीन मदार अकाबिरे औलिया (बड़े बड़े औलिया) से हैं मगर इसमे शक नही कि हुजूर सय्यदना ग़ौसे आज़म का मर्तबा बहुत अफ़ज़ल व आला है (फ़तावा रिज़विया जिल्द 26 सफ़हा 559)

सही बात यह है कि जो सही है वह सही है ख़्वाह किसी भी सिलसिले का हो और जो ख़िलाफ़े शरअ़ है वह ग़लत है ख़्वाह वह किसी भी सिलसिले का हो।

और मैने देखा आजकल जो लोग पीरी मुरीदी के झगड़ो में बहुत ज़्यादा दिलचस्पी लेते हैं यह लोग वह हैं जिन्होने पीरी मुरीदी को धंधा और पेशा बना लिया या किसी धंधेबाज़ पीर के ऐजन्ट हैं। ज़माने का हाल देखकर मुझको यह लिखना पड़ रहा है कि आजकल ज़्यादातर पीरी मुरीदी धंधा ही बन गई है दीन सिखाने का काम शायद ही कही होता हो ख़िलाफ़त व इजाज़त देने का कोई मेअ़यार नही रह गया है जिसको देखो वह किसी

न किसी का ख़लीफ़ा बन बैठा है ज़माने के हाल के पेशे नज़र मेरा मशवरह तो आज कल यह है कि अगर मस्जिद में कोई बासलाहियत ज़िम्मेदार दीनदार इमाम हो तो अहेले मुहल्ला और मुक़तदी लोग उसको और दीनी मदरसों में इल्मे दीन सिखाने वाला परहेज़गार आलिम उस्ताद हो तो दीन सीखने वाले तलबा उसको पीर की जगह समझें और उसके साथ पीर का सा माअ़मला करें।

दरअसल आजकल लोग नमाज़ रोज़े और ज़कात वग़ैरह से दूर हो गये हैं। ज़िक्र, फ़िक्र, शुक्र और कुरआन की तिलावत में उन्हे कोई लज़्ज़त नही रह गयी इसी वजह से इन फ़ालतू इख़्तिलाफ़ात और झगड़ों में दिलचस्पी लेते हैं भाईयो मेरी मानो अल्लाह का ज़िक्र और उसका शुक्र और कुरआन की तिलावत को मशग़ला बनाओ शैतान की चालों में से एक चाल है कि वह इंसानों में खुदा व रसूल से दूर करने के लियें झगड़े कराता है और झगड़ों में इनको झोंक देता है नमाज़ रोज़े और ज़िक्रे इलाही की तरफ़ से इनका ध्यान हटा देता है।

पीरपरस्ती और ख़ुदा व रसूल फ़रामोशी में लोग इस क़दर ग़ुलू कर गए और हद से आगे बढ़ गए हैं कि एक जगह का वाक़िआ लोगों ने मुझ को सुनाया कि मस्जिद में नमाज़े मग़रिब जमाअ़त के साथ अदा की जा रही थी, उसी दौरान पीर साहब मस्जिद में तशरीफ़ ले आए। हवाली मवालियों में से एक ने ज़ोर से कहा कि क़िब्लए आ़लम तशरीफ़ ले आए हैं तो सारे मुरीदों ने नमाज़ें तोड़ दीं और मियाँ हुज़ूर से मुसाफ़ह़ा, दस्तबोसी और क़दमबोसी में लग गए, पीर ने इस ग़ैर इस्लामी हरकत पर न उन्हें डाँटा न समझाया।

ऐसे ही एक मक़ाम पर एक गाँव के लोग पीर साहब को अपने गाँव में तांगे पर बिठा कर लाए रास्ते में यानी तांगे में हज़रत का वुज़ू टूट गया और वह भी इस तौर पर कि साथ वालों को अच्छी तहर मालूम हो गया। मियाँ गाँव में आए मग़रिब की अज़ान हो रही थी, सीधे मस्जिद में पहुँचे और यूँही मुसल्ले पर नमाज़ पढ़ाने खड़े हो गए। एक मुरीद जिसने अपने कान से वुज़ू टूटने की आवाज़ सुनी थी और उसके दिल में ख़ुदाए तआ़ला का कुछ ख़ौफ़ था, डरते-डरते हिम्मत करके हज़रत को याद दिलाया कि शायद आप को ख़्याल न हो जनाबे वाला वुज़ू फ़रमा लें। लेकिन हज़रत ने यूँही नमाज़ पढ़ा डाली, बाद में इस बात का गाँव में चर्चा हुआ तो अक्सर बद्दीन मुरीद कह रहे थे कि वह तो मियाँ हैं, अल्लाह वाले हैं उनका वुज़ू और बेवुज़ू रहना एक ही बात है और कुछ गुमराह कह रहे थे कि अल्लाह वालों का वुज़ू कभी नहीं टूटता, वह हर हाल में बावुज़ू रहते हैं।

भला देखिये और ग़ौर कीजिये इन दोनों हादसात और वाक़िआ़त पर जो मोतबर लोगों ने मुझे सुनाए हैं और अन्दाज़ा लगाइये कि इस्लाम कितने नाज़ुक दौर से गुज़र रहा है और पीरपरस्ती कहीं-कहीं इस्लाम की हदों को फलांग कर कुफ़्र की सरहद में दाख़िल हो गई है और बहुत से पीरों ने अल्लाह तआ़ला के रसूल के लाए हुए दीन को भुलाना और अल्लाह तआ़ला से दूर करके अपने क़रीब लाना शुरू कर दिया है।

ऐसे ही एक जगह की बात है कि एक सिलसिले के एक बुज़ुर्ग हर वक़्त उठते, बैठते, चलते, फिरते अक्सर व

बेशतर "अल्लाहु" का ज़िक्र फ़रमाते थे और यह उनकी ज़बान से जारी रहता था तो उनके मुरीदों और मोतक़िदों ने उन्हें "अल्लाहु मियाँ" कहना शुरू कर दिया और जब उन्हें समझाया गया कि "अल्लाहु" का ज़िक्र करने की वजह से उन बुज़ुर्ग को "अल्लाहु का ज़िक्र करने वाले" या "अल्लाहु वाले' मियाँ" कहिये न कि सीधे-सीधे "अल्लाहु मियाँ"। यह तो बज़ाहिर ऐसा ही है जैसे किसी इन्सान को "अल्लाह मियाँ" कहना। तो वह लोग बजाए अपनी इस्लाह करने के समझाने वालों के मुख़ालिफ़ बन गए। दरअस्ल बात यह है कि क़ियामत क़रीब है, फ़ितनों का दौर है, आदमी को सीधी समझाओ उसकी समझ में उल्टी आती है, नफ़्स ग़ालिब आ गया है। हर एक को अपनी ज़ात और बात की फ़िक्र है, दीन और मज़हब की फ़िक्र नहीं।

हक़ यह है कि हमने पीरों, फ़क़ीरों, सूफ़ियों, दुरवेशों, मौलवियों, आलिमों को इसलिए माना और उनके पीछे लगे, उनके मुरीद व मोतक़िद हुए कि उनके ज़रिए से ख़ुदा व रसूल मिलते हैं और उन का बताया हुआ रास्ता हाथ आता है। अल्लाह तआला की इबादत और उसके रसूल की इताअ़त का लुत्फ़ हासिल होता है और यही लोग जब हमें ख़ुदा व रसूल से दूर करने लगें, उनका रास्ता हम से छुड़ाने लगें, उनकी तालीमात पर अमल करने से रोकने लगें, उनसे अलाहिदा करके अपने चक्कर और जाल में फाँसने लगें तो यह न पीर हैं न फ़क़ीर, सूफ़ी हैं न दुरवेश, मौलवी हैं न आलिम, यह रहबरों के भेस में राहज़न (लुटेरे) हैं, रखवालों के लिबादे में चोर डकैत हैं।

राग और मज़ामीर के साथ क़व्वालियाँ सुनना और

रक़्स करना (नाचना) भी बाज़ ख़ानक़ाहों में राइज हो गया है यह भी सब ख़िलाफ़े शरअ़ हरकतें हैं। मुरव्विजा क़व्वाली नाजाइज़ व हराम होने में कोई शक नहीं है। इसको तफ़सील से दलाइल के साथ अपनी किताब "ग़लतफ़हमियाँ और उनकी इस्लाह" में मैंने समझा दिया है और मेरी इस किताब को पढ़ कर बहुत से लागों ने क़व्वालियाँ सुनने और कराने से तौबा कर ली है। रक़्स करना और नाचना भी जो राइज है यह भी बहरहाल मकरूह व नाजाइज़ है। बाज़ अहले अल्लाह के बारे में जो मनक़ूल है उन्हें ज़िक्रे इलाही सुन कर वज्द और हाल आ गया और बे इख़्तियारी तौर पर उन से कोई हरकत वुजूद में आ गई उस को इस नाच से कोई मुनासिबत नहीं है। मशहूर वाक़िआ़ है कि सुल्ताने इस्लाम सय्यिदना औरंगज़ेब आ़लमगीर मुहिय्युद्दीन रहमतुल्लाहि तआ़ला अ़लैह को बताया गया कि मुल्क में एक सिलसिले के लोग क़व्वालियाँ सुनते और नाचते हैं बादशाह ने उन्हें बुलाया और नाचने से मना फ़रमाया। वह कहने लगे कि हम लोग क़व्वाली सुनते वक़्त होश में नहीं रहते, यादे इलाही में डूब जाते हैं, हमें हाल और वज्द आ जाता है। बादशाह ने हुक्म दिया कि एक कश्ती (नाँव) में क़व्वालों को और उन्हें बिठा दो और कश्ती दरियाए जमुना में डाल दो क़व्वालों से कहो कि क़व्वाली पढ़ें और फिर वापसी में हमें बताया जाए कि उन में से किस-किस को हाल आया और कौन वज्द में नाचा और घूमा। बादशाह के हुक्म पर अ़मल हुआ और वापसी में कारिन्दों ने बताया कि हुज़ूर क़व्वालों ने उम्दा से उम्दा कलाम पढ़ा मगर इन में कोई

नाचना, कूदना तो दरकिनार खड़ा तक नहीं हुआ बल्कि ख़ामोश कश्ती में बैठे रहे। बादशाह ने फ़रमाया यह सब मक्कार हैं इन्हें कोड़े मारो और दरबार से निकाल दो, जो होश में न हो वज्द और ह़ाल में हो उसको यह क्या पता कि दरिया है या ख़ुश्की, कश्ती है या धरती। और मुल्क में एलान करा दिया कि हमारी सल्तनत में किसी को रक़्स करने की इजाज़त नहीं है। अल्लाह के इस वली सिफ़त बादशाह ने 55 साल हुकूमत की और जब तक उनकी बादशाहत रही यह ख़िलाफ़े शरअ़ काम सब बन्द रहे। ख़ुदाए तआ़ला फिर से कोई ऐसा इस्लामी हुक्मरां पैदा फ़रमाए।

रक़्स यानी नाच के नाजाइज़ व गुनाह होने की तफ़सील जिसे दलाइल के साथ देखना हो फ़तावा रज़विया जिल्द 10, क़िस्त अव्वल, सफ़ह़ा 212 और सफ़ह़ा 213 का मुतालआ़ करे।

जानबूझ कर नमाज़ वग़ैरह फ़राइज़ को तर्क करने वाले बाज़ पीर और उनकी मुरीद यह तावील करते हैं कि वह होश में नहीं रहते लिहाज़ा उन पर नमाज़ फ़र्ज़ नहीं तो उनसे पूछा जाए कि खाने-पीने, पहनने और ओढ़ने, सोने, जागने, लेने, देने और नज़राने वग़ैरह के मामले में तुम्हें होश रहता है बेहोश हुए तो सिर्फ़ नमाज़ छोड़ने के लिए? सही बात यह है कि यह सब मक्कार, धोकेबाज़, ऐशपरस्त, आरामतलब हैं उनसे मुरीद होना, उन्हें पीर मानना कम से कम हराम ज़रूर है।

इस सिलसिले में आख़िरी बात यह है कि इस ज़माने में गाँव-गाँव घूमने वाले इन नाम निहाद बेदीन पीरों से क़ौम को बचाना और उनसे मुरीद होने से रोकना बहुत

ज़रूरी है इसका एक तरीक़ा यह है कि सालेह़ (नेक) और लाइक़ पीरों से लोगों को मुरीद कराया जाए। और चूंकि लाइक़ व अहल पीर अब न होने के बराबर हैं लिहाज़ा यह भी लोगों को बताते रहना चाहिए कि आजकल जो पीरी मुरीदी राइज है यह शरअ़न लाज़िम व ज़रूरी नहीं और कोई शख़्स किसी ख़ास पीर का मुरीद न हो, लेकिन अक़ाइद दुरुस्त रखता हो, हज़राते अम्बियाए किराम, औलियाए इज़ाम और उलमाए अहलेहक़ से महब्बत रखता हो और शरीअ़त का पाबन्द हो तो यक़ीनन वह नजात का मुस्तहिक़ है। इस सब को दलाइल व तफ़सील के साथ मैंने "ग़लतफ़हमियाँ और उनकी इस्लाह" में लिख दिया है और जो कई सौ औलियाए किराम रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हुम के अक़वाल मुख़ालिफ़े शरअ़ पीरों की तरदीद में किताबों के हवाले के साथ देखना चाहे वह आलाहज़रत इमाम अह़मद रज़ा ख़ाँ रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु की तसनीफ़ "मक़ाले उ़रफ़ा बाएज़ाज़े शरअ़ व उ़लमा" का मुतालआ़ करे। और इन्हीं इमामे अहलेसुन्नत ने "अलमुअ़तक़द अलमुनतक़द" की शरह "अलमुअ़तमद अलमुस्तनद" सफ़ह़ा 230 में इन अह़कामे शरअ़ की सराह़तन मुख़ालिफ़त और इन्कार करने वाले पीरों और मुरीदों के गिरोह को "अलमुतसव्विफ़तुल मुतसल्लिफ़ह" नाम से एक मुस्तक़िल गुमराह फ़िरक़ा क़रार देकर उनकी तकफ़ीर फ़रमाई है यानी इन्हें ग़ैर मुस्लिम फ़िरक़ा कहा है।

वहाबियों और मुख़ालिफ़े शरअ़ पीरों के दरमियान मज़हबे अहलेसुन्नत

गुज़रे हुए सफ़हात को पढ़ने से आप पर ख़ूब ज़ाहिर हो गया है कि एक तरफ़ वहाबी हैं जो अल्लाह की तौहीद और उसकी इबादत का नाम लेकर अल्लाह वालों को बिल्कुल भूल गए हैं और दूसरी तरफ़ बेइल्म सूफ़ियों जाहिल मुख़ालिफ़े शरअ़ पीरों और मुरीदों का एक गिरोह और फ़िरक़ा तैयार हो गया है कि जो नाम निहाद अल्लाह वालों का नाम लेकर अल्लाह तआ़ला और उसके भेजे हुए दीने इस्लाम से, उसकी इबादत से लोगों को दूर करने में लगे हैं। यक़ीनन यह जानकर आपको ख़ुशी होगी कि क़ुर्आने करीम में ख़ुदाए तआ़ला ने इस उम्मत को दरमियानी उम्मत फ़रमाया तो वाक़िई आज तक अहले हक़ दरमियान ही में चले आ रहे हैं और उनका रास्ता बीच का रास्ता है आज अहलेसुन्नत की यह शान है कि एक तरफ़ वह महफ़िले मीलादे मुस्तफ़ा को नाजाइज़ व बिदअ़त कहने वाले वहाबियों से मुक़ाबला कर रहे हैं, उनसे मुनाज़रे कर रहे हैं और दूसरी तरफ़ उर्सों के नाम पर मज़ामीर और ढोल बाजों के साथ क़व्वाली और तमाशे करने वालों के भी मुक़ाबिल यही नज़र आ रहे हैं। एक तरफ़ बनाम वहाबियत अल्लाह के नेक बन्दों के मज़ारात पर हाज़िरी, उनसे मदद माँगने और बरकत हासिल करने को शिर्क कहने वालों के रद में लगे हुए हैं और दूसरी तरफ़ जो लोग मज़ारों या पीरों को सज्दे करते हैं, उनको समझा रहे हैं कि भाईयो सज्दा अल्लाह तआ़ला के अलावा किसी के

लिए जाइज़ नहीं है। गोया कि अल्लाह की तौहीद की हिफ़ाज़त और उसकी इबादत भी हो रही है और हज़राते अम्बिया और औलिया व उलमा से अ़क़ीदत व महब्बत भी सिखाई जा रही है।

यह देखिये आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत मौलाना शाह अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अ़लैहिर्रहमह के दिल की आवाज़ :

पेशे नज़र वह नौबहार सज्दे को दिल है बेक़रार
रोकिये सर को रोकिये हाँ यही इम्तिहान है

यह देखिये उलमाए अहलेसुन्नत यह वह दरमियानी रविश वाले हैं कि कहीं इमामे आ़ली मक़ाम हुसैन शहीदे करबला रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु के नाम को लेकर ताज़ियेदारी के तमाशे करने वालों, ढोल, बाजों, ताशों, मसनूई करबलाओं, मातम और सीनाकूबी, मिहदी की ग़ैर शरई़ रस्म और इमामबाड़े वालों से भिड़े हुए हैं और उनके ख़िलाफ़ तहरीरों, तक़रीरों और फ़तवों के ज़रिए मैदान में खड़े हैं और यही लोग हज़रते इमामे पाक की फ़ातिहा, नियाज़ व सबील को मना करने वाले वहाबियों से झगड़ रहे हैं और उन्हें ललकार रहे हैं।

बुज़ुर्गों के सालाना उर्स की मजलिसों को बिदअ़त व नाजाइज़ कहने वालों से भी उन्हीं की लड़ाई है और उर्सों के नाम पर मर्दों, औरतों की मिलीजुली भीड़ लगाने, उसमें ग़ुन्डागर्दी कराने वाले मेलों, तमाशों के शैदाइयों की मुख़ालिफ़त में भी यही नज़र आते हैं।

बुज़ुर्गों, पीरों, मशाइख़ व अकाबिर की अ़ज़मत घटाने वालों और उनकी शान में तौहीन व तनक़ीस करने वालों

से भी उनकी जंग चली आ रही है और यह दूसरी तरफ़ क़ौम को यह भी बता रहे हैं कि अल्लाह वाले वही हैं जो अल्लाह के बताए हुए रास्ते पर चलते हैं और दूसरों को चलाते हैं यानी अल्लाह वालों के नाम पर धोका खाने से भी क़ौम को बचा रहे हैं कि कहीं सिर्फ़ पढ़ने, फूंकने और गन्डे, तावीज़ करने वालों और बनाम करामत, शोबदेबाज़ी दिखाने वालों को पीर और वली मत ख़्याल कर लेना बल्कि पीर व वली वह ही है जिसके चाल-चलन, रहन-सहन, उठने-बैठने, देख कर रसूले ख़ुदा की याद आ जाए। इसीलिए आप देखेंगे कि मज़हबे अहलेसुन्नत जिसे अब मसलके आलाहज़रत भी कहा जाता है उसके नक़ीब (रक्षक) और नुमाइन्दों की मुख़ालिफ़त और दुश्मनी करने वाले आपको दोनों तरफ़ के लोग नज़र आयेंगे, वहाबी, देवबन्दी भी और नामनिहाद पीर व मुख़ालिफ़े शरअ़ मज़ारों के मुजाविर व सज्जादा नशीन भी, नियाज़ व फ़ातिहा, उर्स व मीलाद के मुख़ालिफ़ भी, ताज़ियेदारी और क़व्वालियों के शौक़ीन भी।

बल्कि यह दोनों जानिब के ग़लत ख़्याल रखने वाले कभी-कभी एक ही लाइन में नज़र आते हैं। कितने ही वहाबी, देवबन्दी हैं जो मज़ारों की कमाईयाँ खा रहे हैं, ख़ुद मुजाविर बने बैठे हैं या किराए के मुजाविर उन्होंने बिठाए हैं, ख़ानक़ाही औक़ाफ़ पर क़ब्ज़ा करने में यह गिरोह पेश-पेश नज़र आता है। और कितने मज़ारों की चादरों, फूलों, नियाज़ों और नज़रानें पर पलने वाले और उनका नाजाइज़ इस्तेमाल करने वाले ख़ानक़ाही और सज्जादानशीन मेरी नज़र में हैं कि जब अल्लाह के औलिया और बुज़ुर्गाने दीन को बिल्कुल न मानने वाले वहाबियों के ख़िलाफ़ कोई

सुन्नी आलिम आवाज़ उठाता है और उनका रद करता है तो यह बगला भगत उसी आलिम के ख़िलाफ़ हो जाते हैं और कहते हैं कि किसी को बुरा भला नहीं कहना चाहिए, फ़कीरों के मज़हब में सब सही हैं यानी जो अल्लाह के रसूलों, नबियों, वलियों को गालियाँ दें, उनसे ख़ुश हैं, उन्हें कुछ मत कहो और जो इन गालियाँ देने वालों का रद क़ुर्आन व हदीस की रौशनी में कर दे उस के यह मुख़ालिफ़ हैं। अभी जल्दी की बात है हमारे इलाक़े के एक शहर में क़ब्र पर अज़ान को उलमाए अहलेसुन्नत ने जाइज़ और अच्छा काम बताया और वहाबियों ने इस ज़िक्रे ख़ुदा व रसूल को हराम व नाजाइज़ क़रार दिया तो हज़रत सय्यिदना शाह बदीउ़द्दीन मदार साहब मकनपुरी रहमतुल्लाहि अ़लैह के नाम से ख़ुद को वाबस्ता करने वाले कुछ नामनिहाद मदारी मकनपुरी देवबन्दियों, वहाबियों की तरफ़ ढलक गए और इस मसअले में उन्हीं की ताईद कर दी और अहलेसुन्नत के मुख़ालिफ़ हो गए। यह अजीब बात है कि दरगाहों और मज़ारों पर रात दिन पड़े रहने वाले बल्कि मज़ारों के ज़रिए पलने वाले उनसे मेल खा जाते हैं कि जिनके मज़हब में मज़ार बनाना, वहाँ जाना सब हराम है। एक तरफ़ वह वहाबी हैं जिनके मज़हब में किसी वली का मज़ार शरअ़न कोई चीज़ नहीं और एक तरफ़ वह आजकल के नामनिहाद सूफ़ी व फ़क़ीर हैं जो मज़ारों को सज्दे करते हैं और नमाज़, रोज़े की परवाह किये बग़ैर सिर्फ़ उस हाज़िरी ही को कुल इस्लाम ख़्याल करते हैं, अहलेसुन्नत दरमियानी रास्ते पर क़ाइम हैं जो दरमियानी बीच के रास्ते पर हैं वही अहलेसुन्नत हैं।

अब देखिये मज़हबे अहलेसुन्नत वलजमाअ़त की

सही तर्जमानी

"अह्कामे शरीअ़त" हिस्सा अव्वल, सफ़्हा 15 पर है कि आलाहज़रत मौलाना अह्मद रज़ा ख़ाँ बरेलवी से किसी ने पूछा कि "या रसूलल्लाह!" और "या वलीअल्लाह!" कहना जाइज़ है कि नहीं और पैग़म्बरों और वलियों से मदद चाहना "या अ़ली मुश्किल कुशा" कहना जाइज़ है या नहीं तो जवाब में फ़रमाया :

"जाइज़ है जबकि उन्हें बन्दए ख़ुदा और उसकी बारगाह में वसीला जाने और उन्हें बेइज़्ने इलाही वलमुदब्बिराते अम्र से (अल्लाह के हुक्म से काम करने वाले) जाने और एतमाद करे कि बेहुक्मे ख़ुदा ज़र्रा नहीं हिल सकता और अल्लाह तआ़ला के दिए बग़ैर कोई एक ह्ब्बा (दाना) नहीं दे सकता, एक हर्फ़ नहीं सुन सकता, पलक नहीं हिला सकता....।"

देखा आपने? कैसी अच्छी तालीम है? कैसी तौहीदे इलाही के अ़क़ीदे की हिफ़ाज़त है? और शिर्क से किस क़दर नफ़रत व बेज़ारी व अदावत है? और इसके साथ-साथ कैसी अल्लाह तआ़ला के महबूब बन्दों, रसूलों, नबियों और वलियों से अ़क़ीदत व महब्बत है? और यही दरमियानी रास्ता है जो मज़हबे अहलेसुन्नत वलजमाअ़त है कि अल्लाह तआ़ला की वहदानियत का इक़रार हो शिर्क से बेज़ार हो और अल्लाह तआ़ला के नेक बन्दों से महब्बत का इज़्हार हो। इसमें कोई शक नहीं कि जिसको जो कुछ दिया है वह सब अल्लाह तआ़ला ने ही दिया है और देने के बाद भी हर चीज़ का हक़ीक़ी और ज़ाती मालिक वह परवरदिगार ही है यानी यक़ीनन अम्बिया व

औलिया भी उसी के बन्दे हैं वही उनका रब और मालिक है लेकिन बात यह है कि बन्दों में भी ज़मीन व आसमान से भी ज़्यादा फ़र्क़ है, बन्दे हम भी हैं बन्दे वह भी हैं मगर हम फ़क़ीर हैं वह शहंशाह हैं, हम ग़ुलाम हैं वह आक़ा हैं, हम मंगता हैं वह दाता हैं, हम उनके मुक़ाबले में मिट् टी से भी कमतर हैं और वह हमारे सामने सोने-चाँदी से भी कहीं बेहतर, हमें अगर कंकर पत्थर कहा जाए तो उन्हें हीरे, जवाहरात और मोतियों से ताबीर किया जाए बल्कि उससे भी उम्दा और अफ़ज़ल।

शिर्क के मामले में एहतियात और साथ ही साथ बुज़ुर्गों से अक़ीदत और महब्बत की एक और मिसाल मुलाहिज़ा फ़रमाइये। फ़तावा रज़विया जिल्द 6 मतबूआ मुबारकपुर सफ़हा 130 पर एक सवाल और फिर आलाहज़रत का जवाब मुलाहिज़ा फ़रमाइये।

सवाल : क्या फ़रमाते हैं उलमाए दीन इस मसअले में कि पीर के साथ मुरीद को कैसा अक़ीदा रखना चाहिए? यह कहना चाहिए कि मेरा बख़्शने वाला वही है या यह कि उसके वसीले से बख़्श जावेगा जैसा कि एक शख़्स (ज़ैद) कहता है कि "बख़्शने वाला और देने वाला पीर ही है" और अम्र कहता है कि पीर बख़्शने वाला नहीं बल्कि उसके वसीले से उसके मुरीद बख़्शे जावेंगे और बग़ैर पीर के वसीले के ख़ुदाए तआला और रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम के दरबार तक रसाई नहीं और इस अम्र में ज़ैद हमेशा अम्र के ख़िलाफ़ रहता है। अब फ़ैसला फ़रमावें कि कौन हक़ पर और कौन नाहक़ पर, और जो हक़ पर नहीं उसको तौबा करने की

ज़रूरत है या नहीं।

इस सवाल के जवाब में आलाहज़रत फ़रमाते हैं :

"अम्र हक़ पर है और ज़ैद के वह अल्फ़ाज़ कि "देने वाला पीर ही है" अपने ज़ाहिर पर बहुत शनीअ़ (बुरे) हैं और अगर इसका ज़ाहिर ही एतक़ादे क़ाइल (कहने वाले का अ़क़ीदा) हो तो सरीह कुफ़्र है बहरहाल ज़ैद को तौबा करना चाहिए।" वल्लाहु तआ़ला अअ़लम।

यह है इमामे अहलेसुन्नत आलाहज़रत की तालीमात जो ख़ालिस इस्लाम हैं। जहाँ ज़िन्दगी भ्र पीरों और बुज़ुर्गों को बिल्कुल न मानने वालों की ख़बर ली है वहाँ पीरों और बुज़ुर्गों के नाम का सहारा लेकर अल्लाह तबारक व तआ़ला को भूल जाने वालों और अ़क़ीदए तौहीद के ज़रा सा भी ख़िलाफ़ बोलने वालों जिनकी बोलियों से शिर्क की बू आती हो उनकी भी कोई रिआ़यत नहीं की गई है और वाक़िई मज़हबे अहलेसुन्नत अल्लाह वालों से महब्बत करना तो है लेकिन मआ़ज़ल्लाह अल्लाह तबारक व तआ़ला को भूल जाना नहीं है। आख़िर वही तो मालिकुल मुल्क है जिसको चाहता है अपने मुल्क से अता फ़रमाता है और जिससे चाहता है अपना मुल्क छीन लेता है, सारी भलाई उसके दस्ते क़ुदरत में है बेशक वह जो चाहे कर सकता है, रात को दिन में दाख़िल फ़रमाता है और दिन को रात में, ज़िन्दे को मुर्दे से लाता है और मुर्दे को ज़िन्दे से और वह जिस को चाहता है बेहिसाब अता फ़रमाता है।

यहाँ एक बात मैं और बता देना ज़रूरी समझता हूँ कि बुज़ुर्गाने दीन का ज़िक्र ख़ैर व बरकत का बाइस और रहमत के नाज़िल होने का सबब है लेकिन जहाँ अल्लाह

तबारक व तआला का नाम लेना, उसका ज़िक्र करना राइज है, हमेशा से बुज़ुर्गों का मामूल (तरीक़ा) रहा है वहाँ उसको हटा कर उसकी जगह किसी ग़ैरे ख़ुदा का ज़िक्र मुनासिब नहीं है। अल्लाह तआला का नाम लेकर और सिर्फ़ उसकी तरफ़ रुजूअ़ करके जो सवाल किया जाता है या मांगा जाता है उसको "दुआ" कहते हैं

हज़रत मौलाना अब्दुल समी साहब रामपरी लिखते हैं दुआ के माअ़ना शरअ़ में हैं السوال من الله الكريم .. कर्म वाले अल्लाह से मांगना अनवारे सातिआ़ बरहाशिया बराहीने क़ातिआ़ सफ़हा 79)

लुग़त की मशहूर किताब अलमोजमुलवसीत में दुआ के माअ़ना लिखे हैं ....مايدعى به الله من القول. ... ऐसी बात जिसके ज़रिये अल्लाह को पुकारा जाये

आला हज़रत इमाम अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अपनी एक बीमारी तक़लीफ़ और दर्द की ज़्यादती का ज़िक करते हुए फ़रमाते हैं।

अल्लाह अज़वजल से दुआ की और हुज़ूर अक़्दस सल्लल्लाहो तआ़ला अलैह वसल्लम से मदद मांगी मौला अज़वजल मुज़तर (मजबूर) की पुकार सुनता है (अलमलफ़ूज़ हिस्सा 2 सफ़हा 92) और ख़ुदा की तरफ़ से उसकी अता से अम्बिया व औलिया को साहिबे इख़्तियार समझ कर उनसे मुराद या मदद मांगने को इस्तिमदाद और इस्तिग़ासा कहते हैं यानी दुआ का लफ़्ज़ इस्तिलाह में अल्लाह तआ़ला के लिए ख़ास है बुज़ुर्गों से मांगने को इस्तिमदाद और इस्तिग़ासा कहा जाता है दुआ नहीं यानी दुआ मांगना सिर्फ़-सिर्फ़ अल्लाह ही से है, मदद और

मुराद मांगना बुज़ुर्गों से भी है। वह भी यह अ़क़ीदा रख कि वह उसी के दिये से इस मनसब पर फ़ाइज़ हैं कि किसी को नफ़ा या नुक़सान पहुँचा सकें मसलन नमाज़ के बाद अल्लाह तआ़ला से दुआ मांगना राइज है, वहाँ ग़ैरे ख़ुदा से इस्तिग़ासा और इस्तिमदाद मुनासिब नहीं है चाहे शेर (पद्य) में हो नस्र (गद्य) में, और बात वही है कि सुन्नियत अल्लाह वालों से महब्बत करना तो है लेकिन अल्लाह के ज़िक्र को रोकना और हटाना नहीं है। कलिमाते ख़ैर (अच्छी बातों) में भी सब के लिए अलग-अलग मौक़े हैं, हर अच्छी बात भी हर मौक़ा व महल्ल पर और हर जगह अच्छी नहीं होती। ख़ुद आलाहज़रत अ़लैहिर्रहमतु वर्रिद्वान ने भी नमाज़ के बाद पढ़ने के लिए जो दुआ और मुनाजात लिखी है :

या इलाही हर जगह तेरी अता का साथ हो
जब पड़े मुश्किल शहे मुश्किल कुशा का साथ हो

इसके हर शेर की इब्तिदा (शुरू) में "या इलाही" है। बीसों शेरों में किसी भी शेर में सिवाए ख़ुदाए तआ़ला के दूसरे के लिए निदा (पुकारना) नहीं है।

अपने सिलसिले के बुज़ुर्गों के नाम से बरकत हासिल करने के लिए जो शजरा पढ़ा जाता है उसमें आलाहज़रत ने पहला शेर यूँ लिखा :

या इलाही रहम फ़रमा मुस्तफ़ा के वास्ते
या रसूल अल्लाह करम कीजिये ख़ुदा के वास्ते

इस शेर के दूसरे मिसरअ़ (लाइन) में हुज़ूर सय्यिदे आ़लम स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की बारगाह से इस्तिग़ासा और इस्तिमदाद है और करम का सवाल है

क्यूँकि शजरा पढ़ने के मौक़े और हैं और दुआ मांगने के और। शजरा अमूमन उर्स व फ़ातिहा ख़्वानी वग़ैरह के मौक़े पर पढ़ा जाता है। इस शजरे के भी बाद वाले सारे शेरों में बुज़ुर्गाने सिलसिला के नाम का ज़िक्र व वसीला तो है लेकिन निदा और पुकार अल्लाह तआ़ला ही के लिए है और दुआ उसी से मांगी है। और "या रसूलल्लाह करम कीजिये ख़ुदा के वास्ते" का मतलब यह है कि ऐ अल्लाह के रसूल अल्लाह तआ़ला के नाम पर मुझको अता फ़रमाइये, मेरे ऊपर करम कीजिये, यह मतलब हरगिज़ नहीं कि हुज़ूर बिज़्ज़ात करम फ़रमाने वाले हैं और अल्लाह तबारक व तआ़ला वसीला है ऐसा मफ़हूम तो सोचा भी नहीं जा सकता बल्कि हक़ यह है कि हक़ीक़त में करम फ़रमाने वाला, देने और बख़्शने वाला सिर्फ़ अल्लाह तआ़ला ही है और मुक़द्दस बन्दे उसकी अता और बख़्शिश का वसीला हैं। हाँ अल्लाह तआ़ला के नाम पर या उसके वास्ते में मांगना, सवाल करना जाइज़ व मुरव्वज है और इसकी मिसालें हदीसों में भी मौजूद हैं।

हदीस : हज़रते अ़ब्दुल्लाह इब्ने उमर से मरवी है कि रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने फ़रमाया :

"जो अल्लाह के वास्ते तुम से पनाह मांगे तो उसको पनाह दे दो और जो अल्लाह के वास्ते में तुम से कुछ मांगे तो उसको वह दे दो।"

(मिश्कात, बाब अफ़ज़लुस्सदक़ा, सफ़्हा 171)

हदीस : बुख़ारी व मुस्लिम में अबरस, अक़रअ़, और अअ़मा यानी कोढ़ी, गंजे और अन्धे वाली मशहूर और तवील हदीस में है कि जब फ़रिश्ते की दुआ से यह लोग तन्दरुस्त,

शिफ़ायाब और मालदार हुए तो फिर वही फ़रिश्ता इन्सान की शक्ल में मिसकीन व मोहताज बन कर एक के बाद दूसरे के दरवाज़े पर आया और इस तरह सवाल किया :

رَجُلٌ مِسْكِيْنٌ قَدِ انْقَطَعَتْ بِيَ الْجِبَالُ فِيْ سَفَرِيْ فَلَا بَلَاغَ لِيَ الْيَوْمَ
اِلَّا بِاللّٰهِ ثُمَّ بِكَ اَسْاَلُكَ بِالَّذِيْ اَعْطَاكَ الخ الحديث

हदीस का मफ़हूम यह है कि फ़रिश्ते ने कहा कि मैं एक मोहताज आदमी हूँ मेरा सामाने सफ़र जाता रहा अब मैं अल्लाह की फिर तेरी मदद के बग़ैर घर नहीं पहुँच सकता। तुझ से उस ख़ुदा के वास्ते मैं मांगता हूँ कि जिसने तुझ को तन्दरुस्त व शिफ़ायाब और मालदार किया। (मिश्कात, बाबुल निफ़ाक़, फ़स्ले सालिस, सफ़हा 166)

हदीस : **हज़रत अबू मसऊद सहाबी अपने ग़ुलाम को मार रहे थे तो उसने कहा मुझ को मत मारिये, छोड़ दीजिये मैं आपको ख़ुदा का वास्ता देता हूँ तो वह मारते रहे फिर उसने कहा रसूलुल्लाह के वास्ते मुझ को छोड़ दीजिये तो उन्होंने उसको छोड़ दिया।**

(सहीह मुस्लिम, जिल्द 2, बाब सोहबतुल ममालीक, सफ़हा 52)

हदीस : एक नाबीना सहाबी को रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने आँख की रौशनी हासिल करने के लिए जो दुआ सिखाई वह हदीस में इस तरह है :

"या अल्लाह मैं तुझ से सवाल करता हूँ और तेरे नबी के वास्ते से तेरी तरफ़ मुतवज्जेह होता हूँ जो रहमत वाले नबी हैं और या रसूलल्लाह मैं आपके वास्ते अपने रब की तरफ़ मुतवज्जेह होता हूँ ताकि मेरी यह परेशानी दूर हो जाए। या अल्लाह तू हुज़ूर की शफ़ाअ़त मेरे हक़ में क़बूल फ़रमा।

(तिर्मिज़ी, बाबुद्दअवात, सफ़हा 196, मिश्कात, बाबे बाबुद्दुआ, सफ़हा 219)

इन हदीसों को पेशे नज़र रख कर यह बात साफ़ हो जाती है कि अल्लाह तआला की बारगाह में रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम को वसीला बना कर दुआ मांगना भी जाइज़ है और ख़ुदाए तआला के नाम का वास्ता देकर यानी अल्लाह के नाम पर हुज़ूर से मांगना भी जाइज़ है।

इसीलिए आलाहज़रत ने फ़रमाया :

या इलाही रहम फ़रमा मुस्तफ़ा के वास्ते
या रसूलल्लाह करम कीजिये ख़ुदा के वास्ते

यह तो रहा रसूले ख़ुदा सय्यिदे आलम सल्लल्लाहु तआला अलैहि वसल्लम का मामला जिनका नाम अल्लाह तआला के नाम के साथ कलिमे, अज़ान और नमाज़ के अलावा क़ुर्आने करीम में सैकड़ों जगह है। उनसे मांगना ख़ुदा से मांगना है। उन तक पहुँचना ख़ुदा तक पहुँचना है उनका ज़िक्र ख़ुदा का ज़िक्र है। बाक़ी रहा बुज़ुर्गों का मामला तो किसी बुज़ुर्ग का नाम लेकर डाइरेक्ट उनसे मदद मांगना मसलन ऐ फ़लां बुज़ुर्ग और फ़लां अल्लाह वाले मेरी मदद करो, मुझ पर करम करो, मुझ को फ़लां चीज़ अता करो तो अगर वाक़िई वह बुज़ुर्ग ख़ुदाए तआला की अता से साहिबे तसर्रुफ़ व इख़्तियार हैं और उनकी विलायत मशहूर व मारूफ़ है या मजमअ़ अलैह (जिस पर सब का इत्तिफ़ाक़ हो) है तो यह अक़ीदा रख कर कि बग़ैर ख़ुदाए तआला की मर्ज़ी के कोई किसी को ज़र्रा बराबर नफ़ा व नुक़सान नहीं पहुँचा सकता, यह इस्तिग़ासा और इस्तिमदाद जाइज़ है। लेकिन मेरी नज़र में मौजूदा दौर के हालात, इल्म की कमी और जाहिलों की

कसरत और नाअहल पीरों और मुरीदों की जिहालत के पेशे नज़र अवाम के लिए डाइरेक्ट पुकारने के बजाए अफ़ज़ल और ज़्यादा बेहतर यह है कि यूँ कहे कि "या अल्लाह फ़लां बुज़ुर्ग के वसीले और सदक़े में तू मुझ को फ़लां चीज़ अता फ़रमा दे।" क्यूँकि शैतान अभी मरा नहीं और शिर्क का दरवाज़ा बन्द नहीं हुआ, शैतान को बहकाते और जाहिलों को बहकते और बिदकते देर नहीं लगती और शिर्क से बड़ा कोई गुनाह नहीं उसके शुबहे से भी क़ौम को बचाना निहायत ज़रूरी है। इसी तरह अल्लाह तबारक व तआला की ज़ात व सिफ़ात में शिर्क और उसके शुबहात व ख़्यालात तक से दूर रहना और दूर रखना बेहद लाज़िम व ज़रूरी है और आज के दौर में ऐसे लोगों की भी अब कमी नहीं है जो पीरों में उलझ कर रह गए हैं और अल्लाह को भूल गए हैं।

इसके अलावा इस तरह दुआ मांगने में "अल्लाह" का नाम भी आ जाता है और अल्लाह का नाम मुँह से निकल जाना सबसे बड़ी इबादत है। ज़िक्रे इलाही ही तो मक़सदे ज़िन्दगी है और अल्लाह के मुक़द्दस बन्दों अम्बियाए किराम और मलाइका इज़ाम और अहले ईमान की रूहानी ग़िज़ा है। अल्लाह तआला का नाम सुनने और लेने में जिसको जितनी लज़्ज़त हासिल हो उसका ईमान उतना ही ज़्यादा है। हदीसे पाक में है कि रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआला अ़लैहि वसल्लम हर वक़्त अल्लाह तआला का ज़िक्र फ़रमाते थे। आलाहज़रत फ़रमाते हैं "ज़िक्रे इलाही मक़सूद अहम व आज़म है।" हदीस मे है रसूले खुदा सल्लल्लाहो अलेहवसल्लम ने फ़रमाया

اذکرو اللہ حتی یقولو اانہ مجنون

अल्लाह का ज़िक इतना ज़्यादा करो कि लोग तुम्हें दीवाना कहने लगें (फ़तावा रिज़विया जिल्द 8 सफ़हा 836 मतबुआ़ पोरबन्दर)

एक और हदीस में है एक साहब ने पूछा या रसूल अल्लाह इस्लाम में तो बहुत बातें हैं सब मेरे बस की नहीं कोई एक बात बता दीजिये जिसको मैं मज़बूती से थामे रहूं हुजूर ने फ़रमाया

لایزال لسانک وطبامن ذکر اللہ

अल्लाह के ज़िक से हमेशा अपनी ज़बान तर रखो (तिरमिज़ी जिल्द 2 सफ़हा 173 दुआओं का ब्यान)

इसी से मुतस्सिल दूसरी हदीस मे है हुजूर सल्लल्लाहो अले ह वसल्लम से पूछा गया कि क़यामत के दिन सबसे बड़ मर्तबे वाले कौन लोग होंगे तो फ़रमाया

الذاکرین اللہ کثیراً

अल्लाह का ज़्यादा ज़िक्र करने वाले।

एक और हदीस मे है हुजूर फ़रमाते हैं जो कसरत से अल्लाह का ज़िक न करे वह ईमान से बेज़ार हो गया (फ़तावा रिज़विया जिल्द 8 सफ़हा 536 मतबूआ़ पोरबन्दर)

ख़ुलासा यह कि बुज़ुर्गाने दीन औलिया किराम से इस्तिग़ासा व इस्तिमदाद (मदद मांगना) जाइज़ है लेकिन अल्लाह तआ़ला से दुआ मांगने का मरतबा जुदा है। ख़ासकर जब उसमें अल्लाह वालों का वसीला शामिल हो तो सोने पर सुहागा है, नूरुन अ़ला नूर है। ख़ासकर आज के दौर में कि अब बुज़ुर्ग तो रहे नहीं इल्ला माशाअल्लाह मगर जिस को देखो वह कह रहा है कि मेरे मियाँ ने मेरा

फ़लां काम बना दिया, मुझ पर बड़ा करम फ़रमा दिया, ऐ मेरे मियाँ मेरी मदद करो। मियाँ तो सही मअ़ना में आजकल नज़र आते नहीं ख़्वामख़्वाह की निदाओं, पुकारों की भरमार चारों तरफ़ से अलमदद की यलग़ार है। सय्यिदना ग़ौसे आज़म शैख़ अ़ब्दुलक़ादिर जीलानी रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु, ख़्वाजा ग़रीब नवाज़ मुईनुद्दीन चिश्ती हसन चिश्ती रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु वग़ैरहुमा जैसे मशाइख़े किबार और बअताए इलाही साहिबे तसर्रुफ़ बुज़ुर्गों के लिए जिस इस्तिमदाद और इस्तिग़ासे को जाइज़ क़रार दिया गया था वह आज के सज्जादानशीन पीरों के लिए हो कर रह गया है जिन में बहुत से नाअहल और नाम निहाद हैं।

वहाबियों से इख़्तिलाफ़ इस बात का है कि उन्होंने अल्लाह तआ़ला के अलावा किसी और से मदद मागने और पुकारने को और निदाए ग़ैरुल्लाह को मुतलक़न शिर्क व कुफ़्र कह डाला और भोले-भाले अवाम अहले इस्लाम को इन बातों की वजह से काफ़िर व मुशरिक बना डाला और यह उनका बड़ा ज़ुल्म और ज़्यादती है। "तक़वियतुल ईमान" वग़ैरह किताबों में जगह-जगह आ़म मुसलमानों के लिए यह शिर्क व कुफ़्र के फ़तवे देखे जा सकते हैं। लेकिन ख़्याल रहे कि सुन्नी उलमा ने भी यह नहीं कह दिया है कि बुज़ुर्गों को पुकराने और उनसे मदद मांगने की वजह से अल्लाह को भूल जाना और उसका ज़िक्र और उसका नाम और उससे दुआ मांगना छोड़ देना जबकि यह ख़ालिस इबादत और इन्सान की पैदाइश का सब से बड़ा मक़सद है। मैंने अपने पीर व मुरशिद हुज़ूर मुफ़्तीए आज़मे हिन्द अ़लैहिर्रहमह को देखा कि उनके मुँह से उठते, बैठते,

चलते, फिरते हर वक़्त "या अल्लाह" जारी रहता था। और यह बेहतरीन आदत है मेरे पास कैसेट में भी हज़रत की यह आदत रिकार्ड है और यह "हर वक़्त अल्लाह का ज़िक्र करना" रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की सुन्नत है जैसा कि हदीस में हज़रते आ़इशा सिद्दीक़ा रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हा से मरवी है।

और सय्यिदी आलाहज़रत मौलाना शाह अह़मद रज़ा ख़ाँ बरेलवी अ़लैहिर्रह़मतु वर्रिद़वान ने जो फ़ारसी में शजरा शरीफ़ के शेर लिखे हैं उसके हर शेर में अपने सिलसिले के तमाम बुज़ुर्गों से निदा और ख़िताब के ज़रिए मदद मांगी है लेकिन अख़ीर में अल्लाह तआ़ला की बारगाह में यूँ अर्ज़ करते हैं :

तर्जमा : (1) या अल्लाह मैंने उन शेरों का दामन थाम लिया है अपने उस बन्दे का उनके कुत्तों में शुमार फ़रमा ले और हमेशा मेरी मदद फ़रमा।

(2) ऐ अल्लाह तेरी तरफ़ बग़ैर वसीले के मुतवज्जेह होना तुझ को पसन्द नहीं है इसलिए तेरे हर दोस्तों से रज़ा कह रहा है "मेरी मदद फ़रमाइये।"

(3) तेरे महबूब बन्दे तेरी ही मदद का मज़हर हैं और मैंने जो उनसे मदद तलब की है उससे मेरा मक़सद यह है कि "ऐ नबियों और वलियों के रब मेरी मदद फ़रमा।"

(4) तेरा न होकर कोई किसी की मदद नहीं कर सकता बल्कि जो तेरा नहीं है वह तो बज़ाते ख़ुद (स्वंय) कुछ है ही नहीं। ऐ सच्चे माबूद सबकी इन्तिहा तेरी ही ज़ात तक है। ऐ अल्लाह तू मेरी मदद फ़रमा। (हदाइक़े बख़्शिश, **हिस्सा दोम, सफ़हा 39,** मतबूआ़ क़ादिरी बुक डिपो, बरेली)

आलाहज़रत के यह शेर ख़ालिस मज़हबे अहलेसुन्नत हैं कि बुज़ुर्गाने दीन का वसीला भी है उनसे इस्तिग़ासा व इस्तिमदाद भी है, महब्बत व अक़ीदत भी है लेकिन ख़ुदाए तआला को भूल कर नहीं बल्कि सब कुछ उसी की तरफ़ से और उसी का जानकर और उसके ज़िक्र और उसकी याद से दिल व ज़बान को ग़ाफ़िल न रख कर है। और वह भी क्या मुसलमान जो अल्लाह के ज़िक्र से ग़ाफ़िल हो जाये और इसमें भी कोई शक नहीं कि ज़माना-ए-पाके रिसालत व सहाबा और ताबेअीन और उसके बाद भी उम्मते मुस्लिमा के हर तबक़े में चलते फ़िरते उठते बैठते खाते पीते सोते जागते अल्लाह का जिक्र करने और मुसीबत व परेशानी में अल्लाह से दुआ मांगने का रिवाज और माहौल रहा है हाँ अल्लाह वालो से मदद मांगने और उन्हें मुसीबत के वक़्त पुकारने की मिसालें भी मिलती हैं लेकिन वहाबियों ने बे सोचे समझे उसे शिर्क व कुफ्र कह दिया उलेमा-ए-हक़ ने उसको शिर्क न कहकर जाइज़ बताया क्योकि बुज़ूर्गों को पुकारने और उनसे मदद मांगने वाला अल्लाह ही को मालिके हक़ीक़ी समझ रहा है लेकिन मेरे भाईयो किसी बात का जाईज़ होना और बात है और राईज होना और बात है मेरी समझ के मुताबिक रिवाज और आदत अल्लाह ही के ज़िक की और उससे दुआ मांगने और उसे पुकारने की होना चाहियें और उसके नबी पर दुरूद पढ़ने की। आला हज़रत फ़रमाते हैं अल्लाह का ज़िक्र सबसे ज़्यादा फ़ज़ीलत वाला अमल है बल्कि सारे अमाल की जड़ यही है यहां तक कि वह नमाज़ जो ईमान के बाद सारे कामों में अफ़ज़ल है उसका मक़सद भी

अल्लाह का ज़िक्र है (फ़तावा रिज़विया जिल्द 23 सफ़हा 178)

यहां यह भी बताते चलें कि अल्लाह व रसूल का ज़िक्र छोड़कर बुजूर्गों और पीरों का हद से ज़्यादा ज़िक्र करना कौम में इख़्तिलाफ़ का भी सबब है। ख़ानकाही सिलसिलो के झगड़े इसी से जन्म लेते हैं क्योंकि बुजूर्ग व पीर हर सिलसिले और ख़ानकाह के अलग अलग हैं और अल्लाह व रसूल सबके लिये एक हैं तो खुदा व रसूल को छोड़कर सिर्फ़ अपने अपने बुजूर्गों के ज़िक्र में लग जाने से गिरोहबन्दी पैदा होती है इससे मेरा मक़सद यह नही है कि बुजूर्गो। का नाम न लिया जाये हां हर बात की एक हद ज़रूर है। अल्लाह व रसूल को भूल कर या उनका ज़िक्र छोड़कर सिर्फ़ बुजूर्गो का नाम लेते रहने में मुझको भलाई नज़र नही आ रही अपने अपने बुजूर्गों को याद करें याद रखें और यादगारें मनायें लेकिन खुदा व रसूल के नाम पर उम्मत को इकठ्ठा रहने दें।

और यह जो कहा जाता कि अल्लाह तआ़ला के महबूब बन्दों का ज़िक्र अल्लाह ही का ज़िक्र है तो यह बात हक़ है लेकिन मैं तो इसका मतलब यह समझता हुँ कि अल्लाह के नाम के बाद या उसके ज़िक्र के साथ महबूबाने खुदा अम्बिया व औलिया का ज़िक्र भी हो जाये तो इसमे कोई ख़राबी नही बल्कि अच्छी बात है लेकिन इसका मतलब यह समझ लेना कि जब उनका ज़िक्र ज़िक्रे खुदा है तो फिर खुदाये तआ़ला का ज़िक करने की ज़रूरत ही नही रही यह एक ग़लत ख़्याल है और ज़िक्रे इलाही से बन्दों को रोकने की एक चाल है कि जिसके लियें इंसान को पैदा किया गया

है और हर ज़माने में बन्दगाने खुदा की ज़बान जिससे तर रही वह अल्लाह ही का ज़िक्र है और यही वह गिज़ा है जिससे उनको तसल्ली मिली है और बुज़ुर्गों को मानने और उनका मुरीद होने का मक़सद भी यही है कि इस ज़रिये से अल्लाह के ज़िक और उसकी इबादत में मज़ा आने लगे।

बुज़ुर्गों से इस्तिग़ासे और इस्तिमदाद की हक़ीक़त

बुज़ुर्गों से मदद मांगने और उनसे मुरादें चाहने की हक़ीक़त यह है कि जिस तरह दुनिया में बाज़ लोग अपने से ज़्यादा ताक़त व क़ुदरत रखने वालों से मदद माँगते हैं। ग़रीब मालदारों के, कमज़ोर ताक़तवरों के, मज़लूम हाकिमों के दरवाज़ों के चक्कर लगाते हैं हम देखते हैं कि कोई ताक़तवर किसी नातवां, कमज़ोर पर ज़ुल्म करता है तो वह उससे ज़्यादा ताक़तवर की पनाह लेता है। स्कूल में किसी कमज़ोर बच्चे को बड़ा बच्चा मारे तो वह उस्ताद से शिकायत करता है। ग़रज़ यह कि मदद चाहना, पनाह लेना, शिकायत करना, इन्सानी समाज का अहम हिस्सा है, जिसमें किसी को शक नहीं लेकिन अल्लाह तआ़ला के मख़सूस बन्दे जिन्हें अम्बियाए किराम या औलियाए इज़ाम कहा जाता है। उन्हें अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़ज़्ल व करम से दुनियावी हाकिम, बादशाहों ताक़त व क़ुव्वत वालों से कहीं ज़्यादा फ़रियाद पूरी करने की ताक़त व क़ुव्वत, हुकूमत व ताक़त अता फ़रमा दी है। उनमें से बहुत से विसाल के बाद भी मज़ारों में रह कर तसर्रुफ़ फ़रमाते हैं और अल्लाह तआ़ला की अता से कमज़ोरों की मदद करते हैं इससे

ख़ुदाए तआ़ला की ख़ुदाई में कुछ फ़र्क़ नहीं पड़ता आख़िर फ़रिश्तों को भी तो उसने रोज़ी, रोटी पहुँचाने बारिश बरसाने खेतियाँ उगाने के लिए मुक़र्रर फ़रमाया जैसा कि कुर्आने करीम में है فَالْمُدَبِّرَاتِ اَمْرًا यानी क़सम उन फ़रिश्तों की जो कामों की तदबीर फ़रमाते हैं। हज़रते ईसा अ़लैहिस्सलाम के बारे में फ़रमाया गया "हमने पाक रूह (जिब्रीले अमीन) के ज़रिए उनकी मदद फ़रमाई।"

तो उस सब का हासिल यही है कि मज़हबे अहलेसुन्नत वलजमाअ़त एक सीधा सच्चा और दरमियानी रास्ता है और ग़ौर करने से अन्दाज़ा होता है कि वह वही है जिसे लोग आज मसलके आलाहज़रत कहते हैं इसका निचोड़ और ख़ुलासा इन चन्द जुमलों के ज़रिए अदा किया जा सकता है।

मज़हबे अहलेसुन्नत एक नज़र में

(1) अल्लाह तआ़ला के अलावा किसी की इबादत न की जाए और उसके महबूब बन्दों से महब्बत व अ़क़ीदत रखी जाए।

(2) अल्लाह वालों का नाम भी लिया जाए और उनका काम भी किया जाए यानी उनके रास्ते पर चला जाए और यही अस्ल महब्बत व अ़क़ीदत है। जो लोग अल्लाह वालों का नाम तो लेते हैं मगर उनके काम और रास्ते को भूल गए वह लोग सख़्त ग़लत रास्ते पर हैं।

(3) अम्बिया व औलिया भी अल्लाह तआ़ला के बन्दे हैं मगर आ़म लोगों में और उनमें बहुत बड़ा फ़र्क़ है जैसे ग़ुलाम और आक़ा, फ़क़ीर और बादशाह का फ़र्क़, मोहताज व मुख़्तार का फ़र्क़।

(4) मज़हबे अहलेसुन्नत अल्लाह वालों से महब्बत करना है लेकिन अल्लाह तआ़ला को भूल जाना नहीं, जो लोग अल्लाह तआ़ला को भूल गए उसकी इबादत नहीं करते,

नमाज़, रोज़ा, ज़कात से सरोकार नहीं रखते और नियाज़ व फ़ातिहाओं, उर्सों में लगे हुए हैं वह सख़्त ग़लती पर हैं, बड़े धोके में हैं क्यूँकि हक़ यह है कि जब तक फ़र्ज़ ज़िम्मे पर बाक़ी रहता है कोई नफ़्ल क़बूल नहीं होता।

(5) हज़राते अम्बियाए और औलियाए इज़ाम अ़ला सय्यिदहुम व अ़लैहिस्सलातु वस्सलाम को जो इख़्तियारात, मरतबे और दरजात हासिल हैं वह सब अल्लाह तआ़ला ने अपने फ़ज़्ल व करम से अता फ़रमाए हैं और अल्लाह तआ़ला से कोई ज़बरदस्ती या छीन कर या बांट कर नहीं ले सकता क्यूँकि उसका कोई शरीक, साझी और हिस्सेदार नहीं है बल्कि जिसको चाहता है अपनी मर्ज़ी और पसन्द से अता फ़रमाता है और जब जिस से जो चाहे देकर छीन ले।

اِلَّا مَاوَعَدَهٗ فَاِنَّهٗ لَا يُخْلِفُ الْمِيْعَادُ

(6) हज़राते अम्बियाए किराम और औलियाए इज़ाम के बारे में अगर कोई यह अ़क़ीदा रखे कि वह छोटे अल्लाह या छोटे ख़ुदा या छोटे माबूद हैं तो ऐसा अ़क़ीदा रखने वाला काफ़िर व मुशरिक है क्यूँकि अल्लाह तआ़ला की किसी भी सिफ़त में किसी भी हैसियत से कोई उसका शरीक और साझी नहीं, सब उसके पैदा किये हुए और उसके बन्दे ही हैं। आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत फ़रमाते हैं "कोई मख़्लूक़ कैसी ही अशरफ़ व आला हो उसकी शरीक किसी हैसियत से किसी दरजे में नहीं हो सकती।" (एतक़ादुल अह्बाब बहवालए सालनामा "अहलेसुन्नत की आवाज़" मारहरह मुतहरह, अक्तूबर 2004, सफ़्हा 16)

(7) जो लोग अल्लाह के नेक बन्दों ख़ासकर सय्यिदुलअम्बिया महबूबे ख़ुदा हुज़ूर सय्यिदना व मौलाना मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की शान में गुस्ताख़ियाँ

करते हैं वह काफ़िर हैं, मुसलमान नहीं हैं।

(8) जो पीर व मुरीद नमाज़, रोज़ा वग़ैरहा इबादात इलाहिय्यह का इन्कार करते हैं और होश व हवास के बावुजूद इन बातों पर अमल नहीं करते और शरीअ़त को तरीक़त से अलग करते, अहकामे शरअ़ का इन्कार करते हैं यह सब गुमराह व बद्दीन हैं और दूसरों को गुमराह करने वाले हैं।

(9) नियाज़ व फ़ातिहा, मीलाद व सलाम, उर्स वग़ैरहा काम मुरव्विजा सूरतों में बिदआ़ते हसना हैं और अच्छे काम हैं लेकिन शरअ़न फ़र्ज़ व वाजिब नहीं हैं और नमाज़, रोज़ा, ज़कात वग़ैरा फ़र्ज़ हैं, ख़ुदाई क़र्ज़ हैं जिनके बग़ैर इस्लाम नामुकम्मल है। हाँ नियाज़ व फ़ातिहा को भी करते रहना चाहिए क्यूँकि यह काम हिन्दुस्तान में अहलेसुन्नत की पहचान हैं।

(10) हज़राते अम्बियाए किराम और औलियाए इज़ाम हम आ़म लोगों की तरह बशर नहीं उनको अपना बड़ा भाई समझना और कहना भी बेअदबी है बल्कि वह हमारे आक़ा हैं हम उनके ग़ुलाम हैं, हम उनके दर के फ़क़ीर हैं वह बादशाहों के बादशाह हैं।

(11) अहलेसुन्नत के अलावा तमाम फ़िरक़े मसलन क़ादयानी, वहाबी, देवबन्दी, मौदूदी, राफ़िज़ी, ख़ारिजी, चकड़ालवी, नेचरी सब बातिल और ग़ैर इस्लामी हैं।

(12) अल्लाह तआ़ला बग़ैर वसीले के देने पर भी क़ादिर है और जिसको जब जो चाहे जैसे चाहे अता फ़रमा दे लेकिन वसीला उसको पसन्द है और उसको राज़ी करने के लिए और उसकी नेमतें हासिल करने के लिए उसके नेक बन्दों को वसीला बनाना बिला शक जाइज़ है लेकिन उसके नेक बन्दे वह ही हैं जो उसके बताए हुए रास्ते पर चलते हैं और उसके रसूल की पैरवी करते हैं।

अपने भी ख़फ़ा मुझसे हैं बेगाने भी नाख़ुश
मैं ज़हरे हलाहल को कभी कह न सका क़न्द

अशख़ास परस्ती और अअ्माल परस्ती के दरमियान

यह उनवान ज़रूर नया है लेकिन इसका मतलब मफ़हूम वही है जो सब अभी आप पढ़ कर आए हैं। अशख़ास परस्ती से हमारा मतलब व मक़सद इस्लामी शख़्सियतें यानी हज़राते अम्बियाए किराम और औलियाए इज़ाम से महब्बत व अक़ीदत है उनसे इश्क़ और दिल में उनकी वक़अत (इज़्ज़त) और क़दर और मन्ज़िलत है और आमालपरस्ती से हमारी मुराद नमाज़, रोज़ा, ज़कात और दीगर अहकामे शरअ़ फ़राइज़े इलाहिय्यह की पाबन्दी, हराम कामों से बचना और नेकियों की तरफ़ रग़बत करना है और अल्लाह तआ़ला के महबूब बन्दों के रास्ते पर चलना है और इस्लाम इन दोनों कामों के मजमुए का नाम है यानी ख़ासाने ख़ुदा हज़राते अम्बिया किराम औलियाए इज़ाम से अक़ीदत व महब्बत भी ज़रूरी है और इन महबूबाने ख़ुदा के रास्ते पर चलना भी ज़रूरी है बल्कि असली महब्बत यही है।

मगर अफ़सोस कि आज काफ़ी मुसलमान इस दरमियान के सीधे और सच्चे रास्ते पर क़ाइम न रह सके, कुछ इधर और कुछ उधर को भाग पड़े।

अहले इस्लाम में एक बड़ी तादाद आज उन लोगों की है जो अशख़ास परस्ती को ही इस्लाम समझे हुए हैं और इसका मतलब और इस्लामी शख़्सियतों से महब्बत का मअ़ना उन्होंने सिर्फ़ बुज़ुर्गों का नाम लेना, उनके नाम के नारे लगाना, उनसे मदद मांगना, उनकी नियाज़ व नज़्र

और फ़ातिहा कराना, उनके मज़ारों पर हाज़िरी देना, वहाँ चादरें चढ़ाना समझ लिया और यह लोग इन बुज़ुर्गों की राह व रविश को भुला बैठे, उनके अख़लाक़ व किरदार, चाल चलन को बिल्कुल भुला बैठे, इन्हें इशा, फज्र से कोई मतलब नहीं, ज़ुहर व अस्र व मग़रिब की नमाज़ की उन्हें फ़ुरसत नहीं। यह बुज़ुर्गों का नाम लेकर उनकी नियाज़ के नाम पर ख़ूब उम्दा-उम्दा पुलाव, बिरयानी, खिचड़े और मालीदे पका कर और पेट भर कर खा कर बजाए इशा की नमाज़ पढ़ने के गाने सुन कर सनीमे देख कर सो जाते हैं और सवेरे को दिन चढ़े आठ-आठ बजे सोकर उठते हैं। यह बुज़ुर्गों से महब्बत के दावेदार तो ज़रूर हैं मगर उनके सुबह व शाम, सूरत व सीरत, चाल चलन देख कर बजाए बुज़ुर्गों के काफ़िरों और ग़ैर मुस्लिमों की याद आती है जब कि मुरीद वह है जिसको देख कर पीर की याद आ जाए और आशिक़ व मुहिब्ब वह है जिसको देख कर महबूब की याद आ जाए और बुज़ुर्ग व पीर वह है जिनको देख कर अल्लाह व रसूल की याद आ जाए। ऐसे लोग यक़ीनन सही रास्ते पर नहीं हैं।

भाईयो! बुज़ुर्गाने दीन के मज़ाराते मुक़द्दिसा की हाज़िरी, उनकी नियाज़ व फ़ातिहा और उर्स वग़ैरह करना यह सब काम बिला शक जाइज़ व मुस्तहसन हैं मगर सिर्फ़ इन्हीं को इस्लाम समझ लेना और हराम कामों से न बचना और नमाज़, रोज़े और ज़कात और दीगर अहकामे शरअ़ की पाबन्दी न करना एक बड़ी भूल है जिसकी तलाफ़ी ज़रूरी है। दुआ है कि ख़ुदाए तआ़ला हर मुसलमान को नमाज़ी और दीनदार बनाए और इसके साथ-साथ बुज़ुर्गों से अक़ीदत व महब्बत के इज़हार के लिए उनकी बारगाहों की हाज़िरी की सआ़दत नसीब फ़रमाए।

अअ्माल परस्ती

इससे मेरी मुराद वह लोग हैं जो बज़ाहिर अच्छे अअ्माल, अह्कामे शरअ् पर अमल पैरा नज़र आते हैं मगर उन्हें इस का नशा सवार है और सिर्फ़ इसी को इस्लाम समझे हुए हैं और इसी नशे में ख़ुदा के महबूब बन्दों की बारगाह में गुस्ताख़ियाँ करते, उनके नाम व ज़िक्र से चिढ़ते हैं, उन्हें ज़िक्रे ख़ुदा और रसूल मुयस्सर नहीं, इस्लाम की अ़ज़ीम शख़्सियतों से अ़क़ीदत उन्हें हासिल नहीं, यह लोग बड़े धोके और सख़्त ख़सारे (नुक़सान) में हैं, सिर्फ़ नाम के मुसलमान हैं क्यूँकि इस्लाम अअ्माल परस्ती और अशख़ास परस्ती दोनों के मजमुए का नाम है और यही मज़हबे अहलेसुन्नत और दरमियानी रास्ता है।

बढ़ते हुए उर्स व मज़ार

शरीअ़त के दाइरे मे रह कर औलियाए किराम की तारीख़े विसाल पर घरों, मस्जिदों में या उनके मज़ारात पर हाज़िर होकर उनके ईसाले सवाब के लिए क़ुर्आन ख़्वानी, सदक़ा व ख़ैरात, खाने पका कर मुसलमानों को खिलाना या तक़सीम करना वग़ैरहा काम यक़ीनन जाइज़ व मुस्तहब और अच्छा काम है, इसी को "उर्स" कहते हैं और ख़ास क़ब्र की जगह को छोड़ कर उसके चारों तरफ़ दीवारें खड़ी करके जो इमारत तय्यार कराई जाती है उसको "मज़ार" कहते हैं। सहाबा व ताबेईन के ज़माने में इन कामों का रिवाज व एहतमाम नहीं था, बाद में हुआ लेकिन कोई ग़लत नहीं हुआ, अच्छी बातों और अच्छे कामों के राइज करना भी अच्छा है। हदीस में है फ़रमाया रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम

ने कि "जिसने इस्लाम में कोई अच्छा तरीक़ा निकाला तो उसको उस का अज्र (सवाब) मिलेगा और जितने लोग उस पर अमल करेंगे उन सब का अज्र भी उसको मिलेगा।" (सहीह मुस्लिम, बहावलए मिश्कात, सफ़हा 33)

मगर यह उर्स का एहतमाम और मज़ारात बनाना उन्हीं ख़ास बुज़ुर्गों के लिए ज़ेब देता है कि जिनकी विलायत ज़ाहिर व मुसल्लम हो और इस्लाम के लिए उनकी ख़िदमात नुमायाँ हैसियत रखती हों, मगर आजकल उर्स करने और मज़ार बनाने की होड़ चल रही है और लोग हद से आगे बढ़ गए हैं। एक-एक करोड़ रुपये के इस्टीमेट से मज़ार बनाना और लाखों लाख रुपया हर साल उर्सों के नाम पर ख़र्च करना वह भी ऐसे लोगों के लिए कि जो औलियाए किराम के मरतबे के क़रीब भी नहीं पहुँचे हैं बल्कि ज़्यादातर देखने में आ रहा है कि पीरों और मौलवियों के ख़लीफ़े, सज्जादे, बेटे, पोते, परपोते वग़ैरहुम अपने बाप, दादाओं के उर्सों और मज़ारों में इसलिए दिलचस्पी ले रहे हैं कि इस ज़रिए से इनका ख़ूब दुनियावी भला होता है और इन्हें ख़ूब शोहरत हासिल होती है। भाईयो! सिर्फ़ उर्स करने या शानदार मज़ार बनाने से विलायत ज़ाहिर नहीं होती, विलायत तो जब ख़ुदाए तआ़ला की मर्ज़ी होती है तो ख़ुद ही मशहूर व मारूफ़ हो जाती है। पेशावर मुक़र्रिर और शाइरों के तयशुदा लम्बे-लम्बे नज़राने देकर बुलाने और इस ज़रिए से भीड़ जुटाने से कुछ होने का नहीं है वह तो अल्लाह की कशिश होती है जो मख़लूक़ को ख़ुद ही खींच लेती है और क़व्वालों, लम्बे-लम्बे नज़राने तय करने वाले पेशवर मुक़र्रिरों और शाइरों को बुलाने से बेहतर तो यह है कि सिर्फ़ क़ुर्आन ख़्वानी करा दी जाए और नियाज़ व फ़ातिहा की रस्म मुस्तहब अदा कर दी जाए चाहे कोई आए या न आए। ख़िलाफ़े शरअ़ हरकतों के ज़रिए मजमे

बढ़ाने से इज़्ज़त न आप को मिलेगी न आपके उन बाप दादाओं को जो नीचे लेटे हैं। इज़्ज़त तो अल्लाह तआला के दस्ते कुदरत में है जिसको चाहता है अता फ़रमाता है और दुनियावी इज़्ज़त व शोहरत की इस्लाम में कोई ख़ास अहमियत नहीं है इज़्ज़त व अज़मत तो यह है कि खुदाए तआला क़ियामत के रोज़ मैदाने महशर की भीड़ में सुर्ख़रूई अता फ़रमा दे और फ़क़ीर वही जिसकी नज़र उस दिन पर लगी है।

कितने ही पीरों और मौलवियों के मुरीदीन और मोतक़िदीन को मैं देख रहा हूँ कि वह इसलिए बहुत परेशान और दुखी हैं और यह सदमा उन्हें हलाक किए दे रहा है कि उनके बाप दादा या पीर साहब को अमतौर से लोग जानते नहीं उनके कारनामों और करामतों से लोग वाक़िफ़ नहीं और उन्हें जो मिल जाए उसको इन पीरों, मौलवियों यानी अपने बाप दादाओं के कारनामे सुनाने के आलावा गोया कि उन्हें और कोई काम ही नहीं है। ठीक है वाक़ई अगर कोई अच्छी और नेक सालेह शख़्सियत है तो उससे लोगों को वाक़िफ़ कराना अच्छी बात हैं लेकिन इसके लिए ज़्यादा फ़िक्रमन्द और परेशान होने की ज़रूरत नहीं है। आप अपने आप को संभालियो अगर आपके बाप, दाद या पीर साहब ने कोई दीनी कारनामा अन्जाम दिया है या कोई नेकी की है तो कोई जाने न जाने अल्लाह तआला जान रहा है और फ़क़ीरों की दुनिया में उसका जानना ही काफ़ी है और वह बेहतरीन सिला और बदला देने वाला है और वह धोका देने से पाक है। سَنَجْزِي الشَّاكِرِيْنَ ٥ (तर्जमा : हम शुक्र करने वालों को जज़ा देते हैं) और لَهُمْ اَجْرُهُمْ عِنْدَ رَبِّهِمْ (तर्जमा : उनके लिए बदला है उनके रब के पास) के मुज़दे और बशारतें (ख़ुशख़बरियाँ) अहले ईमान के लिए काफ़ी है और बजाए हमारे कहने के ख़ुद ही अपने दिल पर हाथ रख कर और थोड़ी देर के लिए ही सही ख़ुदा तौफ़ीक़

दे तो नफ़्स को मार कर अपने ही दिल से पूछिये कि यह जो अपने बाप, दादाओं के मज़ारात बनाने और उर्स करने में आप लग गए हैं यह उनकी महब्बत में या आपको ख़ुद अपनी फ़िक्र है? और अल्लाह ख़ूब जानता है कि किस की नियत में क्या है। वह दिल के इरादों से पूरी तरह वाक़िफ़ है और क़ियामत का दिन उसने भेदों के खोलने के लिए ही मुक़र्रर फ़रमाया है।

मुझे एतिबार के क़ाबिल ज़रिओं से मालूम हुआ है कि ताजदारे अहलेसुन्नत हज़रत मुफ़्तीए आज़मे हिन्द मौलाना शाह मुस्तफ़ा रज़ा ख़ाँ रहमतुल्लाहि तआला अलैह की हयाते मुबारका ही में उनके हक़ीक़ी भतीजे और दामाद हज़रत मौलाना शाह मुफ़्ती इब्राहीम रज़ा ख़ाँ साहब उर्फ़ जीलानी मियाँ अलैहिर्रहमह का विसाल हो गया था जो साहिबे इल्म व फ़ज़्ल थे। लोगों ने हज़रत से उनके उर्स की इजाज़त चाही तो हज़रत ने फ़रमाया :

"क्या सब का उर्स होगा? मैं मरूंगा तो मेरा भी उर्स होगा? आलाहज़रत के अलावा किसी का उर्स नहीं होगा।"

इस वाक़िए के रावी हज़रत मौलाना मुफ़्ती हबीब रज़ा ख़ाँ साहब बरेलवी हैं।

"भाईयो! देखा आपने यह है फ़क़ीरी और तसव्वुफ़। आज लोग फ़क़ीरी के मअ़ना ही नहीं जानते। ख़ुद आलाहज़रत इमामे अहलेसुन्नत मौलाना शाह अहमद रज़ा ख़ाँ रहमतुल्लाहि तआला अलैह के वालिदे गिरामी इमामुल अतक़िया हज़रत मौलाना शाह नक़ी अली ख़ाँ बरेलवी और दादा बुज़ुर्ग वार इमामुल उलमा हज़रत मौलाना रज़ा अली ख़ाँ बरेलवी रहमतुल्लाहि तआला अलैहिम अजमईन जो अपने वक़्त के बड़े औलियाए किराम और इल्म व फ़ज़्ल, फ़क्र व तसव्वुफ़, तक़वा व तहारत, फ़िक़्ह व दयानत वाले लोगों में से थे लेकिन इस फ़ज़्ल व कमाल के बावुजूद आलाहज़रत और उनके

शाहज़ादों ने कभी भी अपनी मुबारक ज़िन्दगी में इन हज़रात के लिए एहतमाम के साथ उर्स कराने या शानदार क़िस्म के मज़ारात बनवाने की तरफ़ तवज्जोह नहीं फ़रमाई हालांकि वह हज़रात इस सब एहतमाम के इससे ज़्यादा हक़दार थे। यह उनकी हद दरजा एहतियात थी क्यूँकि ख़ुद अपने बाप-दादाओं के लिए यह सब करने में नफ़्स की बू आती है और नफ़्स को दख़ल हो सकता है और वहाँ तो नफ़्स नाम की कोई चीज़ रह ही नहीं गई थी, यह सच्चा फ़क़्र (फ़क़ीरी) और असली तसव्वुफ़ था।

इन हज़रात के अलावा पूरी दुनिया को छोड़िए सिर्फ़ हिन्दुस्तान ही के क़दीम तारीख़ी इस्लामी शहरों में कई हज़ार ऐसे औलिया व अतक़िया, बड़ी-बड़ी इस्लामी किताबें लिखने वाले आलिम व फ़ाज़िल दफ़न हैं कि उनकी राहों की ग़ुबार मिल जाए तो इन्सान ख़ुदा से क़रीब हो जाए। तारीख़ (इतिहास) की किताबों में उनके ज़िक्र और चर्चे हैं और वह कच्ची क़ब्रों में सादगी के साथ बने हुए क़ुब्बों और मज़ारों में आराम फ़रमा रहे हैं। अक्सर जगह न उर्सों का एहतमाम है और न शानदार मज़ारात। क्या आप समझते हैं कि वह लोग घाटे में हैं? ऐसा हरगिज़ नहीं। यही तो "नुफ़ूसे मुतमइन्नह" हैं فَادْخُلِیْ فِیْ عِبَادِیْ की ख़ुशख़बरी इन्हीं के लिए है और وَادْخُلِیْ جَنَّتِیْ के वादे इन्हीं के लिए हैं।

इस सब का मतलब कोई यह न समझ ले कि मआज़ल्लाह मैंने उर्स कराने और मज़ार बनाने को मना कर दिया है बल्कि बात यह है कि हर मामले में हदों के अन्दर रहा जाए। हर काम का एक दाइरा है और इस्लाम यानी मज़हबे अहलेसुन्नत एक दरमियानी रास्ता है। तेरे और मेरे सब पीरों, मौलवियों, ख़लीफ़ों के उर्स होने लगे और मज़ार बनने लगे तो पता चला कि इस्लाम सिर्फ़ उर्स करने और मज़ार बनाने का ही नाम हो कर रह जाएगा।

आज शख़्सियत परस्ती और ख़ुदपसन्दी हम लोगों में इस दरजा बढ़ गई है कि कितने ही मौलवी हैं कि उन्हें अगर सिर्फ़ हज़रत मौलाना कह दिया जाए या लिख दिया जाए आगे पीछे आधा दर्जन अलक़ाब न हों तो वह नाराज़ हो जायेंगे और कितने पीर, ख़लीफ़े और सज्जादे ऐसे हैं कि उनके हाथ-पैर चूमे बग़ैर ख़ाली मुसाफ़हा कर लिया जाए तो उन्हें जलाल आ जाएगा और बहुत घूर कर देखेंगे गोया कि मुसाफ़हा करना कोई गुनाह हो गया है या सिर्फ़ मौलाना या मौलवी कह देना तौहीन बन गई है और कितने हज़रत हैं कि महफ़िलों, मजलिसों, जलसों और कान्फ़ेन्सों में कोई कितनी ही अच्छी वाज़ व नसीहत से भरपूर अक़ाइद व अअ़्माल की इस्लाह करने वाली तक़रीर कर दे या उम्दा से उम्दा हम्दे इलाही और नाते नबी सुना दे लेकिन उन्हें कोई ख़ुशी व सुरूर हासिल नहीं होता जब तक कि ख़ुद उनकी मनक़बत न पढ़ी जाए उस वक़्त तक यह राज़ी नहीं हैं, उन्हें ख़ुदा व रसूल की तारीफ़ सुन कर जोश नहीं आता बल्कि ख़ुद अपनी शान व अज़मत वाला कलाम सुनकर हाल आता है और फिर जेब की तरफ़ हाथ जाता है, और मज़े की बात यह है कि यह नफ़्स परस्त फ़क़ीर बनते और ख़ुद को फ़क़ीर कहलवाते हैं। ख़ुदाए तआ़ला उनके शर से बचाए। और उनके दिलों में अपना ख़ौफ़ और आख़िरत की फ़िक्र पैदा फ़रमाए। यह सब ख़ुदा और रसूल को भुलाने और अपना ज़िक्र कराने में लगे हैं और सिर्फ़ अपनी तारीफ़ें, मनक़बतें सुन-सुन कर झूम रहे हैं। एक पीर के एक ख़लीफ़ा को मैंने ख़ुद देखा कि उसने एक पेशावर शाइर को रुपये देकर अपनी मनक़बत लिखवाई थी और उसे जेब में लिए फिरता था और हर महफ़िल में उसे पढ़वाता था और पढ़ने वाले को ख़ुद ही ख़ूब नोट देता था। यह हैं आजकल के फ़ना फ़िल्लाह और बाक़ीबिल्लाह जिन्हें अल्लाह तआ़ला के ज़िक्र में लज़्ज़त नहीं मिलती, अपनी

तारीफ़ में बड़ी मिठास महसूस होती हैं।

हाँ अगर कोई अक़ीदत से किसी साहिबे कमाल के फ़ज़ाइल उसके सामने बयान करे और यह बिला ज़रूरत इसका ख़्वाहिशमन्द न हो तो कोई हरज नहीं। कुछ पीरी मुरीदी करने वालों में आजकल देखा गया कि वह हर वक़्त हर जगह बे ज़रूरत अपनी ख़िलाफ़ते इजाज़तें और निसबतें गिनाते रहते हैं कि फ़लां ने मेरे बारे में यह कहा मुझको फ़लां फ़लां से ख़िलाफ़त हासिल है मेरे बाप ऐसे थे और दादा ऐसे बे ज़रूरत हर वक़्त यही बाते' करना उनकी फ़ितरत बन गई है यह वह लोग हैं कि पीरी और फ़क़ीरी उनके पास से होकर नहीं गुज़री हदीसे पाक मे है रसूले खुदा सल्लल्लाहो अलेह वसल्लम से फ़रमाया जिसके अमल ने उसको पीछे ढकेल दिया वह नसब और ख़ानदान की वजह से आगे नही बढ़ पायेगा (अबूदाऊद जिल्द 2 सफ़हा 175 बाब फ़ीफ़ज़लिल इल्म)

आला हज़रत मौलाना अहमद रज़ा ख़ाँ बरेलवी लिखते हैं

नसब (ख़ानदान) पर फ़ख्र जायज़ नही नसब के सबब अपने आप को बड़ा जानना तकब्बुर करना जाईज़ नही (फ़तावा रिज़विया जिल्द 23 सफ़हा 255)

ख़ुलासा यह है कि इस सब से हमारा मक़सद बुज़ुर्गों के उर्स करने और मज़ार बनाने और नियाज़ व फ़ातिहा से मुतलक़न रोकना नहीं है बल्कि मक़सद यह है और ख़ौफ़ इस बात का है कि हमारे माहौल को देख कर कहीं कोई यह न ख़्याल करे कि मज़हबे इस्लाम में उर्स करने और मज़ार बनाने के अलावा और कुछ नहीं है और हमारी आने वाली नस्लें कहीं यह न समझ लें कि हम पुलाव, फ़ीरीनी, खिचड़े, मालीदे, पूड़ियां और हलवे खाने के लिए पैदा हुए हैं और हमारे बाप दादा से हम को यही मिला है। नमाज़, रोज़ा और ज़कात वग़ैरह अहकामे शरअ़ को भूल जायें और नियाज़ व फ़ातिहा, उर्सों और मज़ारों को ही मुकम्मल

इस्लाम ख़्याल करने लगें।

मज़ारात के बारे में ग़लत प्रोपेगन्डे

बाज़ जगह यह भी देखने में आ रहा है कि कुछ लोग ख़्वामख़्वाह सिर्फ़ गढ़े हुए ख़्वाबों और झूटी बिशारतों की बुनियाद पर मज़ार बना लेते हैं। यह सरासर ग़लत और इस्लाम के ख़िलाफ़ हरकत है किसी अल्लाह वाले के मदफ़ून होने का यक़ीन न हो तो सिर्फ़ ख़्वाब की वजह से मज़ार बनाना बिदअ़त व गुनाह है और ऐसे मज़ारात जहाँ बन गए हों उनको उखाड़ फेंक देना मुसलमानों पर ज़रूरी है और ऐसे झूटे मज़ारों पर हाज़िरी देना, वहाँ फ़ातिहा पढ़ना जाइज़ नहीं है।

आजकल यह भी देखने में आता है कुछ लोग किसी जगह मज़ार ज़ाहिर होने का प्रोपेगन्डा कर देते हैं और फिर तू चल मैं चल, लारियों, गाड़ियों, बसों के ज़रिए वहाँ लाखों इन्सानों के हुजूम हो जाते हैं और प्रोपेगन्डा करने वालों की चादरों, नज़रानों, होटलों और दुकानों के ज़रिए ख़ूब आमदनी होती है और यह प्रोपेगन्डे आमदनी ही के लिए किए जाते हैं और आजकल क़ौम का यह हाल है कि ज़्यादातर लोगों ने बुज़ुर्गों के तौर तरीक़े तो छोड़ दिए हैं सिर्फ़ दरगाहों की हाज़िरी ही को इस्लाम समझ लिया है और हम कहते हैं कि अगर वहाँ किसी बुज़ुर्ग के होने का शुबहा हो भी जाए तो इस शक व शुबहे वाले मज़ार पर जाने की क्या ज़रूरत है, क्या ऐसे मज़ारात कम हैं कि जहाँ मशहूर व मारूफ़ तारीख़ व सियर की किताबों में जिक्र किए गए बुज़ुर्गाने दीन

दफ़्न हैं? वहाँ से आप को सेरी नहीं हो रही है? जो आप इधर-उधर प्रोपेगन्डों पर भागे-भागे फिर रहे हैं। हज़रत शाह अब्दुल अज़ीज़ मुहद्दिस देहलवी रहमतुल्लाहि तआला अलैह फ़रमाते हैं :

"जो बग़ैर मज़ार के ज़्यारत करे उस पर अल्लाह की लानत है।"

(फ़तावा अज़ीज़िया, जिल्द अव्वल, सफ़हा 144)

ख़ुलासा यह कि जब असली वाक़िई और सच्चे मज़ारात जगह-जगह ख़ुदाए तआला के करम से मौजूद हैं तो फिर सिर्फ़ एलानात और प्रोपेगन्डों की बुनियाद पर मशहूर कर दिए गए मज़ारों पर हाज़िरी के लिए भागे-भागे फिरना समझदारी नहीं है। और दरगाहों से फ़ैज़ व बरकत भी सब को नहीं मिलता।

आज कितने लोग हैं कि वह दरगाहों और मज़ारों पर हाज़िरी के लिए लम्बे-लम्बे सफ़र करते हैं लेकिन नमाज़, रोज़े, ज़कात की अदाएगी से कोसों दूर हैं और कितनी बीवियाँ हैं जो अपने शौहरों को सताती, उनकी नाफ़रमानी करती हैं और कितने शौहर हैं जो बीवियों पर ज़ुल्म करते हैं। कितनी औलादें हैं जो माँ-बाप को नाराज़ किए हुए हैं और कितने लोग हैं जिन्हें रात दिन सिवाए गानों, तमाशों और पिक्चरों के कोई काम नहीं। शराब, जुए और ज़िनाकारी जैसे हराम कामों में लगे हुए हैं और फिर यह लोग ख़ानक़ाहों के चक्कर लगाते हैं। मैं समझता हूँ जो ख़ुदाए तआला और उसके बन्दों के हक़ अदा नहीं करते उन्हें इस हालत मे मज़ारात की हाज़िरी से कुछ मिलने वाला नहीं है। क्या उन्होंने यह

समझ लिया है कि मज़हबे अहलेसुन्नत वलजमाअत सिर्फ़ ख़ानकाहों की हाज़िरी और तबर्रुक खाने का नाम है? अगर ऐसा है तो यह लोग सख़्त ग़लतफ़हमी का शिकार हैं और बड़े जाहिल और नादान हैं।

और ठीक है चलिए यह बदकार व ज़िनाकार, सूदख़ोर, शराबी, जुआरी, गानों तमाशों और पिक्चरों के शौक़ीन, माँ बाप को सताने और तेरा मेरा हक़ दबाने वाले जिन्हें नमाज़, रोज़े, और ज़कात से कोई सरोकार नहीं। ख़ुदा व रसूल के नाफ़रमान अल्लाह वालों के दरबारों में जायें, मैं उन्हें रोकता भी नहीं और मैं कौन होता हूँ मुक़द्दस बारगाहों से किसी को रोकने वाला लेकिन कम से कम इतना हो जाता कि यह लोग वहाँ जाते और इन बदकारियों, हरामकारियों से अल्लाह वालों को वसीला बना कर अल्लाह तआला से तौबा करके लौटते और वापसी में दीनदार मुसलमान बन जाते मगर यह तो जैसे गए थे वैसे ही लौट आए न हरामकारियों से तौबा करने की तौफ़ीक़ न उस पर क़ाइम रहने का जज़्बा, तो हमें तो ऐसा लगता है कि इन्हें वहाँ से न कोई फ़ैज़ मिला न बरकत क्यूँकि इस्लाम में सब से बड़ा फ़ैज़ और बरकत यह है कि किसी की सोहबत से उसके दिल में ख़ुदा का ख़ौफ़ पैदा हो जाए अल्लाह से डरने लगे और बुरे काम छोड़ दे और अच्छे काम करने लगे।

इस सारे उनवान और बयान से हमारा मक़सद यह था कि हर भले और नेक आदमी का मज़ार बनाना या उर्स करना मुनासिब नहीं है। यह शान सिर्फ़ बड़े-बड़े औलिया किराम की ही होना चाहिए, भले और नेक तो

दुनिया में करोड़ों हुए और हैं। हाँ क़ब्रिस्तान में ख़ासकर उसके किनारों पर पक्की कुछ क़ब्रें चाहे आम लोगों की ही सही, बना दी जायें तो बेहतर है क्यूँकि आजकल क़ब्रिस्तानों पर क़ब्ज़ा करने और मकान बनाने का दौर आ गया है जब किनारे पर पक्की क़ब्रें होंगी तो क़ब्रिस्तान की हिफ़ाज़त हो जाएगी लेकिन इन क़ब्रों के साथ बुज़ुर्गों का सा मामला न किया जाए।

अवाम में हमेशा से यह बीमारी रही है कि वह अल्लाह तआ़ला के नेक, मुख़लिस, परहेज़गार, हक़ और साफ़ बात कहने वाले बन्दों को उनकी ज़िन्दगी में सताते, उन्हें ईज़ा और तकलीफ़ देते, तरह–तरह से उन्हें परेशान करते रहे हैं और ख़ुदा के ख़ास बन्दों को ग़ैरों से ज़्यादा अपनों से सदमें पहुँचते रहे हैं। और यही ज़िन्दगी में सताने वाले उनके विसाल के बाद रोते, पीटते हैं, उनके मज़ार बनाकर उन पर फूल डालते और चादरें चढ़ाते हैं और आजकल तो यह मर्ज़ ख़ूब ज़ोर पकड़ गया है कि काफ़ी लोग ख़ुदाए तआ़ला के महबूब बन्दों के मज़ारात पर हाज़िरी देने वाले, वहाँ बार–बार जाने वाले वह हैं जो दुनिया में साहिबे इल्म व फ़ज़्ल लोगों के पास झांकते तक नहीं हैं बल्कि वह अल्लाह वाले जो उन्हें हरामकारियों से रोकें, बुरी आदतों पर टोकें तो यह उनके दुश्मन हो जाते हैं। उनकी साफ़ कहने की अ.दत और हक़पसन्दी की वजह से यह उनके क़रीब रह ही नहीं पाते और उनके पास जाना पसन्द नहीं करते और अगर जाते भी हैं तो सिर्फ़ तावीज़, गन्डे कराने, पढ़वाने फुंकवाने या मालदारी की दुआ कराने के लिए। बल्कि उनके दिमाग़ों में यह बात बैठ गई है कि

यह तावीज़, गन्डे करना और पढ़ना फूंकना ही विलायत है और यह हर उस शख़्स के मुरीद हो जाते हैं जो करने-धरने ख़ूब करता है हालांकि शरीअ़त के दाइरे में रह कर कलामे ख़ैर पढ़ कर फूंकना और उसके ज़रिए दुआ व तावीज़ करना कोई ग़लत काम नहीं है लेकिन बुज़ुर्गाने दीन का कु़र्ब और उनकी नज़दीकी हासिल करने का असली मक़सद यह नहीं है बल्कि मक़सूद यह होना चाहिए कि उनकी नज़दीकी और सोहबत से गुनाहों की मग़फ़िरत हो जाए, ईमान पर ख़ात्मा हो जाए, मरने के बाद जन्नत मिल जाए यानी उनके ज़रिए से ख़ुदाए तआ़ला की रज़ा हासिल करना ही ख़ास मक़सद होना चाहिए।

मैं पूछता हूँ कि यह बुज़ुर्गाने दीन जो मज़ारों में आराम फ़रमा हैं अगर यह दुनिया मे ज़ाहिरी और जिस्मानी ज़िन्दगी के साथ तशरीफ़ फ़रमा हों तो यह शराबी, जुआरी, ज़िनाकार, बदमाश, बेनमाज़ी, बेरोज़ेदार, गानों तमाशों और सनीमों के शौक़ीन उनके सामने आने की हिम्मत कर सकेंगे? और उनके यह हालात देख कर वह इस्लामी शख़्सियतें उनसे राज़ी और ख़ुश रहेंगी? मगर बात यह है कि मज़ारात ख़ामोश हैं और विसाल के बाद अल्लाह वालों की तवज्जोह इधर से ज़्यादा उधर है यानी वह दुनिया और अहले दुनिया की तरफ़ से बेरग़बत होकर अपने रब की बारगाह में हाज़िर हैं और उसकी याद में डूबे हुए हैं। हम ने एक अल्लाह वाले को अपनी आँखों से देखा है वह बरेली में रहते थे उनका नाम मुस्तफ़ा रज़ा ख़ाँ था, दुनिया उन्हें मुफ़्तीए आज़मे हिन्द कहती हैं। कोई दाढ़ी मुन्डा हुआ मुसलमान उनके सामने आ जाता

था तो उन्हें जलाल आ जाता था, डांटते थे, नाराज़ हो जाते थे और तौबा कराकर दाढ़ी रखाने का वादा कराते थे। कभी किसी के बारे में सुन लेते कि फ़लाँ शख़्स शराब, जुए, गाने, तमाशों का शौक़ीन है या नमाज़ नहीं पढ़ता है तो ग़ज़बनाक हो जाते, "ला हौ-ल वला क़ुव्व-त इल्ला बिल्लाह" और "अस्तग़फ़िरुल्लाह" बार-बार पढ़ते। बेपर्दा औरतों को देख कर भी नाराज़गी का इज़हार फ़रमाते। तो अल्लाह का वली वही है कि उसे वह बातें अच्छी लगें जो अल्लाह व रसूल को पसन्द हों और जो हरकतें अल्लाह व रसूल को नापसन्द हों वह उनसे नफ़रत करे। तो यह हरामकार, बदकार, गाने तमाशों के शौक़ीन, बेनमाज़ी, शराबी, जुआरी अगर अल्लाह वालों के मज़ारों पर जायें तो ख़ैरियत इसी में है कि इन बुरी आदतों से वहाँ तौबा करें और उन बुज़ुर्गों को गवाह बना कर अल्लाह तआला से अपने गुनाहों की माफ़ी चाहें और वापसी में इन बुरी आदतों को छोड़ दें और ऐसा नहीं हो तो हो सकता है कि यह अल्लाह वालों को राज़ी और ख़ुश करने के बजाए उन्हें नाराज़ करके आते हों।

एक ज़रूरी नोट

क़ुर्आने करीम अल्लाह का कलाम है। वह अरबी ज़बान में नाज़िल हुआ उसको अरबी के अलावा किसी ज़बान में नहीं पढ़ना चाहिए। उसका तर्जमा (अनुवाद) किसी भी ज़बान में पढ़ सकते हैं लेकिन ख़ास क़ुर्आन को अरबी के अलावा किसी भी ज़बान में पढ़ना या लिखना या छापना बहुत बुरी बात है।

मज़ारात को चूमने और छूने का मसला

मज़ार किसी का हो उसको सिजदा करना हराम ज़रूर है क्योंकि इस्लाम में सिजदा अल्लाह के अलावा किसी के लियें नही मज़ारों को चूमने और छूने से भी उलमा ने मना फ़रमाया है ख़ासकर हिन्दुस्तानी मुसलमानों के लिये जो मुशरिकों बुत परस्तों मे रहते हैं रात दिन पूजा पाठ देखते हैं उनको भज़ारात के चूमने और छूने से रोकना ही मुनासिब है और इसी मे मसलिहत है वरना यह चूमना और छूना आने वाले वक़्त में जाहिलो अनपढ़ों के ईमान व इस्लाम के लियें ख़तरा बन सकता है और तअ़ज्जुब नही चूमना छूना पूजा पाठ की शक्ल इख़्तियार कर ले और बुजूर्गों के मज़ारों को देखकर ग़ैर मुस्लिमों के पूजा स्थल याद आने लगें और जाहिल लोग यह कहने लगें कि जैसे ग़ैर मुस्लिमों के. लिये मन्दिर व गुरूद्वारे हैं वैसे ही हमारे लियें दरगाहें और मज़ार। और जाहिलों की कमी नही और अनपढ़ों से कुछ भी ना मुमकिन नही अगरचे किसी मुसलमान के ऐसे अमल पर जब तक उसकी ग़लत नियत का यक़ीन न हो जाये उसकी तरफ़ से बदगुमानी नही करनी चाहिये और उस पर फ़तवा नही लगाना चाहिये।

मैने बहुत से पढ़े लिखे यहां तक कि मौलवी और आलिम कहलाने वालों को भी देखा है कि जब वह किसी मज़ार पर जाते हैं तो अवाम के सामने ही एक दम गिर पड़ते हैं चूमना छूना और लिपटना शुरू कर देते हैं हालांकि उलमा ने इससे मना फ़रमाया है। ख़ासकर आला

हज़रत मौलाना अहमद रज़ा खाँ बरेलवी ने लेकिन यह पढ़े लिखे होकर अनपढ़ बनते हैं और नही समझते कि तुम चूमोगे तो अवाम जाहिल लोग सजदे करेंगे

आला हज़रत लिखते हैं

मज़ार को हाथ न लगाये न बोसा (चूमना) दे

(फ़तावा रिज़विया जिल्द 9 सफ़हा 522 मतबुआ पोरबन्दर)

इसी किताब के सफ़हा 526 पर है

जमहूर उलमा मकरूह जानते हैं तो इससे एहतराज़ (बचना) ही चाहिये। सफ़हा 528 पर लिखते हैं।

अवाम के लियें मना करने ही में एहतियात है हमारे उलमा तसरीह फ़रमाते है कि बुज़ूर्गों के मज़ार से कम अज़ कम चार हाथ के फ़ासले पर खड़ा हो फिर तक़बील (चूमने) की क्या सबील (सूरत)?

सफ़हा 532 पर लिखते हैं

क़बरों का बोसा ना लेना चाहिये

और आला हज़रत ने भी यह सब अपनी तरफ़ से न लिखा उनसे पहले के उलमा ने भी मज़ारात को चूमने बोसा देने और छूने से मना फ़रमाया है।

फ़तावा आलमगीरी मे है

फिर खड़े होकर हुज़ूर नबी-ए-करीम सल्लल्लाहो तआला अलेह वसल्लम की कब्रे अनवर की तरफ़ मुतवज्जेह हो कब्रे अनवर की दीवार को हाथ न लगाये तीन चार गज़ के फ़ासले पर खड़ा हो इसमें ज़्यादा हैबत ताज़ीम और एहतराम (अदब) है

(फ़तावा आलमगीरी जिल्द 1 सफ़हा 265)

यानि ज़्यादा क़रीब होना छूना चूमना अदब में कमी है।
इसी आलमगीरी मे है

ना क़ब्र को छुए ना चूमे क्योंकि यह ईसाईयों का तरीक़ा है (आलमगीरी जिल्द 5 सफ़हा 351)

और हज़रत शेख़ मोहद्दिस देहलवी लिखते हैं
ना क़ब्र को हाथ से छुए ना उसको चूमे
(अशेअ़तुललम्आ़त जिल्द 1 सफ़हा 716)

शायद कोई यह ख़्याल करे कि मज़ारात को सजदे करने और उनको चूमने छूने से रोकना वहाबियों के काम हैं तो यह भी एक ग़लतफ़हमी है भाईयो वहाबियों के मज़हब में तो मज़ारात की हाज़री वहां जाकर फ़ातेहा पढ़ना उनसे फ़ैज़ व बरकत हासिल करना उनके वसीले से अल्लाह तआ़ला से दुआ मांगना फूल चादर वगैरह डालना सभी कुछ हराम व नाजाइज़ है लेकिन सुन्नियों के मज़हब में मज़ारात की हाज़री जाईज़ वहां कुरआन की सूरते आयतें पढ़कर सवाब नज़र करना जाईज़ वहां बैठकर फ़ैज़ पाना बरकत हासिल करना जाईज़ उनके नाम का वसीला देकर अल्लाह से दुआ करना जाइज़ बल्कि अल्लाह को मालिके हक़ीक़ी और सब कुछ उसकी तरफ़ से समझकर उनसे मुरादें और मदद मांगना भी शिर्क व कुफ़ व हराम नही हां सजदे करना हराम है चूमने छूने की भी इजाज़त नही अगरचे यह हराम नही तआस्सुब और हठधर्मी छोड़कर अगर कोई शख़्स गौर करे तो वाक़ई अहले सुन्नत का मज़हब बीच का रास्ता है और दरमियान व बीच में चलने ही मे बेहतरी है कि ना इधर को गिर ना उधर को

चादर चढ़ाने का मसला

मज़ारात पर चादर चढ़ाने के माअ़मले में भी उलमाऐ अहले सुन्नत का फ़तवा एक दरमियानी रास्ता है वह बुज़ूर्गों के मज़ारात पर चादर चढ़ाने को जाइज़ कहते हैं लेकिन एक चादर ज़ब तक खराब बोसीदा और पुरानी न हो जाये दूसरी चढ़ाने से मनअ़ करते हैं क्योंकि यह बे ज़रूरत है लिहाज़ा फ़ुजूल खर्ची है हां अगर यह चादरें ग़रीबों, मिसकीनो, मोहताजों के काम में आती हैं तो यह फ़ुजूल ख़र्ची नही है बल्कि एक क़िस्म का सद्क़ा और खैतरात है लेकिन जब पता है कि यह चादरे मालदार मुजाबिरों या सज्जादानशीनों के काम मे आती हैं तो यह मालदारों को ज़्यादा मालदार बनाना है इसके बजाय इतने पैसे ग़रीबों को दे दिये जायें किसी बेघर का घर बना दिया जाये किसी मरीज़ का इलाज करा दिया जाये किसी का निकाह करा दिया जाये किसी तालिबे इल्म की मदद कर दी जाये किसी इमाम व मोअ़ज़्ज़िन को दे दिये जायें और इस सबका सवाब भी उन बुज़ूर्ग की रूह को पहुंचा दिया जाये जिनके मज़ार पर चादर चढ़ाना थी तो यह ज़्यादा बेहतर है और बड़ी नेकी है आख़िर चादर चढ़ाने का मक़सद यही तो है कि बुज़ूर्गों के मज़ारात आम लोगो की कब्रो से अलग दिखाई दें और वह पहचाने जायें ताकि ईज़ा ना दिये जायें और बेहुरमति से बचाये जायें और यह मक़सद एक चादर से हासिल हो जाता है इस मक़सद के लियें चादरों पर चादरें चढ़ाने की क्या ज़रूरत है ख़ासतौर से उनके लियें चन्दे करना ग़रीब मुसलमानों को परेशान

करना बजाय उनकी मदद करने के उन्हें नोचना सब बे फ़ायदा बातें हैं कौम की तबाही और बर्बादी के आसार हैं उर्सों वग़ैरह मुस्तहब कामों के लियें चन्दे न करना ही मुनासिब है आप चन्दे करके सबके ज़िम्मदार क्यों बन रहे हैं आप से जो हो सके वह कीजिये बाक़ी जिसको जो करना है वह खुद करेगा ख़ाना-ए-काबा पर भी ग़िलाफ़ चढ़ाया जाता है मगर साल में सिर्फ़ एक मर्तबा मदीना शरीफ़ में कब्रे अनवर पर साल में सिर्फ़ एक मर्तबा ग़िलाफ़ डालने का माअ़मूल (तरीक़ा) नजदियों की हुकूमत से पहले से है। बग़दाद शरीफ़ में रोज़ा-ए-पाक हुजूर सय्यदना गौसुस समदानी शेख़ अब्दुल क़ादिर जीलानी पर भी मुन्तज़मीन की तरफ़ से साल में एक मर्तबा चादर डाली जाती है आम लोगों को चादर चढ़ाने की इजाज़त नही और भी कुछ मोहतात ख़ानकाहो में ऐसा ही है हर्कस व नाकस को हर वक्त चादर चढ़ाने की इजाज़त और बे ज़रूरत ना चादर अभी फटी न पुरानी ना मैली हुई फिर भी चादर पर चादर चढ़ाने के दस्तूर व रिवाज की हैसियत एक कमाई के धंधे से ज़्यादा नही इस मसले की तहक़ीक़ के लियें आला हज़रत इमाम अहले सुन्नत की तसनीफ़ अहकाम शरियअ़त हिस्सा अव्वल का मुतआ़ला करना चाहिये। एक सुन्नी आलिम हज़रत मौलना गुलाम रसूल सईदी फ़रमाते हैं

अल्लामा नाबुलसी, अल्लामा इस्माईल हक़्क़ी, अल्लामा शामी और अल्लामा राफेअ़ी ने मज़ारात पर चादर चढ़ाने को जाईज़ क़रार दिया है लेकिन इसमें इफ़रात (ज़्यादती) और बे एअ़तदाली करना सही नही जिस तरह ओबाश

लड़के बाजों ताशों के साथ नाचते गाते चादर का जुलूस लेकर मज़ारात की तरफ़ जाते हैं अलबत्ता अदब व ताज़ीम के साथ नाअ़तख्वानी करते हुए चादर चढ़ाना जाईज़ है ज़रूरत से ज़्यादा चादरें भी न चढ़ाई जायें यह फुजूल खर्ची व गुनाह है जब ताज़ीम के लिये मज़ार पर चादर हो तो उसके ऊपर चादर चढ़ाने के बजाये वह कपड़ा ग़रीबों पर सदक़ा करके उसका सवाब साहिबे मज़ार को पहुंचा दें। मज़ार पर चादर चढ़ाने की शरअ़ई नज़र व मन्नत मांगना गुनाह है। फुक़हा की तसरीह के मुताबिक ग़ैर अल्लाह के लियें शरअ़ई नज़र मांगना नाजाईज़व गुनाह है हां उर्फी नज़र यानि इसाले सवाब की नियत से जाइज़ है।

(शरह सही मुस्लिम जिल्द नं 2 सफ़हा 816)

खुलासा यह कि उलमा-ए-अहलेसुन्नत मज़ारात पर चादर चढ़ाने से मना भी नही करते ना उसको नाजाईज़ कहते हैं लेकिन चादरों पर चादर चढ़ाने की इजाज़त भी नही देते यही दरमियानी और बीच का रास्ता है ज़िद व हटधर्मी छोड़कर ग़ौर करने वालों के लिये हक़ व दुरूस्त है और सही बात यह है कि सब सुन्नी लोग अगर उलमा-ए-अहेलेसुन्नत ख़ासकर आला हज़रत इमाम अहमद रज़ा खाँ बरेलवी की तालीमात पर अमल करें और जिस ज़ोर व शोर से मसलके आला हज़रत का नअ़रा लगाते हैं उसी जोश व ख़रोश के साथ उनकी बातों को अपना लें उनका कहना मानें तो वहाबियत दफ़न हो जायेगी और सुन्नियत को ताक़त हासिल होगी।

एक भूल

शुरूअ़ इस्लाम में कब्रों की ज़ियारत के लिये जाना मना था बाद में हुज़ूर ने इजाज़त दी हदीस मे है

मैने तुमको कब्रों की ज़ियारत से रोका था अब मैं तुमको इजाज़त देता हुँ तुम उनकी ज़ियारत करो इस लिये कि यह दुनियां की तरफ़ से बे रग़बत करती है और आख़िरत की याद दिलाती है (मिशकात सफ़हा 154)

उलमाऐ किराम ने कब्रों और मज़ारों की ज़ियारत का एक फ़ायदा यह भी बताया कि वहां से फ़ैज व बर्कत हासिल होते हैं लेकिन हदीस मे हुज़ूर ने जो फ़ायदा बताया था उसको लोग बिल्कुल भूल गये और मज़ारों व क़ब्रों पर जाकर आख़िरत को याद नही करते और यह नही सोचते कि जब यह दुनियां मे सब दिन न रह सके तो हम क्या रहेंगे क्योकि मौत और फ़ना से बिल्कुल पाक सिर्फ़ एक अल्लाह की ज़ात है बाक़ी सब के लिये मौत व फ़ना है ख्वाह थोड़ी देर के लिये सही और अल्लाह वाले मौत व विसाल के बाद भी एक ख़ास किस्म की ज़िन्दगी के साथ ज़िन्दा हैं

एक ज़रूरी नोट

क़ुर्आने करीम अल्लाह का कलाम है। वह अरबी ज़बान में नाज़िल हुआ उसको अरबी के अलावा किसी ज़बान में नहीं पढ़ना चाहिए। उसका तर्जमा (अनुवाद) किसी भी ज़बान में पढ़ सकते हैं लेकिन ख़ास क़ुर्आन को अरबी के अलावा किसी भी ज़बान में पढ़ना या लिखना या छापना बहुत बुरी बात है।

उम्मीद और ख़ौफ़ के दरमियान

अक़ाइद व नज़रियात के एतबार से आप ने मुलाहिज़ा फ़रमाया कि अहले हक़ हमेशा से दरमियानी रविश और बीच के रास्ते पर रहे और आज भी हैं। अब किताब के अख़ीर में मैंने चाहा कुछ और काम और वुजूहात जिनके एतबार से भी इस्लाम एक दरमियानी रास्ता है, उनका भी ज़िक्र कर दिया जाए। उनमें से सबसे पहले मैं उम्मीद और ख़ौफ़ का ज़िक्र कर रहा हूँ। "उम्मीद" का मतलब अल्लाह तबारक व तआ़ला की रह़मत और उसकी अता और इजाज़त से उसके महबूब स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की शफ़ाअ़त पर भरोसा करना और यह उम्मीद रखना कि ख़ुदाए तआ़ला गुनाहों, ख़ताओं को माफ़ फ़रमा कर अपने फ़ज़्ल व करम और अपने रसूले मक़बूल की शफ़ाअ़त के ज़रिए क़ब्र, बरज़ख़, हश्र या जहन्नम के अज़ाब व तकलीफ़ से नजात और छुटकारा अता फ़रमा कर जन्नत की नेमत अता फ़रमाएगा। मोमिन चाहे कितना ही गुनाहगार, ख़ताकार हो मगर उसको यह उम्मीद रखना चाहिए और हरगिज़ नाउम्मीद नहीं होना चाहिए बल्कि नाउम्मीद होना इस्लाम में सख़्त बुरा है क्यूँकि क़ुर्आने करीम में अल्लाह तबारक व तआ़ला ने कई जगह यह फ़रमाया है कि "मेरे बन्दों को बता दो गुनाह करके भी मेरी रह़मत से नाउम्मीद न हों।" कहीं फ़रमाया "मेरे बन्दों को बता दो कि मैं निहायत बख़्शने वाला मेहरबान हूँ।"

बिस्मिल्लाह शरीफ़ जो हर अच्छे काम और अच्छे कलाम से पहले पढ़ी जाती है उसमें भी अल्लाह तआ़ला ने अपने नाम के साथ अपनी सिफ़ात (विशेषताओं) में से

रहमान और रहीम को पसन्द फ़रमाया है।

"ख़ौफ़" का मतलब है अल्लाह तआ़ला के अ़ज़ाब व इ़ताब से डरते रहना और हर वक़्त इस बात का ध्यान करके लरज़ते रहना कि कहीं वह जहन्नम में न डाल दे। यह ख़ौफ़े इलाही और ख़शीअ़ते रब्बानी बन्दे के लिए अल्लाह तआ़ला का बहुत बड़ा इनाम है जिसे अता फ़रमा दे उस पर उसका बड़ा एहसान है यानी बन्दे के लिए ज़रूरी है कि वह हर हाल में ख़ुदाए तआ़ला से डरता रहे चाहे कितना ही नेकोकार, परहेज़गार और दीनदार हो, वली, क़ुतुब और ग़ौस हो, मुक़र्रब फ़रिश्ता हो या रसूल व नबी हो। बल्कि जिस का मरतबा और इल्म जितना ज़्यादा होगा उसके दिल में उतना ही ख़ौफ़े ख़ुदा ज़्यादा होगा। क़ुर्आने करीम में फ़रमाया गया है :

"बेशक इल्म वाले ही अल्लाह से डरते हैं।"

इससे यह भी मालूम हुआ कि जिसके दिल में ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ न हो और उसके अ़ज़ाब की तरफ़ से निडर हो गया हो वह चाहे कितनी ही किताबें पढ़ चुका हो लेकिन वह पढ़ा लिखा नहीं है। और ज़रूरियाते दीन से वाक़िफ़ मोमिन अगर उसने किताबें न पढ़ीं हों लेकिन उसके दिल में ख़ौफ़े ख़ुदा की नेमत है तो वह इल्म वाला है पढ़ा लिखा है। ख़ुलासए कलाम यह कि इस्लाम व ईमान वालों की शान यही रही है और है और होना चाहिए कि बन्दा ख़ुदाए तआ़ला से डरता भी रहे चाहे कितना ही नेकोकार हो और उसकी रहमत से उम्मीद भी लगाए रहे चाहे कितना ही गुनाहगार हो।

हज़रत सय्यिदना शैख़ सअ़दी रहमतुल्लाहि तआ़ला अ़लैह के इन दो शेरों के ज़रिए इस मफ़हूम को अच्छी तरह समझा

जा सकता है।

फ़ारसी शेरों का तर्जमा : "ख़ुदाए तआला अगर रहम व करम की आवाज़ लगाए तो इब्लीस तक अपना हिस्सा मांगने लगे। और अगर गुनाह व ज़ुल्म करने वालों की पकड़ फ़रमाए तो कोई भी उसके क़हर व ग़ज़ब की पकड़ से बच नहीं सकता।"

बुज़ुर्गाने दीन, औलियाए किराम का तरीक़ा रहा है कि वह दीनदारी और मज़हब की पाबन्दी और ख़ुदा व रसूल के अहकाम की बजाआवारी में किसी क़िस्म की कोताही नहीं बरतते थे लेकिन भरोसा अपनी दीनदारी और नमाज़ रोज़े की पाबन्दी इबादत व रियाज़त पर नहीं करते थे बल्कि अल्लाह तआला के रहम व करम, फ़ज़्ल व बख़्शिश और उसके महबूब की शफ़ाअत पर रखते थे। रात-रात भर नफ़्ल नमाज़ पढ़ते, रो-रो कर क़ुर्आन की तिलावत करते, आंसुओं से दाढ़िया और मुसल्ले भीग जाते लेकिन सुबह को यह दुआ करते या अल्लाह अपने फ़ज़्ल व करम से इसको क़बूल फ़रमा ले अगर तेरा रहम व करम शामिले हाल न हो तो यह सब बेकार है और जन्नत तो सिर्फ़ तेरी मेहरबानी से ही मिलना है और बख़्शिश तेरे करम से होना है।

तो जो लोग हरामकारियों में लगे हुए हैं और अहकामे शरअ की पाबन्दी नहीं करते और ख़ुदा व रसूल की नाफ़रमानी उनकी आदत बन गई है वह लोग सख़्त ग़लती पर हैं बड़े धोके में हैं और बजाए अल्लाह को राज़ी करने के शैतान को ख़ुश कर रहे हैं यह क़ब्र में, मैदाने महशर और जहन्नम में सख़्त अज़ाब के हक़दार हैं और जो लोग दीनदार और परहेज़गार तो हैं लेकिन इस दीनदारी और परहेज़गारी पर फूले हुए मग़रूर, घमन्डी और बदअख़लाक़ हो

गए हैं यह भी बड़ी भूल में हैं और दीनदार होकर भी शैतान के जाल में हैं गोया कि दीनदार न बनना भी ग़लत और दीनदारी के ऊपर भरोसा करके फूल जाना और अल्लाह के रहम व करम और उसके महबूब की शफ़ाअ़त को भूल जाना यह भी ग़लत।

यह देखिये बरेली के ताजदार इमामे अहलेसुन्नत आलाहज़रत मौलाना शाह अह़मद रज़ा ख़ाँ रह़मतुल्लाहि तआ़ला अ़लैह ने ज़िन्दगी भर कभी कोई गुनाह नहीं किया, नमाज़ तो नमाज़ कभी जानबूझ कर जमाअ़त तक नहीं छोड़ी, सारी ज़िन्दगी और उसका सारा मताअ़ व सरमाया हमेशा ख़ुदा व मुस्तफ़ा के नाम पर क़ुर्बान रहा लेकिन इस सब दीनी ख़िदमत, इबादत व रियाज़त, तक़्वा और तहारत के बावुजूद ख़ुदाए तआ़ला से डरने और अज़ाब से लरज़ने और काँपने का यह आलम था कि फ़रमाते हैं :

राह पुरख़ार है क्या होना है
पाँव अफ़गार है क्या होना है
हम को बद कर वही करना जिससे
दोस्त बेज़ार है क्या होना है
छुप के लोगों से किये जिसके गुनाह
वह ख़बरदार है क्या होना है
काम ज़िन्दाँ के किये और हमें
शौक़े गुलज़ार है क्या होना है

अल्लाह तआ़ला के ख़ौफ़ व ख़शीअ़त से काँपते और लरज़ते आलाहज़रत के ऐसे और भी बहुत से शेर हैं लेकिन उम्मीद का यह आ़लम है कि सबके बाद फ़रमाते हैं :

क्यूँ रज़ा कुढ़ते हो हँसते उट्ठो
जब वह ग़फ़्फ़ार है क्या होना है

चूंकि आलाहज़रत तक़रीबन इस ज़माने के बुज़ुर्गों में से हैं लिहाज़ा सिर्फ़ उन्हीं के ख़ौफ़ व उम्मीद की सिर्फ़ एक मिसाल मैंने बयान कर दी वरना उनकी तहरीर, तक़रीर और शेरों में जगह-जगह यह दोनों जलवे आपको देखने को मिलेंगे। और दूसरी हर ज़माने के बुज़ुर्गों के हालात व अक़्वाल इस मुतअ़ल्लिक़ इस क़दर हैं कि जमा नहीं किये जा सकते जिसे शौक़ हो वह तसव्वुफ़ की किताबों का मुतालआ़ करे ख़ासकर इमामे ग़ज़ाली अ़लैहिर्रहमह की "इह़याउल उलूम" और "कीमियाए सआ़दत"।

और पीरों, मौलवियों, आलिमों और मुक़र्रिरों का काम भी यही है कि वह क़ौम के दिल में यह दोनों बातें पैदा करें, डराते भी रहें और नाउम्मीद भी न होने दें और अवाम को चाहिए कि जिस मौलवी या पीर की तक़रीर और सोहबत से यह दोनों चीज़ें दिल में पैदा हों उसी के क़रीब जायें और उसी की बातें सुनें और जिसकी सोहबत या बयान व ख़िताब सिर्फ़ एक तरफ़ को खींचे, इतना ख़ौफ़ और डर पैदा करे कि इन्सान बिल्कुल मायूस और नाउम्मीद हो जाए या इतनी उम्मीद दिल दे कि इन्सान निडर और बेख़ौफ़ होकर गुनाह करने लगे तो ऐसों की सोहबत शैतान की सोहबत है और ऐसों की तक़रीरें शैतान की बातें हैं।

आज कितने पीर हैं कि जिन्होंने अपने मुरीदों के दिल में यह बात पैदा कर दी है कि हमारे मुरीद हो जाओ बस काफ़ी है, नमाज़, रोज़े वग़ैरह अहकामे शरअ़ की या तो बिल्कुल ज़रूरत नहीं या कोई ख़ास ज़रूरत नहीं, मुरीद होना ही जन्नत के लिए काफ़ी है। और कितने मौलवी, मुक़र्रिर और शाइर हैं कि उन्होंने सिर्फ़ हुज़ूर की शफ़ाअ़त की बातें

और बुज़ुर्गों के फ़ज़ाइल व करामात सुनाने ही को इस्लामी वाज़ व तक़रीर व ख़िताब समझ लिया है। यह गुनाहों का अज़ाब कभी नहीं बताते। यह जुए, शराब और ज़िनाकारी जैसी हरामकारियों की मरने के बाद की सज़ा का ज़िक्र कभी नहीं करते। यह नमाज़ छोड़ने और रोज़ा न रखने और ज़कात न निकालने का अन्जाम कभी ज़बान पर नहीं लाते। ऐसे पीरों की सोहबत और ऐसे मौलवियों की तक़रीरों से तन्हाई बेहतर है। हज़रत मौलाना मुफ़्ती अह़मद यार ख़ाँ नईमी अ़लैहिर्रह़मह फ़रमाते हैं :

"फ़ी ज़माना वाइज़ीन अ़मल का वाज़ ही नहीं करते। शेरख़्वानी, ख़ुश इलह़ानी, क़िस्से कहानी में सारा वक़्त गुज़ार देते हैं। आ़म जलसे गोया कि ह़लाल सनीमा हैं कि सुनने वाले भी तमाशाई, ज़हनी अ़य्याश होते हैं। हमने वह ज़माना देखा है कि जब मुसलमान उलमा के वाज़ सुन कर बाद में याद करते थे कि मौलवी साहब ने आज फ़लाँ-फ़लाँ मसअला बताया।"

(मिरअतुल मनाजीह़, जिल्द 6, सफ़ह़ा 439)

इस सारे बयान का ख़ुलासा यह है जिन पीरों की सोहबत और मौलवियों की तक़रीरें सुन कर लोगों के दिल से ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ निकल जाए और वह गुनाहों पर निडर और हरामकारियों के आ़दी हो जायें ऐसे मौलवी और पीर सब शैतान का गिरोह है।

ऐसे ही वह लोग कि जिनकी बातें सुन कर गुनाहगार इन्सान ख़ुदाए तआ़ला के रह़म व करम से नाउम्मीद हो जाए कि हम तो गुनाहगार हैं, जन्नत में जा ही नहीं सकते, हमें तो जहन्नम में जलना ही है लिहाज़ा जो कर मिले कर लें

और बदकारियों, हरामकारियों में बेधड़क लग जायें तो यह लोग भी इस्लाम की राहों से हटाने वाले हैं। इस्लाम में अल्लाह के रहम व करम से नाउम्मीद होना भी हराम है चाहे कितना ही गुनाहगार हो, और उसके अज़ाब से बेख़ौफ़ हो जाना भी शैतानी रास्ता है चाहे कितना ही नेक हो, उम्मीद और ख़ौफ़ के बारे में क़ुर्आन की आयतें और हदीसें और बुज़ुर्गों के वाक़िआत की कसरत है सिर्फ़ एक हदीस मुलाहिज़ा फ़रमायें

हदीस : सरकारे काइनात स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने एक शख़्स को जांकनी के आ़लम (जान निकलते वक़्त) में मुलाहिज़ा फ़रमाया तो उससे पूछा तू अपने आप को किस हाल में पाता है उसने अर्ज़ की या रसूलल्लाह मैं गुनाहों से डरता हूँ और अल्लाह तआ़ला की रह़मत से उम्मीद रखता हूँ। आप ने फ़रमाया इस वक़्त में जांकनी के आ़लम में जिसके दिल में यह दोनों चीज़ें जमा हो गई तो हक़ तआ़ला उसको डरावनी चीज़ से बचाएगा और जिसकी उसे उम्मीद है वह अता फ़रमाएगा। (तिर्मिज़ी, इब्ने माजा)

हज़रत सय्यिदना उमर फ़ारूके आज़म से मरवी है वह फ़रमाते थे कि अगर मुझको बताया जाए कि सब लोग जन्नती हैं सिर्फ़ एक जहन्नमी है तो मुझको इस बात का डर रहेगा कि कहीं वह एक मैं ही न हूँ। और अगर मुझको यह बताया जाए कि सब लोग जहन्नमी हैं सिर्फ़ एक जन्नती है तो मुझको यह उम्मीद रहेगी कि शायद वह एक जन्नती मैं ही हूँ।

जिसके दिल में ख़ुदाए तआ़ला का ख़ौफ़ न हो उसको ख़ुदाए तआ़ला के अ़ज़ाब और उसकी तरफ़ से मुक़र्ररह सज़ाओं वाली आयतें और हदीसें और वाक़िआत का

मुतालआ़ करना चाहिए और जिसके दिल में उम्मीद न हो अल्लाह की तरफ़ से मायूस और नाउम्मीद होने लगा हो उसको अल्लाह तआ़ला के करम, उसकी मग़फ़िरत, बख़्शिश और हुज़ूर की शफ़ाअ़त वाली आयतों, हदीसों का मुतालआ़ करना चाहिए और क़ौम के रहनुमा पीरों, मौलवियों और मुक़र्रिरों को जिसमें जो मर्ज़ हो उसको वैसी ही दवा देना चाहिए। इस उनवान और बयान के तअ़ल्लुक़ से बरकत हासिल करने के लिए आख़िर में क़ुर्आने करीम की एक आयते करीमा और सिर्फ़ एक हदीस लिख दूँ और इसी पर बात को ख़त्म कर दूँ।

इरशादे बारी तआ़ला है :

إِنَّمَا يُؤْمِنُ بِآيٰتِنَا الَّذِيْنَ إِذَا ذُكِّرُوْا بِهَا خَرُّوْا سُجَّدًا وَّ سَبَّحُوْا بِحَمْدِ رَبِّهِمْ وَ هُمْ لَا يَسْتَكْبِرُوْنَ
تَتَجَافٰى جُنُوْبُهُمْ عَنِ الْمَضَاجِعِ يَدْعُوْنَ رَبَّهُمْ خَوْفًا وَّ طَمَعًا وَّ مِمَّا رَزَقْنٰهُمْ يُنْفِقُوْنَ.

तर्जमा : "हमारी आयतों पर वही ईमान लाते हैं कि जब वह उन्हें याद दिलाई जाती हैं तो सज्दे में गिर जाते हैं और अपने रब की तारीफ़ करते हुए उसकी पाकी बोलते हैं और तकब्बुर नहीं करते उनकी करवटें जुदा होती हैं ख़्वाबगाहों से अपने रब को पुकारते हैं डरते और उम्मीद करते और हमारे दिए हुए में से कुछ ख़ैरात करते हैं।" (पारा 21, रुकूअ़ 15)

हदीस : रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम फ़रमाते हैं जिस दिन अल्लाह तआ़ला ने रह़मत को पैदा किया तो उसके 100 हिस्से किए, 99 हिस्से अपने पास रख लिए और सिर्फ़ एक हिस्सा अपनी मख़लूक़ के पास भेज दिया तो अगर काफ़िर भी जान ले कि अल्लाह तआ़ला के पास कितनी रह़मत है तो वह भी जन्नत से नाउम्मीद न हो और अगर मोमिन जान ले कि अल्लाह तआ़ला के पास कितना अ़ज़ाब है तो वह दोज़ख़ की तरफ़ से बेख़ौफ़ न हो। (बुख़ारी, किताबुर्रिक़ाक़)

औरत के बारे में इस्लाम का दरमियानी नज़रिया

औरतों के तअ़ल्लुक़ से दुनिया की तारीख़ में दो क़िस्म के नज़रियात सामने आए हैं आमतौर से इन्सानी मुआ़शरे (समाज) और इस्लाम के अलावा दूसरे मज़हबों में औरतों को ज़लील व हक़ीर ख़्याल किया गया। इस्लाम से पहले अरबों में औरतों की निहायत बदतर हालत थी एक औरत होना दुनिया का सबसे बड़ा जुर्म था। बुरी तरह औरतों को मारने, पीटने का रिवाज था। बहुत से लोग अपनी बेटियों को गढ़ा खोद कर उसमें ज़िन्दा दफ़न कर देते थे क्यूँकि बेटी की पैदाइश बाप के लिए बहुत बड़ी शर्म व नदामत की बात मानी जाती थी। शौहर अपनी बीवी को कोई मांगे तो उसको देने का इख़्तियार रखता था। अगर किसी औरत का शौहर मर जाता या उसको तलाक़ दे देता था तो उस औरत को बस्ती से बाहर एक अँधेरी कोठरी में टाट के कपड़े पहना कर एक साल के लिए छोड़ दिया जाता था और उस मुद्दत में उसको पाख़ाना और पेशाब और नहाने, धोने के लिए पानी भी नहीं दिया जाता था। बेवा औरतों के साथ इस तरह के और भी गन्दे और बुरे बरताव किए जाते थे।

हिन्दुस्तान में भी औरतों पर ज़ुल्म व ज़्यादती करना धर्म ख़्याल किया जाता था। यहाँ के राजा महाराजा औरतों को जुए में हार जाते तो वह जीतने वाले के हवाले कर दी जाती थी। सूदी क़र्ज़े अदा न होने पर बीवियों, बेटियों को क़र्ज़ देने वाले को या तो बिल्कुल दे दिया जाता था या उनके यहाँ उन्हें गिरवीं रखा जाता था। यहाँ लड़की की शादी को "कन्यादान" के लफ़्ज

ताबीर किया जाता था। और आज भी ऐसा ही है यानी यहाँ की पुरानी तहज़ीमब में लड़की की शादी उसको शौहर की बीवी बनाना नहीं है बल्कि उसको दान करना यानी ख़ैरात करना और उसके शौहर को उसका मालिक व मुख़्तार बनाना है। यहाँ बीवी "दासी" समझी जाती है। यहाँ की पुरानी तहज़ीब में शौहर के मरने के बाद उसकी बेवा को शौहर की चिता में ज़िन्दा जला दिया जाता था क्यूँकि यहाँ के पुराने मज़हब के मुताबिक़ शौहर के बग़ैर औरत की कोई क़ीमत नहीं है। बाज़ राजाओं की कई-कई सौ रानियाँ होती थीं उसके मरने पर उन सब को उसके साथ जलना पड़ता था। और बेवा औरतों को निहायत दरजा मनहूस और बदनसीब ख़्याल करना यहाँ की तहज़ीब का अहम हिस्सा है। माहवारी के दिनों में उसे अछूत क़रार देना हिन्दुस्तानी धर्म है। यहाँ की तहज़ीब में एक भाई की बीवी दूसरे भाई की भी जोरू बन कर रह सकती थी और वह भी उससे अपना नफ़्सानी मक़सद पूरा कर सकता था। यहाँ की भाषा में शौहर के भाई को देवर कहा जाता है और देवर का मअ़ना ही "दूसरा वर" यानी दूसरे शौहर के हैं। औरतों के बारे में हिन्दुस्तानी क़दीमी किताबों मे क्या-क्या लिखा हुआ है, मैं इस सब की तफ़सील में जाना नहीं चाहता सिर्फ़ महाकवि तुलसीदास का एक क़ौल मुलाहिज़ा फ़रमाइये :

ढोल, गंवार, शूद्र, पशु, नारी
जे सब ताड़न के अधिकारी

यानी तुलसीदास कहते हैं कि ढोल, गंवार, अछूत, जानवर और औरत यह सब ठोंकने, पीटने के लाइक़ हैं।

औरतों और पिछड़ी ज़ात के लोगों से मुतअ़ल्लिक़ ज़िल्लत आमेज़ बातें उनकी धर्म-पुस्तकों में जगह-जगह

मौजूद हैं जो पढ़े लिखे लोगों से छुपी हुई नहीं हैं।

ईसाई तहज़ीब ने भी औरत को कोई मक़ाम नहीं दिया। और तक़रीबन सभी मुल्कों और इस्लाम के अलावा मज़हबों ने औरत की हैसियत के साथ खिलवाड़ ही किया है। 592 ई. में चीन में दस्तूर था कि शादी के वक़्त लड़की का बाप एक रेशमी कोड़े से अपनी लड़की को दामाद के सामने मारता था और फिर वही कोड़ा उसके बाद अपने दामाद के हाथ में दे देता था कि उसको काम में लाते रहना।

मुल्के शाम और फ़िलिस्तीन में इस्लाम से पहले वहाँ के अहले इल्म का ख़्याल था कि औरत को आराम पहुँचाने की कोई ज़रूरत नहीं है वह सिर्फ़ आदमी की ख़िदमत करने के लिए पैदा की गई है। तो एक तरफ़ औरत के तअ़ल्लुक़ से क़ौमों और मज़हबों के यह नज़रियात रहे हैं और दूसरी तरफ़ आज आज़ाद ख़्याली और बेराह रवी के इस दौर में औरत को हर एतबार से मर्द के बराबर का मरतबा देने और उसको मर्दों की सफ़ में लाकर खड़ा करने की तहरीकें ज़ोर शोर से चल रही हैं। और इन तहरीकों में हिस्सा लेने वाले और मर्द व औरत की बराबरी का सबक़ दुनिया को पढ़ाने वाले ज़्यादातर वही लोग हैं जिनके धर्मात्माओं ने औरत को जानवरों से ज़्यादा ज़लील कर दिया था। इस्लाम इन दोनों नज़रियात का मुख़ालिफ़ है और वह एक दरमियानी रास्ता है वह बीवियों को जानवरों की तरह ज़लील व ख़्वार या दासी, बान्दी और कनीज़, ख़ादिमा और नौकरानी बनाने का भी रवादार नहीं और इस्लाम में हर एतबार से औरत

मर्द के बराबर भी नहीं।

तो वह लोग जो औरतों को मारने, पीटने के आ़दी हैं उन्हें सताने बात-बात पर डाँटते, डपटते और झिड़कते रहते हैं उन्हें नौकरानी और बान्दी समझ कर उनकी ताक़त से ज़्यादा उन से काम लेते हैं और उन्हें इसके लिए मजबूर करते हैं उनके साथ ज़ुल्म व ज़्यादती करते हैं। शादी के बाद उन्हें माएके में छोड़ रखते हैं या उन्हें घरों में क़ैद करके ख़ुद अय्याशी व ज़िनाकारी के लिए होटलों में, रन्डीख़ानों में जाते हैं उनकी ज़िन्दगी की ज़रूरतों, खाने, कपड़े और रिहाइश का ख़्याल नहीं रखते हैं उनको ख़ुश रखना बिल्कुल जानते ही नहीं हैं। यह लोग इस्लाम के ख़िलाफ़ रास्ता अपनाए हुए हैं। आख़िर वह अपने माँ, बाप, भाई, बहन, कुन्बे, क़बीले, पास-पड़ोस सब को छोड़ कर आपके यहाँ आई है अब आपके यहाँ भी उसको महब्बत और सुकून न मिले तो उस दुखिया का दुनिया में कौन रहा।

ऐसे ही वह लोग जिन्होंने अपनी बीवियों को सर पर बिठा लिया है, हर बात और हर काम वही करते हैं जो बीवी साहिबा का हुक्म होता है उनके पीछे घर वालों और पड़ोसियों से लड़ते झगड़ते हैं और बिल्कुल जोरू के ग़ुलाम बने हुए हैं। यहाँ तक कि बाज़-बाज़ बीवी को रखने के लिए माँ, बाप, भाई, बहनों को सख़्त-सख़्त तकलीफ़ें पहुँचाते हैं। तो यह औरतों के ग़ुलाम और उनके इशारों पर नाचने वाले, उनकी हर बात मानने वाले भी इस्लामी राह को छोड़े हुए हैं।

हक़ यह है कि घर में महब्बत बीवी को मिलना

चाहिए लेकिन हुकूमत शौहर की ही होना चाहिए।

मैंने देखा है कि जिन घरों में मुकम्मल तौर पर औरतों की हुकूमत होती है वह घर अमूमन वीरान और बरबाद रहते हैं। कभी-कभी नादान औरतें पड़ोसियों से झगड़ा कर लेती हैं और फिर शौहरों को मजबूर करके उनसे यहाँ से घर बिकवाती हैं वहाँ ख़रीदवाती हैं और वहाँ से बिकवाती हैं तो और किसी जगह ख़रीदवाती हैं और औरतों के इशारों पर चलने वाले लोग ख़ानाख़राब रहते हैं। बाज़ औरतें कम अक्ल और नादान और नतीजे से बेख़बर होती हैं, मर्दों की कमाई को ग़ैर ज़रूरी और फ़ालतू कामों में या ग़ैर शरई रस्म व रिवाज में ख़ूब ख़र्च कर देती हैं और ख़ूब कमाने के बावुजूद भी जोरू के ग़ुलाम परेशान तंगदस्त रहते हैं और कभी-कभी वह फ़ालतू ख़र्चों की ज़्यादती और आमदनी की कमी की वजह से बेईमानी, अमानत में ख़यानत क़र्ज़ लेकर न देने की आदत में पड़ कर बस्ती में ज़िल्लत व बेइज़्ज़ती और रुसवाई व बदनामी की ज़िन्दगी गुज़ारते हैं। मैंने अन्दाज़ा लगाया है कि आजकल जो ब्याह शादियों में फ़ालतू ख़र्चे आसमान छू रहे हैं और शादियाँ घरों की बरबादियाँ हो कर रह गई हैं। बेटियाँ माँ बाप के लिए अज़ाब बन कर रह गई हैं। इस सब में ज़्यादातर घरों में औरतों की हुकूमत का दख़ल है यानी जो औरतें कहती रहें वही मर्द करते रहें।

बाज़ बेवक़ूफ़ औरतें छोटी-छोटी बातों पर घर वालों से, मोहल्ले वालों से, पड़ोसियों से झगड़ा कर लेती हैं और फिर एक की चार लगा कर शौहरों से भी लड़ने को कहती हैं। और औरतों के यह ग़ुलाम जो देखने के मर्द लेकिन

हक़ीक़त में नामर्द, उनकी बातों में आकर अपने घर वालों, पड़ोसियों वग़ैरह से ख़ूब लड़ते और मारपीट करते हैं और फिर नतीजा यह निकलता है कि वक़्त पर काम आने वाले अपने घर वाले अज़ीज़ व अक़ारिब या पड़ोसियों से इन्सान दूर हो जाता है और सब से जुदा होकर तन्हा रह जाता है और फिर कभी-कभी यह सब से अलग कराने वाली औरत बेवफ़ाई कर जाती है और चूंकि उसकी फ़ितरत व आदत ही झगड़ा करना है लिहाज़ा फिर यह शौहर से भी झगड़ा करने में नहीं चूकती है और जोरू का ग़ुलाम कहीं का नहीं रहता है। और वह बिल्कुल "धोबी का कुत्ता न घर का न घाट का" वाली मिसाल उस पर सादिक़ आती है। ग़रज़ यह कि औरतों के सामने हर मामले में घुटने टेकने वाले उसकी हर बात मानने वाले कभी इज़्ज़त से नहीं रह सकते उन्हें अक्सर ज़िल्लत व बेइज़्ज़ती का मुँह देखना पड़ता है।

इस्लाम में बीवी की दिलजोई और उसका ख़्याल रखने और उससे महब्बत करने का हुक्म है लेकिन उसकी महब्बत में माँ, बाप, भाई, बहन वग़ैरह घर वालों या पड़ोसियों की हक़तल्फ़ी करने का मज़हबे इस्लाम मुख़ालिफ़ है। आज मुआशरे में जो तरह-तरह की परेशानियाँ बढ़ गई हैं और पहले के मुक़ाबले में हज़ार सहूलतों और तरक़्क़ियों के बावुजूद हर शख़्स परेशान, दुखी और बे इत्मीनान है इसमें भी औरतों की घरों की हुकूमत को बहुत बड़ा दख़ल है।

बाज़ औरतें करने-धरने और गन्डे-तावीज़ कराने में बड़ी माहिर होती हैं और इसके लिए वह रात दिन

मियाँ मौलवियों यहाँ तक कि ग़ैर मुस्लिम बाबाओं के यहाँ पड़ी रहती हैं कभी इस पर और कभी उस पर कराती फिरती हैं, मज़ारों के चक्कर लगाती हैं और अपने ग़ुलाम यानी शौहरों को भी लिए लिए फिरती हैं।

घरों में औरतों का राज और उनकी बालादस्ती के नतीजे में एक बड़ा नुक़सान यह होता है कि शौहर अगर अपने माँ, बाप, भाई, बहन वग़ैरह क़रीबी रिश्तेदारों के साथ अच्छा सुलूक करना चाहे तो औरतें इसमें अमूमन आड़े आती हैं। ज़ाहिरी बात है वह आपके भाई, बहन हैं, माँ और बाप हैं आपकी बीवी के तो नहीं हैं। लिहाज़ा जो महब्बत ख़ूनी रिश्ते की वजह से आपको होगी वह उसको नहीं होगी। और उन्हें कोई तकलीफ़ व मुसीबत हुई तो जो दर्द और कोफ़्त आपको होगा वह आपकी बीवी को क्यूँ होने लगा। कुछ भी सही लेकिन बहरहाल वह दूसरे घराने की है अब उनकी मुसीबत, दुख, दर्द में आप उनके साथ कोई जिस्मानी या माली हमदर्दी, ख़िदमत या हुस्ने सुलूक करना चाहें तो बीवी उसमें रुकावट बन सकती है लिहाज़ा उसकी बालादस्ती और इख़्तियारात का एक दाइरा होना ज़रूरी है उसके मुख़तारे कुल (पूरी तरह से मालिक) मान कर आप कितने अच्छे काम ऐसे हैं कि जिन से महरूम रह जायेंगे। और घरों मे मर्दों की सरबराही और उनकी बरतरी में औरतों का भी बहुत बड़ा फ़ाएदा है क्यूँकि वही औरत जब अपनी ससुराल में अपने शौहर से अपनी मनमानी कराएगी और उसके माँ बाप के साथ उसको अच्छा सुलूक करने से रोकेगी और पाँच-पाँच, सात-सात बेटों वाले होकर भी माँ बाप रोटी के चन्द

टुकड़ों के लिए परेशान रहेंगे तो घर-घर औरत की हुकूमत के नतीजे में उसके मायके में भी उसके भाईयों की बीवियाँ जो करेंगी वह होगा और जो कहेंगी वह शौहरों को करना पड़ेगा। तो इस बात को मत भूल कि तेरे माँ, बाप से तुझको और तेरे भाईयों को जो महब्बत होगी वह तेरी भावजों को हरगिज़ नहीं हो सकती तो तेरे भाईयों की बीवियों की हुकूमत से तेरे मायके में तेरी और तेरे माँ बाप की बेइज़्ज़ती और नाक़दरी हो सकती है और कभी शौहर से बात बिगड़ जाने, तलाक़ हो जाने या शौहर के मर जाने या लापता हो जाने पर अगर तुझको भी मायके में ज़िन्दगी गुज़ारना पड़ी तो वहाँ हो सकता है कि दूसरे घरानों और ख़ानदानों से आने वालियों की सल्तनत में तेरा रहना मुश्किल हो जाए और तू वहाँ भी न टिक सके। लिहाज़ा औरतों को भी चाहिए कि वह घरों में मर्दों यानी शौहरों की हुकूमत की ही चाहने वाली रहें और इसके लिए कोशिश करें और इस क़िस्म की आवाज़ उठाने वालों की हिमायत करें और जो लोग औरतों की सरबराही और बराबरी के लिए शोर मचाते हैं उनका साथ कभी न दें वरना हो सकता है कि तुम्हें मायके में कभी ग़ैरों की ग़ुलामी करना पड़े।

बाज़ औरतों की यह बडी बेवक़ूफ़ी है कि अपनी सुसराल मे तो अपनी हुकूमत व बालादस्ती और हर क़िस्म का इख़्तियार चाहती हैं और अपने मायके में अपनी भावजों को बेइख़्तियार, मजबूर व लाचार देखना चाहती हैं। नादानों मुआशरे और समाज में जिस क़िस्म का रिवाज हो जाएगा और माहौल जैसा बना दिया जाएगा सब जगह वैसा ही तो होगा तो ऐसा माहौल ही क्यूँ बनाया जाए कि जिससे मुआशरे का तवाज़ुन बरक़रार न रह सके और इन्सान

इन्सान को खाने लगे।

अगर हमारे इस बयान पर कोई एतराज़ करे कि बाज़ औरतें बाज़ मर्दों से ज़्यादा समझदार सब्र व ज़ब्त, तहम्मुल और बर्दाश्त, सूझ बूझ वाली होती हैं तो ऐसे घरों में तो उन्हीं की बालादस्ती और हुकूमत होना चाहिए तो मैं कहता हूँ कि क़ानून, ज़ाब्ते और उसूल ज़्यादती और अक्सरियत और ग़लबे की बुनियाद पर बनाए जाते हैं यानी मतलब यह है ज़्यादातर औरतें मर्दों के मुक़ाबले में कम अक़्ल, जल्द ग़ुस्से में आने वाली, बहुत जल्द कोई फ़ैसला करने वाली, ग़ैर मुतहम्मिल (बर्दाश्त न करने वाली) और नासमझ और कमज़ोर होती हैं और ज़्यादातर मर्द उनके मुक़ाबले में समझदार, तहम्मुल व बर्दाश्त वाले और ताक़तवर होते हैं। यूँ तो बाज़-बाज़ बच्चे भी अपने बड़ों से ज़्यादा समझदार होते हैं, बाप पागल है और बच्चा होशियार तो क्या उन चन्द बच्चों की वजह से यह उसूल बना दिया जाएगा कि कुछ बच्चे माँ, बाप से ज़्यादा होशियार साबित हुए हैं लिहाज़ा घर-घर में बच्चों की हुकूमत होना चाहिए और जो बच्चे कहें बड़ों को वही करना चाहिए।

बाज़ नाइब और असिस्टेन्ट अपने ऊपर वाले अफ़सरों से ज़्यादा पढ़े लिखे और होशियार होते हैं तो कहीं कहीं किसी किसी क्लर्क के अफ़सरों से ज़्यादा क़ाबिल व होशियार होने की बिना पर यह नहीं कहा जा सकता कि क्लर्क लोग अधिकारियों से ज़्यादा क़ाबिल होते हैं लिहाज़ा उनको ज़्यादा अधिकार मिलने चाहिए और कितना ही क्वालीफ़ाइड पढ़ा लिखा, ताक़त व हिम्मत वाला होशियार, चालाक और चुस्त क्यूँ न हो जाए लेकिन सिपाही का इख़्तियार और उसकी पावर थानेदार से कम ही होती है और

थानेदार की उसके आला अफ़सरों से कम।

और जो घरों में बीवी के इख़्तियारात शौहर के बराबर करने के ख़्वाहिशमन्द हैं उनसे पूछता हूँ कि एक ज़िले में दो कलेक्टर क्यूँ नहीं होते और एस.डी.एम. या ए.डी.एम. की पावर डी.एम. के बराबर क्यूँ नहीं की जाती एक थाने में दो इन्चार्ज क्यूँ नहीं कराए जाते वग़ैरह-वग़ैरह। तो बात समझ में आ जाती है कि किसी भी निज़ाम या हुकूमत को चलाने के लिए सुप्रीम पावर एक ही होना चाहिए बाक़ी उसके नाइब या असिस्टेन्ट हों, उसके मातहत हों तभी वह निज़ाम चलेगा और अगर सब की पावर बराबर होगी तो झगड़े फ़साद के अलावा कुछ नहीं होगा। लिहाज़ा एक परिवार को सही तौर पर चलाने के लिए उसका मुखिया और सरबराह एक ही होना चाहिए और वह मर्द ही है क्यूँकि वह आमतौर पर ताक़तवर, हिम्मत व ज़ब्त व तहम्मुल में औरतों और बच्चों से ज़्यादा है। क्या देखते नहीं कि किसी भी तन्ज़ीम और पार्टी का सदर सिर्फ़ एक ही होता है नाइब सदर कई एक हो सकते हैं। तो यहाँ से यह बात भी ख़ूब अच्छी तरह समझ में आ गई कि जिस तरह ज़िले में डी.एम. एक और एस.डी.एम. कई हो सकते हैं, थाने में इन्चार्ज एक और उसके नाइब दरोग़ा कई हो सकते हैं, पार्टी का सदर एक और नाइब सदर कई एक हो सकते हैं। तो इसी तरह एक शौहर की बीवियाँ कई एक लेकिन एक बीवी के शौहर कई एक नहीं हो सकते क्यूँकि सिर्फ़ एक होना सुप्रीम पावर और सरबराह की ही शान होती है और यह बात साबित हो चुकी कि मर्द को ही घर और परिवार का मुखिया होना चाहिए और यहाँ से यह बात भी ख़ूब साफ़ हो गई कि औरत घर में अपने शौहर की नाइब

और असिस्टेन्ट होती है उसकी बान्दी, दासी, नौकरानी और ख़ादिमा नहीं होती, और यही क़ुर्आनी तालीम हैऔर यह इस्लामी नज़रिया और दरमियान का रास्ता है। तो जो लोग उन्हें नौकरानी, ख़ादिमा या बान्दी और दासी समझते हैं और उनके साथ उन्हीं के जैसा बरताव करते हैं वह भी हद से आगे बढ़ने वाले ज़ालिम, जफ़ाकार और हक़तलफ़ी करने वाले हैं। आख़िर जिस तरह आप किसी के बेटे हैं वह भी किसी की बेटी है और उसने आपके हाथ उसे बेचा नहीं है बल्कि निकाह किया है, बीवी बना कर भेजा है, बान्दी और दासी बनाकर नहीं भेजा है। अगर चार मरतबा वह आपकी ख़राब आदत और ग़लत बातों को बरदाश्त करती है तो दो मरतबा आप भी उसकी किसी बदमिज़ाजी या बदज़बानी को बरदाश्त कर लेंगे तो कोई हरज नहीं है बल्कि बहुत बड़े सवाब की उम्मीद है। और जिन लोगों ने औरतों को सर पर चढ़ा लिया है और जोरू के ग़ुलाम बन गए हैं वह भी इस्लामी मिज़ाज के ख़िलाफ़ राह अपनाए हुए हैं।

औरतों से मुतअ़ल्लिक़ इस्लाम का नज़रिया क्या है इस का अन्दाज़ा इस से लगाइये कि पैग़म्बरे इस्लाम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम अपनी सब से ज़्यादा प्यारी और चहेती बीवी हज़रत सय्यिदतना आ़इशा सिद्दीक़ा रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हा से बेपनाह महब्बत फ़रमाते थे। इस महब्बत के वाक़िआत हदीसों की किताबों में जगह-जगह देखे जा सकते हैं। यहाँ तक कि एक मरतबा आप सफ़र में उनकी दिलजोई के लिए उनके साथ दौड़े तक हैं। दौड़ने में पहली मरतबा हज़रते आ़इशा आगे निकल गईं और दूसरी मरतबा हुज़ूर

आगे निकल गए तो फ़रमाया आइशा यह इसका बदला हो गया।

(अबूदाऊद)

यही आइशा हैं कि विसाले मुबारक के वक़्त हुज़ूर का सर इन्हीं की गोद में था लेकिन इन्हीं आइशा सिद्दीक़ा ने विसाल से चन्द रोज़ पहले जब सरकार बीमारी की शिद्दत की बिना पर मस्जिद में तशरीफ़ नहीं लाये लोगों ने अर्ज़ किया या रसूलल्लाह इशा की नमाज़ के लिए लोग जमा हैं रात काफ़ी हो गई है आपका इन्तज़ार है तो फ़रमाया, "अबूबक्र से कहो कि वह लोगों को नमाज़ पढ़ायें।" हज़रते आइशा सिद्दीक़ा ने इस बात पर टोका और कई मरतबा इस ख़्याल से रोका कि मेरे बाप अबूबक्र दिल के नरम हैं आपके बाद आपके मुसल्ले पर कैसे खड़े होंगे वह तो क़ुर्आन पढ़ते-पढ़ते रोने लगते हैं, किसी और के लिए हुक्म फ़रमाइये तो आपको जलाल आ गया और हज़रते आइशा को एक ख़ास क़िस्म की तम्बीह फ़रमाई और उनके मशवरे को तसलीम नहीं फ़रमाया और हज़रते अबूबक्र को ही अपना जानशीन और क़ाइम मक़ाम बनाने का हुक्म सादिर फ़रमाया।

(बुख़ारी, अबवाबुल इमारत)

इससे ज़ाहिर हुआ कि इस्लाम और पैग़म्बरे इस्लाम की तालीमात यह हैं कि बीवी से महब्बत करने, उसकी दिलजोई और ख़्याल रखने में किसी क़िस्म की कमी नहीं करना चाहिए, लेकिन उसकी हर बात माननी भी नहीं चाहिए।

ख़ुलासा यह है कि औरत न जानवरों की तरह ज़लील और बान्दी, दासी और नौकरानी है और न मर्दों के बिल्कुल बराबर हुकूमत व सरबराही के लाइक़ है। घर में महब्बत औरत को मिले और हुकूमत शौहर को मिले।

औरत न सर पर बिठाने की चीज़ है और न पैरों से ठुकराने के लिए। बल्कि दिल से महब्बत करने और सीने से लगाने की चीज़ है और दिल दरमियान में है, पैर बिल्कुल नीचे हैं और सर सब से ऊपर है और औरत की जगह दिल में है जो दरमियान और बीच में है। जिन लोगों ने उसे सर का ताज बना लिया वह भी ग़लत, और जिन लोगों ने उस को पैर की जूती समझ रखा है वह भी ग़लत। और यही इस्लाम का मिज़ाज है और इसी में मुआ़शरे की हिफ़ाज़त और समाज की ख़ैरियत है। और समझदार क़िस्म के ग़ैर मुस्लिम भी ग़ौर करेंगे तो उन्हें एक दिन इस इस्लामी रविश की क़द्र करना ही होगी और ख़ुदा तौफ़ीक़ देगा तो कलिमा पढ़ कर मुसलमान भी बन जायेंगे और ज़मीन पर एक ही आवाज़ गूंजेगी :

"ला इला–ह इल्लल्लाहु मुह़म्मदुर्रसूलुल्लाह स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम"

अल्लाह के अलावा कोई मअ़बूद (इबादत के लाइक़) नहीं और "मुह़म्मद" अल्लाह के रसूल हैं। स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि व आलिही व सह़बिही व बारिक वसल्लम

औरतों से मुतअ़ल्लिक़ इस्लामी नज़रिया और उस पर एतराज़ात और जवाबात और इस बारे में क़ुर्आन की आयतें, हदीसें और पैग़म्बरे इस्लाम के इरशादात पर मुशतमिल एक मुस्तक़िल किताब लिखने का मेरा इरादा है। इसका नाम होगा "इस्लाम में औरत" अल्लाह तौफ़ीक़ अता फ़रमाए।

औरतों के ख़ास दिनों से मुतअ़ल्लिक़ इस्लाम का दरमियानी रास्ता

औरतों के आगे के मक़ाम से हर महीने चन्द दिन तक जो ख़ून आता है उसे माहवारी और "हैज़" कहते हैं। उसकी कम से कम मुद्दत तीन दिन और ज़्यादा से ज़्यादा दस दिन है यानी तीन दिन से कम आए तो हैज़ नहीं और दस दिन से ज़्यादा आए तो भी हैज़ नहीं बल्कि वह बीमारी की वजह से है, उसे "इस्तिहाज़ा" कहते हैं। बच्चा पैदा होने के बाद जो ख़ून आता है उसे "निफ़ास" कहते हैं इसकी कम से कम मुद्दत कुछ नहीं यानी यह भी हो सकता है कि बिल्कुल न आए और ज़्यादा से ज़्यादा चालीस दिन है यानी चालीस दिन से ज़्यादा आए तो वह निफ़ास नहीं बल्कि बीमारी है। हैज़ व निफ़ास के मसाइल तफ़सील से जानने के लिए फ़िक़्ह की किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए। यहाँ तो सिर्फ़ यह बताना है कि औरतों के इन ख़ास दिनों के मुतअ़ल्लिक़ दुनिया में दो क़िस्म के लोग हुए हैं और हैं जो दोनों हद से आगे बढ़ गए हैं।

यहूदी और मजूसी इस हालत में औरतों से बहुत ज़्यादा नफ़रत करते थे उनके साथ खाना, पीना, एक मकान में रहना तक गवारा न था बल्कि नफ़रत यहाँ तक पहुँच गई थी कि उनकी तरफ़ देखना, उन से कलाम करना तक हराम समझते थे और नसारा यानी ईसाई इस हालत में औरतों की तरफ़ ज़्यादा रग़बत करते और मुजामिअ़त और सोहबत से भी गुरेज़ नहीं करते और बड़ी महब्बत से मशग़ूल होते। हिन्दुस्तान के इलाक़ाई तहज़ीब और मज़हब में भी इन दिनों में औरतों को

अछूत क़रार दिया जाता है, उनके चूल्हे, चौके और बरतन अलाहिदा कर दिए जाते हैं, उनके साथ खाने, पीने बल्कि उनके हाथ के पके हुए खाने को भी बुरा समझा जाता है।

इस्लाम में इन दोनों के बीच का रास्ता अपनाया गया और क़ुर्आन, पारा 2, रुकूअ़ 11 में ख़ासकर इस बारे में आयत नाज़िल फ़रमाई गई। इसे आयते करीमा और हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की हदीसों की रौशनी में औरतों के इन ख़ास दिनों से मुतअ़ल्लिक़ बताया गया कि वह इन दिनों में न नफ़रत के लाइक़ हैं और न बहुत ज़्यादा नज़दीकी और क़ुरबत के। इस्लाम में इस हालत में औरत के साथ मुजामिअ़त यानी सोहबत और हमबिस्तरी को नाजाइज़ गुनाह क़रार दिया। और उसके साथ मुलाअ़बत यानी जिस्म को छूने, उससे लज़्ज़त हासिल करने, चूमने, चिपटने, उसके साथ लेटने, सोने, खाने और पीने में कोई गुनाह नहीं। हाँ अगर साथ लेटने में सोहबत और हमबिस्तरी का ख़तरा हो तो साथ न लेटे। नाफ़ से घुटने तक उसके बदन को कपड़ा हटा कर छूना या अपने बदन का कोई हिस्सा उससे मस करना जाइज़ नहीं, कपड़े के साथ छूना जाइज़ है और नाफ़ से ऊपर और घुटने के नीचे के बदन से इन्तिफ़ाअ़ (नफ़अ़ उठाना) जाइज़ है। इस हालत में उसको अछूत समझना इस्लाम के ख़िलाफ़ है। इस हालत में औरत का मस्जिद में दाख़िल होना, क़ुर्आने करीम की तिलावत करना, उसको बग़ैर जुज़दान के छूना. नाजाइज़ है। तफ़सील से जानने के लिए हदीसों और फ़िक़्ह की किताबों का मुतालआ़ करना चाहिए। यहाँ तो सिर्फ़ यह बताना है कि इस्लाम ने इस मामले में भी दरमियानी रास्ते को अपनाया है।

इबादत और रियाज़त के मामले में मियानारवी

इबादत और रियाज़त, दीनदारी और परहेज़गारी के मामले में भी इस्लाम ने एक दरमियानी और बीच की राह बताई और इसी को पसन्द फ़रमाया। रहबानियत यानी दुनिया को बिल्कुल छोड़ देना, आम हालात में निकाह न करना, लोगों से मेलजोल और तअ़ल्लुक़ क़तअ़ करके बिल्कुल यकसूई इख़्तियार करने को ज़्यादा पसन्द नहीं फ़रमाया गया बल्कि निकाह को तो सुन्नत और सवाब फ़रमाया गया। हलाल रोज़ी कमा कर ख़ुद खाने और बाल बच्चों को खिलाने को भी नेकी फ़रमाया गया। हाँ अगर फ़ितनों के दौर में ईमान बचाने के लिए कोई शख़्स दुनिया से तअ़ल्लुक़ तोड़ कर यकसूई इख़्तियार करके जंगलों, पहाड़ों में चला जाए तो उसमें कोई हरज नहीं लेकिन इसका तअ़ल्लुक़ उसकी नियत से है और यह तो एक मजबूरी है यहाँ बात आ़म हालात में आ़म आदमी की हो रही है।

हदीस : हज़रते अनस रद़ियल्लाहु तआ़ला अ़न्हु से मरवी है कि तीन हज़रात हुज़ूर की इबादत का हाल मालूम करने के लिए आपकी बीवियों के पास हाज़िर हुए जब उन्हें बताया गया तो उन्होंने अपने ख़्याल में हुज़ूर की इस इबादत को थोड़ा समझा। और कहने लगे कि कहाँ हम और कहाँ हुज़ूर स़ल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम उनकी तो अगली पिछली सब लग़ज़िशें माफ़ हैं तो उनमें से एक साहब कहने लगे मैं तो हमेशा सारी रात नमाज़ पढ़ा करूँगा। दूसरे बोले मैं पूरे साल हमेशा रोज़ा रखा करूँगा, कभी बे-रोज़ा नहीं रहूँगा। तीसरे बोले मैं औरतों से अलाहिदा रहूँगा और कभी निकाह नहीं करूँगा। फिर हुज़ूर उनके पास तशरीफ़ लाए और फ़रमाया

कि क्या तुम्हीं लोग अभी यह बातें कर रहे थे। उन्होंने कहा हाँ या रसूलल्लाह, फ़रमाया ख़ूब जान लो कि मैं तुम में सब से ज़्यादा ख़ुदाए तआ़ला से डरने वाला और परहेज़गार हूँ लेकिन मैं हमेशा पूरे साल रोज़े से नहीं रहता, कभी रखता हूँ कभी नहीं रखता हूँ, सारी रात नमाज़ नहीं पढ़ता, नमाज़ भी पढ़ता हूँ और सोता भी हूँ और बीवियों वाला भी हूँ तो जिसने मेरी सुन्नत को छोड़ा वह मुझ में से नहीं।" (मिश्कात, बाबुल एतिसाम बिल किताब वलसुन्नह, फ़स्ले अव्वल, सफ़हा 27)

यानी हुज़ूर सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम ने हम लोगों को ईसाईयों के राहिबों और ग़ैर मुस्लिम साधुओं की तरह तारिकुद्दुनिया न बनाया बल्कि दुनिया को दीन बना दिया और हुज़ूर का हर काम सुन्नत है लिहाज़ा रमज़ान के अलावा दिनों में रोज़े रखना सुन्नत है लेकिन कभी-कभी न रखना भी सुन्नत है। अलबत्ता रमज़ान का रोज़ा हर हाल में फ़र्ज़ है जिससे छुटकारा नहीं। रात को तहज्जुद की नमाज़ पढ़ना भी सुन्नत है और आराम करना और सोना भी सुन्नत है, निकाह करना, औलाद हासिल करना, दुनियावी हलाल कारोबार, तिजारत वग़ैरह करना सभी सुन्नत और इबादत है।

ख़ुदाए तआ़ला हमेशा अपने महबूब की सुन्नतों पर क़ाइम रखे और एतिदाल-पसन्द, मियाना-रौ, दरमियानी रविश वाला बनाए इफ़रात व तफ़रीत से महफ़ूज़ फ़रमाए, ईमान पर ख़ात्मा नसीब फ़रमाए और क़ियामत के दिन अपने महबूब सय्यिदे आ़लम हज़रत मुहम्मद मुस्तफ़ा सल्लल्लाहु तआ़ला अ़लैहि वसल्लम की शफ़ाअ़त से जन्नत में अपने मुक़र्रब बन्दों के क़दमों में जगह इनायत फ़रमाए।

والحمد لله وَحْدَهٗ

والصلاة والسلام علىٰ من لا نبى بعده و علىٰ آله و اصحابه الذين معه